मूल्य : चार रुपये मात्र

आगरा अखबार प्रेस, आगरा-३

राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा हिन्दी
का विरोध करने वाले
उन भारतीयो के
कर-कमलो मे
जिनके मन मे
कभी न कभी राष्ट्रीय सम्मान और
सम्पर्क भाषा का प्रश्न
अवश्य उठेगा
और तब वे
निस्सन्देह
अपनी निर्मूल आशंकाओ से मुक्त
होकर हिन्दी को अधिक
आदर की
दृष्टि से
देखेंगे



अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्या,
स्वल्पश्च कालो बहुविघ्नता च ।
यत्सारभूत तदुपासनीय,
हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥

"शास्त्र अनन्त हैं, विद्या बहुत है; किन्तु समय बहुत थोडा है और विघ्न भी बहुत हैं। अत जो सारभूत है उसी को ग्रहण करना चाहिए, जैसे हंस पानी मे से दूध ग्रहण कर लेता है।"

अपनी बात

मनोविज्ञान बडा रुचिकर विषय है। प्रत्येक व्यक्ति को यह स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि वह 'मन' के विषय मे कुछ ज्ञान प्राप्त करे। प्रारम्भ मे मन के विवेचन का कार्य दर्शन की परिधि मे था। शनै. शनै मनोविज्ञान ने प्रयोग-आश्रित चिन्तन का पल्ला पकडना प्रारम्भ किया और प्राकृतिक विज्ञान के समर्थको ने मनोविज्ञान को भी एक प्राकृतिक विज्ञान बनाने का भरसक प्रयत्न किया। वे अपने इस प्रयत्न मे कहाँ तक सफल हुए हैं, इसे तो भविष्य ही बतलाएगा। मनोविज्ञान का साधारण विद्यार्थी भी यह जानता है कि पहले मनोविज्ञान मे आत्मा, मन, चेतना आदि के प्रत्यय प्रधान थे किन्तु अब इसका झुकाव व्यवहार के भौतिक स्वरूप की ओर अधिक हो गया है। आत्मा से व्यवहार तक उतरने मे मनोविज्ञान को कई मजिले तय करनी पडी है। प्रस्तुत पुस्तक मे इन मजिलो की एक झाँकी प्रस्तुत की गई है।

मनुष्य का मानसिक जगत बड़ा जटिल है। मानसिक जीवन पर कई दृष्टियो से विचार किया गया है। इसी दृष्टिभेद से कई मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायो का प्रादुर्भाव हुआ है। यदि छोटे-बडे सभी सम्प्रदायो की गणना की जाय तो उनकी संख्या पचीस से भी ऊपर पहुँच जायगी। मनोविज्ञान अभी अपनी किशोरावस्था से गुजर रहा है और प्रौढता तक पहुँचने मे अभी इसे कुछ और दिन लगेगे। शैशव से कैशोर्य तक पहुँचने का इसका मार्ग बड़ा टेढा-मेढा रहा है। इस मार्ग मे फर्लांगो के पत्थर बहुत हैं किन्तु मील के पत्थर कुछ कम हैं। मैंने इस पुस्तक मे केवल मील के पत्थरो पर ही दृष्टिपात किया है फर्लांगो के पत्थरो को एक ओर रहने दिया है। इसीलिये प्रमुख सम्प्रदायो का ही इस पुस्तक मे विवेचन मिलेगा। प्रश्न उठ सकता है कि मैंने प्रमुखता को नापने का मापदण्ड क्या रखा है। उत्तर मे मैं केवल यही कह सकता हूँ कि सम्प्रदायो के आदि प्रवर्तक मुख्य रहे हैं और उससे सम्बद्ध मतो के जनक अपने पूर्वाचार्यों से कुछ ही बातो मे भिन्न मत रखते हैं, शेष मे वे अपने पूर्वाचार्यों का ही अनुसरण करते हैं। इसीलिए मैंने सम्प्रदायो के आदि प्रवर्त्तको के मतो का विस्तृत वर्णन किया है किन्तु उनके अनुयायियो की उपेक्षा नही की है। हाँ, अनुयायियो के मतो का उल्लेख संक्षेप मे ही किया गया है। मैं

अपने इस चुनाव मे कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसे कहने का मैं अधिकारी नही हूँ, इस सम्बन्ध में पाठको की सम्मतियो का मैं स्वागत करूँगा और उनके सुझावों को आदर की दृष्टि से देखूँगा।

मनोविज्ञान का अध्ययन करते समय मुझे एक बात खटकती थी। मेरे मन मे उस समय भी यह प्रश्न उठा करता था कि क्या मनोविज्ञान के क्षेत्र मे भारतवर्ष मे कुछ काम नही हुआ। जब मैं मनोविज्ञान का अध्यापक बना तो उस समय मेरे कतिपय शिष्यो ने इसी प्रकार के प्रश्न करके मेरे पुराने प्रश्न को ताजा कर दिया। जब मेरे शिष्यो एव मेरे मित्रो ने मनोविज्ञान के सम्प्रदायो पर पुस्तक लिखने का आग्रह किया तो मैं बडी दुविधा मे पड़ गया। मेरे मित्रो ने साग्रह परामर्श दिया कि पहले मनोविज्ञान मे पश्चिम के योगदान पर ही कुछ लिखा जाय। मेरे सामने यह समस्या थी कि मैं पहले अपने पुराने प्रश्न का उत्तर ढूँढूँ या अपने मित्रो के परामर्श को मानूँ। मित्रो के आग्रह को टालने का मुझमे साहस नही था। इसलिए मैंने मनोविज्ञान के आधुनिक सम्प्रदायो के सक्षिप्त इतिहास को लिखने का सकल्प किया। मनोविज्ञान पर मेरी यह चौथी पुस्तक है। मनोविज्ञान के अध्ययन का भी कुछ अनुभव अवश्य है किन्तु इन सब बातो के होते हुये भी मनोविज्ञान के आधुनिक सम्प्रदाय जैसे गम्भीर विषय पर मुझ जैसे अल्पमति का कलम उठाना दुस्साहस ही कहा जायगा। किन्तु सरस्वती के मन्दिर मे पूजा का सभी को अधिकार है। मुझे सन्तोष है कि हिन्दी के मन्दिर मे मैं एक ऐसे पुष्प को चढा रहा हूँ जिसे किसी अन्य आराधक ने अभी नही चढाया है।

इस पुस्तक मे मेरा अपना कुछ नही है। जो कुछ मनोविज्ञान के आचार्यों ने कहा है उसे मैंने वैसे का वैसा ही रख दिया है। किसी सम्प्रदाय का इतिहास लिखने मे न्याय का यही तकाजा भी है। किसी मत के वर्णन मे अपनी तरफ से कुछ मिलाने की गुन्जाइश नही होती है अत पाठको को इसमे मौलिकता का दर्शन नही होगा। पुस्तक के लिखने मे मैंने अनेक ग्रन्थो से सहायता ली है। उन ग्रन्थो के लेखको व प्रकाशको के नाम पुस्तक के अन्त मे उल्लिखित हैं। मैं उन सब के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ। पुस्तक के प्रकाशन का समुचित प्रबन्ध करने के लिये मैं अपने प्रकाशक को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

लेखक

विषय-सूची

૧

સાહં પછવાડું

मस्तिष्क में विचार अलग-अलग न रह कर एक दूसरे से सम्बद्ध रहते है। एक विचार से दूसरे विचार की याद आ जाती है। गर्मी से सर्दी की याद आ जाना स्वाभाविक है। इसी प्रकार प्रकाश से अन्धकार, दिन से रात, कुर्सी से मेज की याद आ ही जाती है। इसका कारण यह है कि गर्मी और सर्दी, दिन और रात, प्रकाश और अन्धकार, कुर्सी और मेज आदि के प्रत्यय एक दूसरे से जुडे रहते हैं। साहचर्य्यवाद मे विचारो के साहचर्य्य का विवेचन है।

मनोवैज्ञानिको ने प्रारम्भ से ही स्मृति के विवेचन करने के प्रयास मे साहचर्य्य का जिक्र किया है। अरस्तू ने स्मृति पर विस्तार से विचार किया है। एक विचार के याद आने से दूसरा विचार क्यो याद आ जाता है ? इस प्रश्न का उत्तर देने हुए अरस्तू तीन बातो की ओर सकेत करता है। पहली बात उसने 'समानता'[1] के विषय मे कही। यदि दो

1 Similarity

वस्तुएँ समान हैं तो एक के याद आते ही दूसरी वस्तु भी याद आ जाती है। उदाहरणार्थ बच्चे की हथेली के सुन्दर रंग को देखकर कमल के फूल की याद आ जाना या मोमबत्ती के प्रकाश को देखकर लालटेन के प्रकाश का याद आ जाना। अरस्तू ने दूसरी बात 'विरोध'[1] के सम्बन्ध मे कही। 'यदि एक वस्तु मे दूसरी वस्तु के विरोधी गुण है तो एक वस्तु के याद आते ही दूसरी वस्तु याद आ जाती है; उदाहरणार्थ नाटे आदमी को देखकर लम्बे आदमी का याद आना या सर्दी को याद करते ही गर्मी का याद आ जाना। तीसरी बात की ओर संकेत करते हुए अरस्तू ने 'सहवर्तिता'[2] की चर्चा की है। उदाहरणार्थ मित्र के याद आते ही उसके माता-पिता का स्मरण हो आना या कुर्सी के विषय मे सोचते ही मेज का याद आ जाना। एक विचार के आते ही दूसरा विचार अपने आप आ जाता है यदि इन दोनो विचारो मे समानता, विरोध या सहवर्तिता का सम्बन्ध होता है। इन तीनो सम्बन्धो को साहचर्यवादी विचार-साहचर्य के नियम बताते है। अंग्रेज साहचर्यवादियो ने इन तीनो के मूल मे केवल सहवर्तिता के नियम को ही देखने का प्रयास किया है। उनके अनुसार समानता एवं विरोध के मूल मे भी सहवर्तिता का नियम ही काम करता रहता है।

अरस्तू ने मन को कई शक्ति-खण्डो मे विभाजित किया था। किन्तु हाब्ज[3] ने केवल दो शक्तियो को स्वीकार किया संवेदना और प्रत्याह्वान (इसमे साहचर्य भी सम्मिलित था)। बाद मे इन दोनो शक्तियो को भी वह केवल एक ही सकार्य (गति) के रूप मे देखता है। हाब्ज ने साहचर्य मे नियन्त्रण की भी चर्चा की है। उसने कहा है कि विचार स्वतन्त्र रूप से एक विषय से दूसरे विषय तक भ्रमण करता हैं जब तक कि कोई प्रबल इच्छा विचार को प्रभावित न करे। किसी प्रबल इच्छा के द्वारा विचारो को नियन्त्रित किया जा सकता हैं। इस प्रकार हाब्ज विचारो के क्रम का जिक्र करता है। विचारो के क्रम को अब क्रमागत साहचर्य[4] कहा जाता है।

[1] Contrast
[2] Contiguity
[3] Hobbes
[4] Successive Association

अंग्रेजी साहचर्यवादियो मे दूसरे व्यक्ति हैं जान लॉक[1]। लॉक अनुभववादी दार्शनिक हैं। उनका कहना है कि ज्ञान प्राक्-अनुभव[2] स्रोत से नही आता। लॉक ने समस्त ज्ञान को अनुभवजन्य माना है। वह किसी ऐसे ज्ञान को स्वीकार नही करता जो जन्मजात प्रत्यय पर आधारित है। लॉक वश परम्परा को नही मानता। वह वातावरण का समर्थक है और कहता है कि बच्चे का मन कोरी पटिया के सदृश है जिस पर कुछ भी अंकित किया जा सकता है। यह अंकन बच्चे के स्वानुभव द्वारा होता है। अत: ज्ञान का मूल अनुभव माना जाना चाहिए। हमारे सभी प्रत्यय ससार के अनुभव पर आधारित है। एक प्रत्यय दूसरे प्रत्यय पर आधारित हो सकता है किन्तु मूलत. सभी प्रत्यय अनुभवजन्य हैं। ज्ञान की यथार्थता की जाँच अनुभव द्वारा ही की जा सकती है। मन मे एक प्रत्यय दूसरे प्रत्यय से जुड़ जाता है। प्रत्ययो का यह सम्बन्ध दो कारणो से होता है। एक तो कुछ प्रत्यय तार्किक दृष्टि से एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं, दूसरे प्रत्ययो मे यह मेल सयोगवश भी हो जाता है इसी सयोगवशात् स्थिति को ही लॉक "विचार-साहचर्य" कहता है। मनोविज्ञान के इतिहास मे विचार-साहचर्य पद का प्रयोग सर्वप्रथम जान लॉक ने ही किया है। आज के बहुत से वैज्ञानिक निष्कर्षों की भविष्यवाणी लॉक ने सन् १६९० ई० मे ही अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "मानव बुद्धि पर निबन्ध"[3] मे कर दी थी। उसने विचार साहचर्य के क्षेत्र मे बहुत कुछ बातो का विवेचन किया। जिसे आज हम युगपत् साहचर्य[4] कहते हैं, उसके विषय मे लॉक उसी समय अपने शब्दो मे कह चुका था।

लॉक के पश्चात बर्कले[5] का नम्बर आता है। बर्कले ने साहचर्य शब्द का प्रयोग अपने लेखो मे नही किया, किन्तु उसने साहचर्य से मिलती-जुलती बाते की। बर्कले ने 'दृष्टि ही सृष्टि है' कहकर दर्शन मे तहलका मचा दिया। उसने कहा हम देखते हैं

1 John Locke 2 *A Priori*
3 *Essay Concerning Human Understanding*
4 Simultaneous Association 5 George Berkley

इसीलिए संसार है, न देखें तो ससार का अस्तित्व ही नही। यहाँ हमारा अभिप्राय वर्कले के दार्शनिक विचारो का विवेचन करना न होकर उसके मनोवैज्ञानिक मत को देखना ही है। वर्कले भी अनुभववादी है। उसके लिए तो अनुभव ही सब कुछ है। उसने ज्ञान का विश्लेषण करते हुए कहा कि हमे शब्दो के अर्थ का बोध तब होता है जब शब्दों के मूल मे स्थित पदार्थ से शब्द को सम्बन्धित कर देते है। इसी प्रकार से वर्कले कहता है कि सकेतो का अर्थ भी जाना जाता है। एक विशेष प्रकार की ध्वनि को सुनकर श्रोता समझता है कि पड़ोस मे कोई जानवर चर रहा है, एक अन्य ध्वनि को सुनकर वह सोच लेता है कि बन्द दरवाजे के बाहर कोई साइकिल पर आया है। श्रोता पहले से ही पशु के चरने की और साइकिल के चलने की ध्वनियो से परिचित है। वह वर्तमान ध्वनि को पूर्व दृष्ट तथा श्रुत वस्तुओ से सम्बद्ध कर लेता है। सकेत और अर्थ का यह सम्बन्ध एक साथ न होकर क्रमशः होता है। पहले सकेत आता है तब उसका अर्थ उद्-बुद्ध होता है।

वर्कले के पश्चात अंग्रेजी अनुभववाद के आकाश मे डेविड ह्यूम[4] का उदय हुआ। ह्यूम भी एक दार्शनिक था और अनुभववाद को ही एक कडी के रूप मे हमारे सामने आता है। अनुभववादियो के पहले दार्शनिक यथार्थ के विवेचन मे ही प्रायः लगे रहते थे। वे प्राय. चरम यथार्थ, सृष्टि की उत्पत्ति, आत्मा-परमात्मा आदि के विषय मे ज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहते थे। लॉक ने कहा था आत्मा, चरम सत्ता आदि के विषय मे ज्ञान प्राप्त करने के पहले ज्ञान का ही विवेचन कर लिया जाय तो अच्छा है। अनुभव-वादियो ने ज्ञान की यथार्थता को जांचने मे ही अपना परिश्रम सार्थक समझा। लॉक और वर्कले के काय को ह्यूम ने आगे बढाया। ह्यूम ने ज्ञान की मीमासा करते हुए सोचना प्रारम्भ किया कि मन के कार्य के पीछे प्रेरक रूप मे कौन सा सिद्धान्त कार्य करता है ? उसने इस

1 David Hume

प्रश्न का उत्तर साहचर्य के सिद्धान्त मे ढूंढ निकाला। उसने कहा विचारो मे पारस्परिक आकर्षण की क्रिया होती रहती है। इसी क्रियात्मक शक्ति के कारण विचार सक्रिय हो उठते हैं। इसी को तो विचार-साहचर्य भी कहा जाता है। उसने सहवर्तिता के नियम को विशेष महत्व का बताया और विचारो के क्रम की ओर भी ध्यान दिया। हम सभी प्रकार के चिन्तन मे कार्य-कारण सम्बन्धो के आधार पर तर्क करते हैं। साहचर्य के आधार पर भी सोचने की हमारी आदत बन गयी है। मन भी साहचर्य के सिद्धान्त के अनुसार ही क्रिया करता है। ह्यूम के समय मे डेविड हार्टले[1] भी मनोविज्ञान की समस्याओ को सुलझाने मे व्यस्त थे। उन्होने मनोविज्ञान के मूल मे केवल सहवर्तिता के नियम को स्वीकार किया और कहा कि सभी मानसिक व्यापार इसी नियम पर आधारित हैं। सवेदनाएँ जुड़-कर जटिल बन जाती हैं, विचार भी मन मे मिलकर जटिल विचार बन जाते हैं, गतियाँ सम्बन्धित होकर आदत बन जाती हैं, दुख-सुख की सवेदनाएँ मिलकर सवेगो का रूप धारण कर लेती हैं। इस प्रकार क्रमश या एक साथ विचारो का आपस मे सम्बन्धित हो जाना ही मानसिक व्यापार का कारण बनता है।

हार्टले के पश्चात टामस ब्राउन का नाम उल्लेख-नीय समझ पड़ता है। उसके अनुसार बहुत सी सवेदनाएँ और बहुत से विचार इतने जटिल हैं कि उनका विश्लेषण करना अनिवार्य हो जाता है। ये जटिल विचार कई प्रकार के विचारो से मिलकर एक नये विचार का रूप धारण कर लेते है जिस प्रकार एक रासायनिक घोल मे कई तत्वो का मेल तो रहता है, किन्तु घोल की अपनी एक नयी विशेषता हो जाती है। ब्राउन ने सहवर्तिता के नियम को स्वीकार करते हुये आवृत्ति,[2] तात्कालिकता[3] और सजीवता[4] के गौण नियमो की चर्चा की और ये गौण नियम आज भी मनोविज्ञान के लिए अमूल्य नियम माने जाते हैं। ब्राउन कहता है विचार केवल सम्बन्धित ही नही

1 David Hartley
2 Frequency
3 Recency
4 Liveliness

होते वरन् एक दूसरे की तुलना भी होती रहती है। सम्बन्धो के ज्ञान को ही उसने यथार्थ ज्ञान माना है।

अँग्रेजी साहचर्य्यवाद के सिलसिले मे अलेक्जेण्डर बेन[1] का नाम भी उल्लेखनीय है। बेन कहता है कि मानसिक व्यापार के मूल मे साहचर्य्य न होकर विवेचन समझ पड़ता है जिसके सहारे अनेक प्रत्ययो के ढेर मे से किसी प्रत्यय को चुन लिया जाता है। बेन कट्टर अनुभववादी नही था। उसने लॉक की भाँति जन्मजात प्रत्यय को तो अस्वीकार किया किन्तु कुछ मांसपेशीय गतियो को जन्मजात माना। बेन का यह भी कहना था कि साहचर्य्य के मूल मे केवल सान्निध्य ही न होकर समानता और भेद, कारण और कार्य तथा उपयोगिता और अन्य सम्बन्ध भी हैं। इस प्रकार बेन का साहचर्य्यवाद उसके पूर्व आचार्यों के साहचर्य्यवाद से कुछ भिन्न हो गया। उसने वश परम्परा के महत्व को कुछ-कुछ स्वीकार किया।

एबिंगहास[2] के प्रयोगो से साहचर्य्यवाद मे एक नये युग का पदार्पण होता है। एबिंगहास ने सन १८८५ ई० मे स्मृति पर एक प्रयोग किया और इस प्रयोग के आधार पर उसने 'विस्मृति वक्र'[3] का विचार दिया। कुछ निरर्थक अक्षर समूहो को याद करवाया गया और कुछ समय पश्चात उन्ही व्यक्तियो से उन निरर्थक अक्षर समूहो को दुहराने को कहा गया। यह देखा गया कि याद किए हुए विषय का अधिकाश भाग शीघ्र ही भूल जाया गया, किन्तु अवशिष्ट अंश को धीरे धीरे भूला गया। अर्थात् याद की हुई वस्तु मे से जो भाग भूल जाता है वह याद करने के कुछ समय पश्चात ही बहुत कुछ विस्मृत हो जाता है। एबिंगहास का यह प्रयोग केवल स्मृति पर ही नही था वरन् यह सीखने की ओर भी सकेत करता है। 'सीखना' मनोविज्ञान के लिए नया और पुराना दोनो प्रकार का प्रत्यय है। पुराना तो इस दृष्टि से कि पुराने मनोवैज्ञानिक भी स्मृति पर विचार करते समय कुछ थोडा सा विचार याद करने की प्रक्रिया पर कर लेते थे और नया

1 Alexander Bain

2 Ebbinghaus (1850 1909)

3 Forgetting Curve

इस दृष्टि से कि 'सीखना' आज स्मृति का एक अंग न होकर स्वतन्त्र प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है और आज के मनोविज्ञान की पुस्तकों में 'सीखना' पर विशद् विवेचन मिलता है जबकि मनोविज्ञान की पुरानी पाठ्य-पुस्तकों में 'सीखना' जैसा महत्वपूर्ण विषय ढूंढने पर भी नहीं मिलता है। पुराने मनोवैज्ञानिकों ने जब साहचर्य्य पर विचार किया था तो उन्होंने केवल प्रत्याह्वान पर ध्यान दिया था। उन्होंने यह पता लगाने का प्रयत्न किया था कि एक बात के याद आते ही दूसरी बात कैसे याद आ जाती है। नव्य साहचर्य्यवादी का ध्यान प्रत्याह्वान की ओर न होकर सीखने की ओर अधिक है। वह यह मालूम करना चाहता है कि साहचर्य्य स्थापित कैसे होता है। बाद में स्थापित साहचर्य्य का प्रत्याह्वान द्वारा परीक्षण भले ही कर लिया जाय, किन्तु देखना तो यह है कि साहचर्य्य स्थापित किस विधि से होता है। एबिंगहास के प्रयोग में सीखने की इस प्रक्रिया की ओर भी ध्यान दिया गया था। प्राचीन साहचर्य्यवादियों ने कार्य से कारण का अनुमान लगाया था; नव्य साहचर्य्यवादी ज्ञात कारण से कार्य की ओर जाते हैं। एबिंगहास ने निरर्थक शब्दों को याद करने के लिए कहा था। निरर्थक शब्दों में पहले से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इन्हें याद करने के लिए कई बार दुहराना पड़ता है। इस प्रक्रिया में याद करने वाले के मन में निरर्थक शब्दों के बीच में कुछ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। कई बार एक ही क्रम से निरर्थक शब्दों को सीखने से इन शब्दों में सहवर्तिता के नियम के अनुसार सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और व्यक्ति उन निरर्थक शब्दों को क्रम से याद कर लेता है। इस क्रिया में 'आवृत्ति' का नियम भी काम करता रहता है। कितनी बार दुहराने से कितना याद होता है ? इस प्रश्न का उत्तर भी देने का प्रयत्न किया गया है। एबिंगहास ने 'आवृत्ति' के परिणाम को भी सामने रख दिया है और आज हम 'सीखने की वक्ररेखा' के रूप में इस परिणाम से परिचित हो गये हैं। 'विस्मृति के वक्र' में एबिंगहास ने तात्कालिकता को भी परिणाम के रूप में पेश कर दिया है।

एबिंगहास के प्रयोग से उत्साहित होकर अनेक मनोवैज्ञानिकों ने साहचर्य्य के निर्माण की प्रक्रिया को जानने के लिए

प्रयोग प्रारंभ कर दिये। मूलर के प्रयोगो ने यह सिद्ध किया कि सीखने मे प्रत्ययो मे सम्बन्ध देखने का प्रयास किया जाता है, सान्निध्य का नियम तो अपने आप आकर एक परिस्थिति बन सकता है किन्तु उसमे साहचर्य्य स्थापित करने की सक्रिय शक्ति नही है। वुण्ट ने पशुओ के ऊपर प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला कि कुत्ते भी साहचर्य्य के द्वारा सीखते हैं, यद्यपि ये साहचर्य्य बड़े साधारण होते है। मार्गन ने भी कुत्तो के ऊपर प्रयोग करके सिद्ध किया कि पशु या तो सरल साहचर्य्य के द्वारा सीखते हैं या फिर प्रयत्न और भूल से सीखते हैं न कि तर्क-वितर्क के द्वारा जैसा कि डार्विन के अनुयायी कुछ विकासवादियो ने सिद्ध करने की चेष्टा की थी और एक अप्रशिक्षित कुत्ते द्वारा पहली बार सँकरी को ऊपर करके दरवाजा खोलने की क्रिया देखकर ये विकासवादी नाच उठे थे तथा इन्होने पशु मे भी 'तर्क' का तर्क पेश कर दिया था। वस्तुत ये विकासवादी यह भूल गये थे कि कुत्ते ने तर्क के द्वारा दरवाजा नही खोला था वरन् दरवाजा खोलना उसने सीखा था।

थार्नडाइक[1] ने साहचर्य्यवाद को नया बल प्रदान किया। थार्नडाइक ने जेम्स और कैटल जैसे प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिको से शिक्षा प्राप्त की थी। उसे हारवर्ड तथा कोलम्बिया विश्वविद्यालयो के मनोविज्ञान विभाग मे पढने का सौभाग्य मिला था और कोलम्बिया विश्वविद्यालय मे तो उसने प्राध्यापक का भी कार्य किया। किन्तु थार्नडाइक पर अपने गुरुओ का इतना अधिक प्रभाव नही पड़ा जितना कि वुण्ट और मार्गन के प्रयोगो का। वुण्ट और मार्गन की पुस्तको का उसने रुचि से अध्ययन किया और उसने पशु-मनोविज्ञान मे रुचि लेना प्रारम्भ किया। थार्नडाइक ने मछली, बिल्ली, कुत्ते और बन्दर पर कई प्रयोग किये। उसने यह जानने का प्रयत्न किया कि पशु किस प्रकार सीखते हैं। उसने एक पिंजडे मे एक तन्दुरुस्त बिल्ली को बन्द कर दिया। बन्द करने के समय बिल्ली भूखी रखी गई और पिंजड़े के बाहर पुरस्कार स्वरूप भोजन रख दिया गया। पिंजडे का द्वार कमानी को ऊपर करने से खुल जाता था। बिल्ली को दरवाजा खोलने मे

[1] Edward Lee Thorndike.

स्वतन्त्र कर दिया और यह देखा जाने लगा कि वह क्या करती है। बिल्ली के आचरण को लिख लिया गया और दरवाजा खोलने मे उसे जितना समय लगा उसे भी नोट कर लिया गया। बिल्ली के लिये ऐसी परिस्थिति कई बार लाई गई और यह देखा गया कि प्रत्येक बार मे कितना कम समय लगा और आचरण मे क्या परिवर्तन आया। इसी प्रकार अन्य पिंजडो मे भी पशुओं को रखकर प्रयोग किया गया और किसी पिंजडे का दरवाजा सिटकनी नीचे करने से खुलता तो किसी का बटन दबाने से। भूखा होने के कारण पशु भोजन प्राप्त करना चाहता था किन्तु भोजन पाने के लिए उसे दरवाजा खोलना सीखना था। बडी सावधानी से अध्ययन किया गया कि पशु दरवाजा खोलना किस प्रकार सीखता है। सीखने मे वह किस प्रकार प्रगति करता है, इस बात की जानकारी प्राप्त की जाती और इस प्रगति को 'सीखने की वक्ररेखा' द्वारा दिखला कर स्पष्ट किया जाता।

थार्नडाइक ने निष्कर्ष निकाला कि जिस क्रिया से प्राणी को सन्तोष मिलता है उसे वह शीघ्र सीख जाता है और जिस परिस्थिति मे यह क्रिया सीखी जाती है उसी परिस्थिति के साथ यह क्रिया सम्बद्ध हो जाती है। इसी प्रकार जिस क्रिया से असन्तोष मिलता है वह क्रिया जिस परिस्थिति मे घटित होती है उस परिस्थिति से असम्बद्ध हो जाती है और जब कभी वह परिस्थिति आती है तो उस क्रिया की उत्पत्ति की सम्भावना कम रहती है। इसके विपरीत सन्तोष-प्रद परिस्थिति के आते ही तत्सम्बन्धी क्रिया के होने की बहुत अधिक सम्भावना रहती है। सीखने के इस नियम को थार्नडाइक ने परिणाम का नियम कहा है। थार्नडाइक ने अपने इस ऐतिहासिक नियम की घोषणा सन् १८९८ मे की। परिणाम के नियम की खोज के पूर्व अभ्यास का नियम बहुत अधिक प्रचलित था। अभ्यास एव अनभ्यास के नियम से पशुओं के सीखने की प्रक्रिया को ठीक से समझाया नही जा सका। पशु यदि एक प्रतिक्रिया करता था तो अभ्यास के नियम के अनुसार उसे दुबारा उसी प्रतिक्रिया मे लाभ हो सकता था किन्तु यह देखा गया कि असन्तोषप्रद कार्य को पशु त्याग देता है, यद्यपि अभ्यास से मिलने वाला लाभ उसे असन्तोषप्रद कार्य को करने मे मिल सकता है। इससे यह

सिद्ध होता है कि केवल अभ्यास का नियम ही पशु के सीखने में नहीं काम करता वरन् परिणाम का नियम भी काम करता रहता है।

थार्नडाइक के परिणाम के नियम को वुडवर्थ महोदय केवल साहचर्य्य का नियम ही मानते हैं। साहचर्य्य को दृढ करने या शिथिल करने मे परिणाम का नियम बडा सहायक होता है। जिस परिस्थिति मे प्रतिक्रिया सन्तोषप्रद होती है उस परिस्थिति से वह प्रतिक्रिया सम्बद्ध हो जाती है। इसके विपरीत असन्तोषप्रद प्रतिक्रिया और परिस्थिति मे सम्बन्ध स्थापित नही हो पाता। कुछ समय पश्चात् सन् १९३२ के आसपास थार्नडाइक ने परिणाम के नियम मे एक सशोधन पेश किया। उसने मनुष्य के सीखने की प्रक्रिया पर प्रयोग करके देखा कि दण्ड का इतना अधिक नकारात्मक प्रभाव नही पडा जितना कि पुरस्कार का सकारात्मक प्रभाव पडा। अतः थार्नडाइक ने अपने परिणाम के नियम मे दण्ड से अधिक पुरस्कार पर बल दिया।

थार्नडाइक के परिणाम के नियम की आलोचना भी खूब की गई। कुछ प्रमुख आलोचनाओ की ओर सकेत कर देना ठीक रहेगा। परिणाम के नियम के अनुसार कोई क्रिया यदि सन्तोषप्रद है, तो सुदृढ हो जायगी और यदि असन्तोषप्रद है, तो शिथिल किन्तु परिणाम तो बाद मे मालूम होगा और क्रिया पहले ही हो जायगी। तब क्रिया के परिणाम से क्रिया की दृढता या शिथिलता तर्कसगत नही समझ पडती। दूसरे, सफल प्रतिक्रिया पाने के लिए प्राणी के प्रयत्न और भूल को नियम के मूल मे मान लिया गया है। तीसरा दोष यह भी कहा जाता है कि थार्नडाइक ने परमाणुवाद का आश्रय लेना प्रारम्भ कर दिया। परिणाम के नियम से सबसे अधिक आचरणवादी चिढे हुये प्रतीत होते हैं। सन्तोष, असन्तोष, आराम, सुख आदि पद चेतना के द्योतक हैं और थार्नडाइक पर आरोप लगाया गया कि उसने पशुओ के व्यवहार के लिए चेतनापूर्ण पदो का प्रयोग करने की अनधिकार चेष्टा की है। उपर्युक्त आलोचनाओ मे बहुत अधिक सार नही प्रतीत होता। पहली आलोचना मे इस बात का ध्यान नही रखा गया कि थार्नडाइक क्रमिक साहचर्य्य की बात

करता है और आगे आने वाली क्रिया के विषय मे पूर्व क्रिया के परिणाम का प्रभाव पड ही सकता है। दूसरी आलोचना मे यह कहा गया है कि थार्नडाइक ने परिणाम के लिए भूल और प्रयत्न कल्पना की है। यदि थार्नडाइक ने ऐसी कल्पना की भी हो, तो उसका सम्बन्ध परिणाम के 'नियम से विशेष नही है और परिणाम के नियम को स्वीकार करने मे कोई बाधा नही समझ पडती। थार्नडाइक की मशा यह भी नही है कि उद्दीपक, प्रतिक्रिया या परिणाम को परमाणु के रूप मे समझा जाय अत. उसे परमाणुवादी नही कहा जा सकता। आचरणवादी की आलोचना तो उसकी अपनी पूर्वधारणा से प्रेरित समझ पडती है क्योकि थार्नडाइक ने कई ऐसे प्रमाण पेश किये, जिनके आधार पर यह सिद्ध होता है कि पशुओ के सीखने की प्रक्रिया को समझाने मे सन्तोष-असन्तोष आदि के पद सरलता से प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

थार्नडाइक ने सदा उद्दीपक और प्रतिक्रिया मे सम्बन्ध दिखाने की चेष्टा की, इसीलिए उसे साहचर्य्यवाद के अन्तर्गत समझा जा रहा है वैसे वह अपने को सम्बन्धवादी[1] कहना अधिक पसन्द करता है, क्योकि वह यह नही मानता कि केवल सहवर्तिता से साहचर्य्य स्थापित किया जा सकता है। उसके अनुसार साहचर्य्य सदा उद्दीपक और प्रतिक्रिया के सम्बन्धो द्वारा ही होता है और जब तक कोई प्रतिक्रिया उद्बुद्ध न हो तब तक केवल सान्निध्य के कारण साहचर्य्य की स्थापना हो नही सकती।

जिस समय थार्नडाइक परिणाम के नियम की खोज मे लगा हुआ था, उसी समय रूस का प्रसिद्ध शरीर-विज्ञान-वेत्ता पावलोव[2] पाचन-क्रिया पर कुछ प्रयोग कर रहा था। उसने देखा कि भूखे कुत्ते के सामने खाना रखने पर तो उसके मुँह से लार टपकती ही है, बर्तन को देखकर भी मुँह से लार टपकने लगती है। पावलोव ने एक प्रयोग मे भोजन देने के साथ-साथ घण्टी बजायी और देखा कि बाद मे केवल घण्टी बजाने पर भी लार टपकने

[1] Connectionist [2] Ivan Petrovitch Pavlov

लगती थी। लार टपकने की प्रतिक्रिया कृत्रिम रूप से घण्टी की ध्वनि से सम्बन्धित हो गई। पावलोव ने लार की मात्रा भी जानना चाही और ऐसा करने के लिए उसने कुत्ते के मुँह मे छेद कर दिया। यदि कुत्ते को एक पृथक कमरे मे रखा जाता था, तो भोजन के प्रभाव मे तथा लार की मात्रा मे वृद्धि हो जाती थी। घण्टी से सम्बद्ध प्रतिक्रिया मे भी लार की मात्रा पर अलग एव शान्त कमरे का प्रभाव पडता था। यदि कुत्ते को किसी ऐसे स्थान पर रखा जाता जहाँ अनेक उद्दीपक विद्यमान होते, तो लार की मात्रा बहुत कम हो जाती थी। पावलोव के अनुसार सहज क्रियाएँ किसी भी प्रकार के उद्दीपक से सम्बद्ध की जा सकती हैं। किसी उद्दीपक से सहज क्रियाएँ उत्तेजित की जा सकती हैं। कुछ समय पश्चात पावलोव ने प्रयोग की विधि मे कुछ परिवर्तन कर दिया। इस परिवर्तित प्रयोग मे घण्टी बजती रही, किन्तु भोजन सामने नही आया। ऐसा कई बार करने पर लार टपकने की मात्रा मे धीरे धीरे कमी होती गई और बाद मे लार बिलकुल बन्द हो गई। पावलोव ने इसे सम्बद्धीकृत प्रतिक्रिया का लोप[1] कहा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सम्बद्ध उद्दीपक को यदि पुष्ट न किया जाय, तो सम्बन्धीकरण का लोप हो जाता है, अर्थात घण्टी बजाने के साथ कभी-कभी भोजन मिलते रहने पर ही सम्बन्धीकरण का अस्तित्व रह सकता है। इसे प्रबलीकरण[2] कहा जाता है। प्रबलीकरण का तात्पर्य यह है कि सम्बद्ध उद्दीपक के साथ-साथ मौलिक उद्दीपक भी समय समय पर प्रस्तुत होता रहे।

सम्बन्धीकरण की प्रक्रिया पर अनेक प्रयोग किए गये। इन प्रयोगो से कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले गये हैं। सम्बन्धीकृत प्रतिक्रिया पर कुछ प्रभावो का भी विवेचन किया गया है। इन प्रभावो का उल्लेख करना आवश्यक समझ पडता है। यहाँ पर हम सात बातो का सक्षेप मे उल्लेख करेंगे। पहला प्रभाव है पुनरावृत्ति[3] का। यदि मौलिक और कृत्रिम उद्दीपको के सहचार की पुनरावृत्ति

1 Extinction 2 Reinforcement
3 Repetition

की जाय, तो दोनों मे साहचर्य्य बढ जायगा। दूसरा प्रभाव अवधि[1] का पडता है। यदि सम्बद्ध और असम्बद्ध उद्दीपको के प्रस्तुत करने की अवधि आधे सेकण्ड से बढ़ जाती है, तो प्रतिक्रिया कम सार्थक होती है। सम्बन्धीकरण मे उद्दीपक का सामान्यीकरण[2] होता चलता है। पहले तो प्रतिक्रिया किसी ऐसे उद्दीपक से ही सम्बद्ध होती है जो विशेष रूप से मौलिक प्रतिक्रिया के साथ होता है, किन्तु धीरे-धीरे अनुभव के आधार पर अन्य मिलते-जुलते उद्दीपको से भी सम्बद्ध हो जाती है। ज्यो-ज्यो प्राणी सीखने मे प्रगति करता है वह उद्दीपको में भेद करने लगता है और उद्दीपक के स्वरूप को पहचानने लगता है। कुत्ता सभी प्रकार की घण्टी बजने पर लार नही टपकाता। इसे भेदीकरण[3] कहा जाता है। पाँचवां प्रभाव बाह्य निरोध[4] का है। मौलिक उद्दीपक के साथ एक अन्य उद्दीपक काम मे लाया जाता है। यदि इस अन्य उद्दीपक के अतिरिक्त कोई और उद्दीपक साथ-साथ प्रस्तुत किया जाय, तो प्रतिक्रिया निर्बल हो जाती है। घण्टी के साथ शख बजाई जाय तो लार कम टपकेगी। छठा प्रभाव, लोप[5] का पडता है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। उच्च सीखना[6] भी सम्बन्धीकरण पर प्रभाव डालता रहता है। सीखने में अधिक प्रगति हो जाने पर एक सम्बन्धीकरण के आधार पर दूसरे सम्बन्धीकरण की रचना कर ली जाती है। एक बालक भाई की छडी से मार खाता है। छडी से भय का सम्बन्धीकरण हो जाता है, बाद मे भाई के लाल चेहरे को देखकर ही वह डरने लगता है। यह उच्चतर साहचर्य्य हुआ।

ध्यान से देखने पर पता चलता है कि थार्नडाइक का पुरस्कार और पावलोव का प्रबलीकरण एक ही से हैं। दोनो ही साहचर्य्य स्थापित करने मे अच्छे साधन हैं। फिर भी आधुनिक मनोविज्ञान पुरस्कार से अधिक प्रबलीकरण का प्रयोग करता है क्योकि

1 Duration | 2 Stimulus generalization
3 Differentiation | 4 External inhibition
5 Extinction | 6 Higher learning

यह अधिक स्पष्ट समझ पड़ता है। बिजली के धक्के देकर चूहो और बिल्लियो पर कई प्रयोग किये गये है। इन बिजली के धक्को को पुरस्कार कहना अधिक उपयुक्त नही समझ पड़ता जितना कि प्रबलीकरण कहना, यद्यपि थार्नडाइक इसे भी पुरस्कार कहना अधिक अच्छा समझता है। नव्य साहचर्य्यवाद मे प्रबलीकरण का नियम बड़ा महत्वपूर्ण है। इस नियम ने साहचर्य्यवाद को उन्नतिशील बना दिया है। बहुत समय पूर्व ब्राउन ने वस्तुओ के सम्बन्धो के प्रत्यक्षीकरण को महत्वपूर्ण बताया था। मूलर ने प्रयोगो द्वारा ब्राउन के मत का परीक्षण किया और सम्बन्धो के प्रत्यक्षीकरण को वैज्ञानिक बना दिया। फिर भी आधुनिक मनोविज्ञान मे इस ओर कम ध्यान दिया जाता है। स्पीयरमैन ने सम्बन्धो के प्रत्यक्षीकरण पर ही बौद्धिक मनोविज्ञान को आधारित किया है, किन्तु उसने अपने मत को साहचर्य्यवाद नही कहा।

साहचर्य्यवाद का सम्बन्ध सीखने से है या यों कहिए कि सीखने का सम्बन्ध साहचर्य्यवाद से है। सीखने का विषय आधुनिक मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण विषय है और इस दृष्टि से साहचर्य्यवाद का मूल्य कुछ न कुछ है अवश्य। किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान के क्षेत्र मे कुछ अन्य महत्वपूर्ण वादो का उदय हो गया है जिनके सामने साहचर्य्यवाद मध्यम पड गया है। अब हम इन्ही महत्वपूर्ण प्रसिद्ध सम्प्रदायो पर अगले अध्याय से विचार करेंगे।



२

संरचनावाद और प्रकार्यवाद

हम किसी वस्तु का दो प्रकार से अध्ययन करते हैं। एक तो उस वस्तु के स्वरूप और उसकी बनावट का हम अध्ययन करते हैं और दूसरे उस वस्तु के कार्य के अध्ययन की ओर हम ध्यान देते हैं। पिछले अध्याय मे हम यह देख चुके है कि विज्ञान की विषय वस्तु मे परिवर्तन हुआ और मनोविज्ञान मे आत्मा का अध्ययन न करके विद्वान लोग चेतना के अध्ययन की ओर मुडे। मनोविज्ञान ने चेतनापूर्ण अनुभव को अपनी पाठ्यवस्तु के रूप मे स्वीकार किया। इस चेतना का अध्ययन दो प्रकार से किया जाने लगा। कुछ लोग चेतना की रचना पर अधिक बल देने लगे और कुछ अन्य लोग चेतना के कार्य को महत्वपूर्ण मान कर चेतना के कार्यों के अध्ययन मे जुट गये। इस प्रकार मनोविज्ञान मे दो दल साफ दिखायी पड़ने लगे। एक दल था सरचनावादियो[1] का और दूसरा दल था प्रकार्यवादियो[2] का। अब हम इन दोनो सम्प्रदायो के विषय मे चर्चा करेंगे। इस चर्चा मे सरचनावाद को पहले लिया जायगा।

1. Structuralists 2. Functionalists

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम दशक में अमेरिका मे मनोविज्ञान के क्षेत्र मे विलियम जेम्स[1] का बड़ा प्रभाव था। विलियम जेम्स बहुमुखी प्रतिभा का व्यक्ति था। वह मेडिकल कालेज मे विज्ञान का प्राध्यापक था, बाद मे मनोविज्ञान का आचार्य नियुक्त हुआ और उसके पश्चात् दर्शन का आचार्य बना। उसने अपने छात्र-जीवन मे ही अमेरिका और यूरोप दोनो महाद्वीपो मे रहने का अनुभव प्राप्त किया था। उसने बारह वर्ष कठिन परिश्रम करके "मनोविज्ञान के सिद्धान्त"[2] नामक पुस्तक लिखी जो सन् १८९० ई० मे प्रकाशित हुई। 'मनोविज्ञान के सिद्धान्त' अपने समय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक थी। इस पुस्तक ने मनोविज्ञान के क्षेत्र मे क्रान्ति-सी मचा दी। पुस्तक दो खण्डो मे प्रकाशित की गयी है। प्रथम खण्ड के प्रथम छ अध्यायो मे नवीन मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि तैयार की गयी है। इन अध्यायो मे 'नाडी-मण्डल' पर जीव-विज्ञान की दृष्टि से विचार किया गया है और मनोविज्ञान के भौतिक आधार को स्पष्ट किया गया है। आदत के विषय मे जेम्स के प्रसिद्ध सिद्धान्त इसी भाग मे हैं। इस खण्ड के शेष भाग मे मनोवैज्ञानिक विषयो का विवेचन है। ध्यान, प्रत्यय, विवेक, तुलना आदि की विशद् विवेचना की गयी है। साहचर्य्य पर भी एक अध्याय है। पुस्तक के दूसरे खण्ड मे ऐसा लगता है कि जेम्स ने मनोविज्ञान के विषयो का परम्परागत क्रम से वर्णन किया है। द्वितीय खण्ड के अध्याय क्रमश सवेदना, प्रत्यक्षीकरण, विश्वास, तर्क, मूल प्रवृत्ति आदि का वर्णन करते हैं। सम्मोहन पर भी एक अध्याय है और अन्तिम अध्याय मे अनिवार्य सत्यो[3] का विश्लेषण किया गया है।

जेम्स अपनी पुस्तक के प्रारम्भ मे ही कहता है कि "मनोविज्ञान मानसिक जीवन का विज्ञान है।"[4] मानसिक जीवन मे

[1] William James (1842 1910)
[2] *The Principles of Psychology* [3] Necessary Truths
[4] Psychology is the Science of Mental Life

घटनाएँ और दशाएँ दोनो सम्मिलित हैं। जेम्स की रुचि चेतना के प्रवाह मे है। जेम्स के अनुसार चेतना का प्रथम गुण उसकी वैयक्तिकता है। चेतना मे 'स्व' का अनुभव निहित है किन्तु यह 'स्व' अनुभूत इकाई है, इस 'स्व' का आत्मा से कोई प्रयोजन नही। चेतना का दूसरा गुण है परिवर्तनशीलता। चेतना की कोई दशा एक क्षण से अधिक नही ठहरती। चेतना के तीसरे गुण के रूप मे उसकी प्रवाहशीलता है। चेतना एक सतत प्रवाह है। यह प्रवाह कभी रुकता नही। चेतना के चौथे गुण को बताते हुए, जेम्स कहता है कि विचार सदा किसी अन्य वस्तु के प्रति होता है, चेतना को चेतना नही होती। चेतना का अन्तिम गुण यह है कि यह सदा निर्वाचन करती रहती है। ससार के अनेक पदार्थों मे कुछ को यह अपने लिए चुन लेती है। यह चुनाव सदा चलता ही रहता है। जेम्स कहता है कि मनोविज्ञान का अध्ययन तात्कालिक चेतन अनुभवो से प्रारम्भ करना चाहिए न कि आत्मा या मन से।

मनोविज्ञान की विषय-वस्तु के रूप मे जेम्स ने चेतना को स्वीकार किया है। अध्ययन की पद्धति के रूप मे जेम्स उदारता बरतता है। वह मानता है कि मनोविज्ञान एक विज्ञान है और वैज्ञानिक निरीक्षण ही वास्तविक मनोवैज्ञानिक पद्धति है, किन्तु वह यह भी स्वीकार करता है कि मनोविज्ञान अन्य प्राकृतिक विज्ञानो से भिन्न है और मनोविज्ञान की विषय-वस्तु बडी जटिल है। मनोवैज्ञानिक पद्धति के रूप मे सर्वप्रथम वह अन्तर्दर्शन को स्वीकार करता है। अन्तर्दर्शन को वह मौलिक पद्धति मानता है। वह कहता है कि चेतना की दशाओ के अस्तित्व से तो इन्कार किया ही नही जा सकता और इनका अध्ययन अन्तर्दर्शन के द्वारा ही सम्भव है। जेम्स अन्तर्दर्शन को प्राकृतिक देन का अभ्यास मानता है और टिचनर और वुण्ट की तरह प्रशिक्षित अन्तर्दर्शक की वकालत नही करता है।

जेम्स अन्तर्दर्शन की कठिनाइयो से परिचित था और उसने प्रयोगात्मक पद्धति को भी स्वीकार किया। जेम्स ने प्रयोगात्मक पद्धति मे अपना विश्वास तो अवश्य प्रकट किया था, किन्तु वह इसका अन्धभक्त नही था। उसने अन्तर्दर्शन और प्रयोगात्मक

विधियो की सहायक विधि के रूप में तुलना को भी स्वीकार किया है। वह हमे मनोविज्ञान मे शब्दो के प्रयोग के विषय में चेतावनी देता है। भाषा का प्रयोग बहुत समझ-बूझकर करना चाहिए।

'स्व' का विश्लेषण करते हुए जेम्स कहता है कि भौतिक स्व, सामाजिक स्व और आध्यात्मिक स्व ध्यान से देखने पर अनुभवात्मक स्व ही समझ पड़ते हैं। इसमे किसी अनुभवातीत तत्व को मानना ठीक नही है।

जेम्स मूलप्रवृत्तियो में विश्वास करता था और अपनी पुस्तक मे उसने मूल-प्रवृत्ति पर एक अध्याय लिखा है। सवेगो के क्षेत्र मे तो जेम्स का योगदान सर्व प्रसिद्ध है। सवेगो के क्षेत्र मे उसने एक नये सिद्धान्त को जन्म दिया, जिसे आज हम जेम्स-लैंग सिद्धान्त[1] के नाम से पुकारते हैं।

विलियम जेम्स का रुझान संरचनावाद की ओर समझ पडता है किन्तु वह सरचनावादी नही था। विलियम जेम्स को मनोविज्ञान के किसी सम्प्रदाय मे रखना ठीक नही समझ पड़ता। उसका मनोविज्ञान सक्रमण-काल का मनोविज्ञान है। जेम्स के मनोविज्ञान मे आध्यात्मिकता के अश वर्तमान हैं, यद्यपि इसकी गति विज्ञान की ओर ही है। जेम्स ने चेतन अनुभवो को प्रवाहयुक्त बताया। वुण्ट ने इस प्रवाह का विश्लेषण किया है। इसीलिये सरचनावाद का जनक वुण्ट कहा जाता है न कि जेम्स।

वुण्ट ने कहा कि चेतनापूर्ण अनुभव बड़ा जटिल है और इसका विश्लेषण आवश्यक है। प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, सवेग आदि का वैज्ञानिक विश्लेषण जब तक नही किया जाता तब तक इनके कार्यों को ठीक नही समझा जा सकता है। वुण्ट के अनुसार हमारे चेतनापूर्ण अनुभव दो प्रकार के होते है। एक को उसने सवेदना कहा और दूसरे को भाव। सवेदनाएँ बाह्य पदार्थों की होती हैं, भाव व्यक्ति के अन्दर ही होते है। रंग, स्वर, स्वाद और त्वक्

[1] इसके विशेष अध्ययन के लिए देखिए लेखक की पुस्तक सामान्य मनोविज्ञान (प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली)

संवेदनाओं को प्रारम्भिक संवेदनाओं के रूप में स्वीकार किया गया है। अनुभव के ये सरलतम प्रकार हैं। वुण्ट के अनुसार मूल भाव तीन युग्मों के रूप में दर्शाये जा सकते हैं सुखद-दुःखद, उत्तेजित-शान्त, और तनावपूर्ण-तनावविहीन। ये मूलतत्व मिलकर अनेक रूप उत्पन्न कर देते हैं। वुण्ट की रुचि चेतना के कार्य में न होकर चेतना के स्वरूप में थी। वह चेतना के कार्यों का विश्लेषण न करके चेतना की रचना का विश्लेषण करता है। उसने लीपज़िग में एक अच्छी खासी मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला स्थापित कर रखी थी, जिसमें उसके अनेक शिष्यों ने मनोविज्ञान का ज्ञान प्राप्त किया था। इन शिष्यों में एक मेधावी शिष्य था टिचनर[1] जिसने तीन दशाब्दियों तक मनोविज्ञान-जगत् को अपनी प्रतिभा से आलोकित किया। अमरीकी मनोविज्ञान में टिचनर का स्थान अद्वितीय है। उसी ने नये मनोविज्ञान को स्थापित करने के लिए सर्वप्रथम प्रयास किया था। संरचनावाद और प्रकार्यवाद का नामकरण भी उसी ने किया था। टिचनर का जन्म इंगलैण्ड में हुआ था। वह लीपज़िग में केवल दो वर्ष रहा किन्तु जर्मनी की कुछ विशेषताएँ उसमें आ गई। उसने वुण्ट के पथ प्रदर्शन में डाक्टर की उपाधि भी प्राप्त की थी। अमरीका में तो वह पच्चीस वर्ष की आयु में आया और मृत्यु पर्यन्त अमरीका में ही रहा। कारनेल विश्वविद्यालय में उसका प्रभाव इतना अधिक था कि उसी का मनोविज्ञान असली मनोविज्ञान माना जाता था। उसके छात्र सदा उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। अपनी पुस्तकों में भी वह सदा अधिकारपूर्ण भाषा में ही अपने विषय पर लिखता था।

यदि हम किसी मशीन को समझना चाहते हैं तो उसकी रचना और उसके कार्य का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। उस समय मनोविज्ञान चेतना का विज्ञान माना जाता था अतः चेतना की रचना तथा चेतना के कार्यों का अध्ययन आवश्यक था। टिचनर दोनों को स्वीकार करता था किन्तु चेतना की रचना को वह अधिक महत्व देता था। शरीर के किसी अङ्ग का कार्य समझने के लिए उसकी बनावट समझना

[1] Edward Bradford Titchener (1867-1927)

बहुत जरूरी है। अत: चेतना के कार्य को समझने से पहले चेतना की संरचना का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इसीलिये टिचनर को संरचनावादी कहा जाता है किन्तु टिचनर अपने मनोविज्ञान को 'प्रत्यक्ष अनुभवात्मक मनोविज्ञान'[1] कहना अधिक पसन्द करता था। टिचनर ने मनोविज्ञान पर एक वृहत् पाठ्य पुस्तक[2] लिखी। आचरणवाद के जन्म के पश्चात् वस्तुत: इसी पाठ्य-पुस्तक मे वर्णित मनोविज्ञान को 'परम्परागत मनोविज्ञान के नाम से जाना जाता है। प्रतिक्रियावादी मनोविज्ञान से भी उसी पुस्तक की ओर संकेत किया जाता है।

टिचनर ने मानसिक प्रक्रियाओ को क्रियाओ के रूप मे न देख कर चेतना की विषय सामग्री के रूप मे देखा है। प्रकार्यवादी मानसिक प्रक्रियाओ को केवल कार्य के रूप मे देखता है। टिचनर ने इन प्रक्रियाओ की सत्ता को स्वीकार किया है, इन्हे वह चेतना-पूर्ण विषय-वस्तु मानता है और इनकी यथार्थ सत्ता मानता है तभी तो उसके मत को सत्तावाद या प्रत्यक्ष अनुभववाद[3] भी कहा जाता है। स्पष्ट है कि उसका ध्येय चेतना की संरचना की ओर अधिक था। इसीलिए हम उसे संरचनावादी कह रहे है।

टिचनर मनोविज्ञान मे वैज्ञानिक पदो का समावेश करना चाहता था। उसकी भी दृष्टि मनोविज्ञान को विज्ञान बनाने की ओर ही थी। उसे भ्रमवश बाद के कुछ विद्वानो ने अवैज्ञानिक कहा है जो ठीक नही समझ पडता। टिचनर चाहता था कि मनोविज्ञान की विषय-वस्तु वैज्ञानिक अध्ययन के योग्य बने इसीलिए उसने आत्मा के प्रत्यय को मनोविज्ञान से हटा दिया। वह मनोविज्ञान को चेतना या मन का विज्ञान मानता था किन्तु मन से उसका अभिप्राय किसी आध्यात्मिक शक्ति से नही था। टिचनर चेतना को वैज्ञानिक विधि से अध्ययन करना चाहता था। फिर भी उसने मनोविज्ञान व भौतिकी मे अन्तर देखा। भौतिकी मे भौतिक जगत् का अध्ययन किया जाता है, मनोविज्ञान मे मानव-जगत का। भौतिकी मनुष्य को दृष्टि मे रखकर भौतिक अनुभवो को

1 Existential Psychology 2 Text-book of Psychology
3 Existentualism

नही देखती, मनोविज्ञान मनुष्य के सन्दर्भ मे भौतिक अनुभवो को देखता है। दोनों में यही अन्तर है। भौतिकी में देश और काल समान रहते हैं, मनोविज्ञान मे उनमे अन्तर आता रहता है। टिचनर के लिये अनुभव कर्ता का विशेप महत्व है। अनुभवकर्ता सजीव प्राणी है जिसके कार्यो को नाड़ी-मण्डल से जाना जा सकता है। व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन मे प्रयुक्त मानसिक प्रक्रियाओ के योग को उसने मन की सज्ञा दी किन्तु किसी निश्चित समय मे अब या तब वर्तमान मानसिक प्रक्रियाओ के योग को उसने चेतना कहा है। मन और चेतना दोनो ही मनुष्य के अनुभव हैं और दोनो का आधार स्नायू-मण्डल है।

वुण्ट का अनुसरण करते हुए टिचनर ने अनुभव को अनुभवकर्ता की दृष्टि से देखा। टिचनर मनोविज्ञान को आध्यात्मिक शास्त्र नही बनाना चाहता था और न ही वह इसे एक निम्नकोटि का साधारण शास्त्र बनाना चाहता था। वह यह भी नही कहता था कि मनोविज्ञान का उद्देश्य मानव-मात्र को दुख से मुक्त करना है। वह तो कहा करता था कि विज्ञान का मूल्यो से कोई सम्बन्ध नही है और मनोविज्ञान एक विज्ञान होने के नाते मूल्यो से सम्बन्धित नही है। मनोविज्ञान मे तथ्यो का विश्लेषण करना ही उसका ध्येय था। टिचनर सदा शुद्ध मनोविज्ञान को आदर की दृष्टि से देखता था और व्यवहृत मनोविज्ञान को वह निम्नकोटि का समझता था।

टिचनर मन और शरीर के द्वैत को स्वीकार करता था और मानसिक प्रक्रियाओ को समझने के लिए शारीरिक प्रक्रियाओ की ओर भी दृष्टि फेरता था किन्तु वह मन और शरीर की पारस्परिक अन्त क्रिया नही मानता था। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि टिचनर मन और शरीर के सम्बन्ध मे समानान्तरवाद का समर्थक था।

मनोविज्ञान की विपय-वस्तु के विषय मे विचार करने के पश्चात टिचनर द्वारा प्रयुक्त पद्धति को देखना चाहिये। चेतना को उसने अध्येय सामग्री निश्चित किया था। इसके अध्ययन के लिए

[1] Parallelism

उसने अन्तर्दर्शन की पद्धति को उपयुक्त बताया। किसी भी वैज्ञानिक विषय का अध्ययन करने के लिए निरीक्षण पद्धति सबसे उपयुक्त पद्धति होती है। विषय-भेद के अनुसार निरीक्षण पद्धति के स्वरूप मे भी भेद हो जाता है। अन्तर्दर्शन भी एक प्रकार का निरीक्षण ही है। अन्तर्दर्शन मे एक विशेष प्रकार से निरीक्षण किया जाता है। टिचनर अन्तर्दर्शन को एक वैज्ञानिक विधि के रूप मे स्वीकार करता था और उसके कथनानुसार अन्तर्दर्शन कोई मामूली पद्धति नही है और साधारण व्यक्ति अन्तर्दर्शन के द्वारा निष्कर्ष नही निकाल सकता है। किसी बाह्य पदार्थ का निरीक्षण सरल है किन्तु अन्तर्दर्शन मे तो मानसिक प्रक्रिया का निरीक्षण करना होता है। मानसिक प्रक्रिया चलायमान रहती है। लोग मानसिक प्रक्रिया का निरीक्षण न करके प्राय वस्तु का निरीक्षण कर जाते है। इसे टिचनर "उदीपकीय त्रुटि"[1] कहता है। उदाहरणार्थ साधारण पुरुष कुर्सी को देखता है किन्तु यदि अन्तर्दर्शनवादी प्रत्यक्षीकरण का अध्ययन करते समय कुर्सी का ही देखता है तो वह त्रुटि करता है। उसे उद्दीपक से हटकर मानसिक प्रक्रिया को देखना चाहिये। कुर्सी पर नही कुर्सी के प्रत्यक्षीकरण पर ध्यान देना चाहिये। इस प्रत्यक्षीकरण का अध्ययन अन्तर्दर्शन द्वारा ही सम्भव है। और अन्तर्दर्शन सभी व्यक्ति नही कर सकते अत इसके लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है। टिचनर ने अन्तर्दर्शन के प्रशिक्षण पर बहुत अधिक जोर दिया है। वह अन्तर्दर्शन को एक वैज्ञानिक विधि बताने के लिए प्रयत्न कर रहा था। टिचनर ने अन्तर्दर्शन के अतिरिक्त प्रयोगात्मक पद्धति को भी मान्यता दी। टिचनर के अनुसार प्रयोग एक प्रकार का निरीक्षण है जिसे हम दोहरा सकते हैं और जिसकी दशाओ मे हम परिवर्तन कर सकते हैं। उसके अनुसार अन्तर्दर्शन भी वैज्ञानिक विधि है क्योंकि इसमे भी निरीक्षण को वैज्ञानिक नियमो पर आधारित किया जा सकता है। अन्तर्दशन को पद्धति पर अधिक बल देने के कारण ही टिचनर को अन्तर्दशनवादी[2] कहा जाता है और उसके मत को अन्तर्दर्शनवाद कहकर भी पुकारा जाता है।

[1] Stimulus error. [2] Introspectionist

टिचनर की लिखी हुई चार पुस्तके बडी प्रसिद्ध है। इनके नाम हैं : "मनोविज्ञान की रूपरेखा"[1] "मनोविज्ञान की प्राइमर"[2] "प्रारम्भिक मनोविज्ञान"[3] और "मनोविज्ञान की पाठ्य पुस्तक"[4]। इन पुस्तको का टिचनर के अध्ययन-काल मे बडा महत्व था। इनमे से "मनोविज्ञान की पाठयपुस्तक" का विशेष महत्व है। इसका सक्षिप्त परिचय लीजिए। इस पुस्तक के अधिकाश भाग मे चेतना के मूलतत्वो का वर्णन किया गया है। कुछ मूलतत्वो से मिलकर ही चेतना का निर्माण हुआ है। टिचनर ने चेतना के मूलतत्वो के रूप मे तीन मानसिक प्रक्रियाओ को स्वीकार किया है। ये तीन प्रारम्भिक प्रक्रियाएँ हैं सवेदना, भाव, और प्रतिमा। सवेदना, प्रत्यक्षीकरण का मूलतत्व है। दृष्टि, ध्वनि, गन्ध, स्वाद, स्पर्श और गति, तथा वर्तमान समान भौतिक पदार्थों के सम्बन्धित अनुभव, इन छहो के रूप मे सवेदना पायी जाती है। सवेगो के मूलतत्व के रूप मे भाव हैं। प्रेम, घृणा, हर्ष और शोक आदि के रूप मे भाव पाए जाते हैं। विचारो के मूलतत्व के रूप मे प्रतिमाएँ पायी जाती हैं। टिचनर को पूर्णरूपेण यह निश्चय नही था कि सवेदना, भाव और प्रतिमा मे नितान्त भिन्नता है किन्तु सुविधा की दृष्टि से वह इन तीनो को मूलतत्व मानना अधिक पसन्द करता था। सवेदना और प्रतिमा मे तो वह बडी समानता देखता था। उसने दोनो के चार मौलिक गुण बताए हैं—गुण, प्रबलता, अवधि और स्पष्टता। भाव मे भी स्पष्टता को छोड़कर प्रथम तीन गुण होते हैं। टिचनर ने मूल-तत्वो को स्थिर नही माना है। ये मानसिक प्रक्रियाएँ हैं। टिचनर-रचित पाठ्यपुस्तक का अधिकाश भाग इन्ही के वर्णन मे लिखा गया है। पहले उसने सवेदनाओ का विस्तार से वर्णन किया है। फिर एक एक सवेदना, यथा दृष्टि, श्रवण, गन्ध, आदि पर पृथक् विचार किया है। सवेदना की प्रबलता के अध्याय मे वेबर के नियम पर भी विचार किया गया है। प्रतिमा को सवेदना से कम भाग मिला है। पुस्तक के एक

[1] *An Outline of Psychology* [2] *A Primer of Psychology*
[3] *A Beginner's Psychology* [4] *A Text-book of Psychology*

सक्षिप्त भाग मे पतिमा का वर्णन कर दिया गया है। भाव को प्रतिमा से अधिक पृष्ठ दिये गये है किन्तु सवेदना से कम ही। भाव को वह संवेदना से पृथक् मानता था। जेम्स ने भाव को आवयविक सवेदना मे बदल दिया था। टिचनर ने जेम्स-लैंग सिद्धान्त का कडा विरोध किया और कहा कि आवयविक सवेदना अपनी जगह पर है और भाव अपनी जगह पर। ध्यान को टिचनर ने चेतना की एक प्रकार की व्यवस्था के रूप मे स्वीकार किया है। ध्यान की अवस्था मे चेतना केन्द्रित हो जाती है। स्पष्टता के आधार पर ही अवधान या अनवधान कहा जा सकता है। इस पुस्तक मे टिचनर मनोविज्ञान की अपूर्णता को स्वीकार करता है और पुस्तक के अन्त मे यह आशा व्यक्त करता है कि प्रयोगात्मक पद्धति मे हो रही उन्नति से मनोविज्ञान के साहित्य की अधिकाधिक श्रीवृद्धि होगी।

टिचनर ने मनोविज्ञान के विषय पर लिखने की एक विशेष शैली अपनायी है। टिचनर के अनुसार विज्ञान को "क्या कैसे और क्यो" इन तीन प्रश्नो का उत्तर देना होता है। विषय-वस्तु का विश्लेषण करके 'क्या ?' का उत्तर मालूम किया जा सकता है। यह विश्लेषण सामग्री के मूलतत्वो को मालूम करना है। मूलतत्वो का सश्लेषण करके 'कैसे ?' प्रश्न का उत्तर मालूम किया जा सकता है। कारण जानकर 'क्यो ?' प्रश्न का उत्तर दिया जा सकता है। 'क्या ?' और 'कैसे ?' प्रश्नो के उत्तर के लिये टिचनर वर्णनात्मक शैली अपनाता है। 'क्यो ?' का उत्तर व्यास प्रणाली से समझाकर देता है। वर्णन द्वारा किसी मानसिक प्रक्रिया का वह विश्लेषण करता है और तत्पश्चात 'क्यो ?' का उत्तर प्राप्त करने के लिये नाडी मण्डल को शरण लेता है। वह सोचता है यदि प्रत्येक मानसिक कार्य का भौतिक आधार भी ढूँढ सके तो 'क्यो ?' का उत्तर मिल जायगा।

टिचनर ने प्रयोगात्मक मनोविज्ञान[1] पर भी एक श्रेष्ठ पुस्तक की रचना की। यह पुस्तक चार खण्डो मे

[1] *Experimental Psychology: A Manual for Laboratory Practice*

प्रकाशित हुई है। उसकी दो और पुस्तके प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है। ये पुस्तके है 'भाव और अवधान का मनोविज्ञान"[1] तथा उच्चतर विचार-प्रक्रियाओ का प्रयोगात्मक मनोविज्ञान" ।[2]

टिचनर ने जो कुछ लिखा या जो कुछ कहा वह सब चेतना को समझाने के लिए ही। वह स्पष्ट रूप से कहता था मनोविज्ञान की विषय-वस्तु है चेतना। मन और शरीर के सम्बन्ध मे वह समानान्तरवाद का समर्थक था। चेतना को समझने के लिये वह अन्तर्दर्शन की पद्धति को सर्वश्रेष्ठ पद्धति समझता था। उसने जिन समस्याओ को अपने सामने रखा वे समस्याएँ थी चेतना के विषय मे अन्तर्दर्शन द्वारा प्राप्त प्रदत्तो के सम्बन्ध मे "क्या, कैसे और क्यो ?" प्रश्नो का उत्तर ढूंढना। टिचनर दत्तचित्त होकर इन्ही प्रश्नो के समाधान मे आजीवन लगा रहा।

टिचनर चेतना की सरचना का अध्ययन करने मे ही लगा रहा। उसने चेतना के क्रियात्मक पक्ष की उपेक्षा की। उसकी धारणा थी कि चेतना के कार्यो को जानने के लिए चेतना की रचना का जानना ही आवश्यक है। शिकागो विश्वविद्यालय के प्रकार्यवादियो ने टिचनर के इस मन्तव्य का कडा विरोध किया। अब हम शिकागो विश्वविद्यालय मे व्याप्त इसी प्रकार्यवाद[3] का वर्णन करेंगे।

शिकागो विश्वविद्यालय मे मनोविज्ञान विभाग के निदेशक के रूप मे सन १८९४ मे जेम्स रौलैण्ड एन्जल[4] नाम का एक पचीस वर्षीय नवयुवक आया और मनोविज्ञान जगत् के सौभाग्य से उसी वर्ष उसी विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के प्रोफेसर के पद पर पैंतीस वर्षीय युवक डाक्टर डीवी[5] नियुक्त हुए। दोनो ही असाधारण प्रतिभा के व्यक्ति थे। डीवी एक दार्शनिक थे किन्तु जी स्टेनले हॉल[6] की मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला मे उन्होने मनोविज्ञान के प्रयोगात्मक पक्ष की दीक्षा प्राप्त की थी। एन्जल ने जर्मनी के कई विश्वविद्यालयो मे

1 *Psychology of Feeling and Attention*
2 *Experimental Psychology of the Higher Thought Processes*
3 Functionalism
4 James Rowland Angell.
5 Dr. Dewey
6 G. Stanley Hall.

अध्ययन किया था और वे हारवड मे विलियम जेम्स के भी शिष्य रह चुके थे। डीवी और एन्जल के नेतृत्व मे शिकागो विश्वविद्यालय प्रकार्यवाद का केन्द्र बन गया।

प्रकार्यवाद ने वुण्ट और टिचनर के मत का विरोध किया। प्रकार्यवादियो की रुचि मानसिक प्रक्रियाओ के मूलतत्वो मे न होकर क्रियाओ मे थी। वे चेतना के तत्वो को ढूँढना व्यर्थ समझते थे। चेतना के प्रकार्य की ओर उनका विशेष ध्यान था। प्रकार्यवादियो ने कहा कि मानसिक प्रक्रिया को प्रक्रिया ही मानना है। सरचनावादी भी मानसिक प्रक्रिया को मानता था किन्तु वह इनकी रचना पर चला जाता था और कार्यों की उपेक्षा कर देता था। प्रकार्यवादी ने कहा कि मानसिक प्रक्रिया किस प्रकार कार्य करती है इसका जानना ही आवश्यक है। सरचनावादी मानसिक प्रक्रियाओ को शुद्ध विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन करता था। टिचनर ने विशुद्ध विज्ञान मे रुचि दिखायी थी और विज्ञान की व्यावहारिकता को गौण बताया था। प्रकार्यवादी व्यावहारिकता पर अधिक बल देता है। प्रकार्यवादी के अनुसार उपयोगिता के आधार पर ही मनोविज्ञान की उन्नति हो सकती है अन्यथा नही। इसीलिए प्रकार्यवादी ने व्यवहृत विज्ञान को बहुत ऊँचे आसन पर बिठा दिया। वुण्ट और टिचनर सोचते थे कि चेतना के प्रकार्य प्रत्यक्ष अनुभव की वस्तु नही अत. अन्तर्दर्शन द्वारा उनका अध्ययन सम्भव नही। प्रकार्यवादियो ने कहा यदि ऐसा सम्भव नही तो कोई आवश्यक नही कि चेतना हो मनोविज्ञान की विषय-वस्तु हो और अन्तर्दर्शन ही एकमात्र पद्धति।

प्रकार्यवाद का परिचय हमे किसी एक पुस्तक से नही मिल पाता। टिचनर के मनोविज्ञान का ज्ञान उसकी 'पाठ्य-पुस्तक' से और जेम्स के मनोविज्ञान का ज्ञान उसके 'मनोविज्ञान के सिद्धान्त' से प्राप्त किया जा सकता है किन्तु प्रकार्यवाद का वर्णन क्रमबद्ध रूप मे किसी ने नही किया। इसका एक कारण था। डीवी और एन्जल इसके प्रारम्भिक नायक थे और दोनो ही किसी एक सम्प्रदाय को चलाने मे प्रकृत्या हिचकिचाते थे। डीवी एक दार्शनिक थे और उनका स्वभाव चिन्तनशील था। वे प्रचार व विज्ञापन मे अधिक रुचि

नही रखते थे। एन्जल परम्परागत मनोविज्ञान का विरोध अवश्य करते थे किन्तु स्वभाव से वे बडे सज्जन और सहनशील व्यक्ति थे। इसलिए खले शब्दो मे वे टिचनर का विरोध नही कर पाते थे। फिर भी इन्होने जिस वातावरण की सृष्टि की उस वातावरण मे प्रकार्यवाद उन्नति ही करता गया। अमेरिका मे प्रचलित प्रकार्यवाद को समझने के लिए हम तीन व्यक्तियो के मतो का सक्षिप्त वर्णन करेंगे। सर्व प्रथम डीवी के मत को लें।

डीवी की एक पुस्तक 'मनोविज्ञान की पाठ्य-पुस्तक'[1] सन् १८८४ ई० मे प्रकाशित हुई। इस समय तक डीवी किसी निश्चित निष्कर्ष पर नही पहुँचा था और यह पुस्तक प्रारम्भिक विद्यार्थियो के लिये उसने लिखी। पुस्तक अत्यन्त साधारण कोटि की है। इस पुस्तक के प्रकाशित होने के बारह वर्ष बाद डीवी ने प्रकार्यवाद की घोषणा की। स्पष्ट है कि इस पुस्तक से डीवी के मत को समझना भ्रामक होगा। पुस्तक के प्रकाशन के बारह वर्ष बाद सन् १८९६ ई० मे डीवी ने एक लेख[2] लिखा। इसी लेख से प्रकार्य-वाद की नीव पडी। इस लेख मे डीवी ने कहा कि किसी मनोवैज्ञा-निक प्रक्रिया को अनेक तत्वो मे विभाजित नही किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को एक अबाध गति से चलने वाली सतत प्रक्रिया मानना उचित है। स्पष्ट है कि डीवी मनोविज्ञान मे परमाणुवाद का कट्टर विरोधी था। चेतना को सवेदना, भाव आदि परमाणुओ[3] मे विभक्त करना ठीक नही। डीवी ने देखा कि परमाणु-वाद का जेम्स ने भी विरोध किया था किन्तु जेम्स के विरोध से बचने के लिये परम्परागत मनोवैज्ञानिको ने एक दूसरे किस्म के

[1] *Text book of Psychology*

[2] The Reflex Arc Concept in Psychology

[3] ऐसी अन्तिम इकाई को परमाणु कहते हैं जिसका पुन. भाग न किया जा सके। प्रत्यक्षीकरण को विभाजित किया जा सकता है किन्तु सवेदना अविभाज्य ज्ञानात्मक इकाई है।

परमाणुवाद का सहारा लिया। उन्होने सहज क्रिया-चक्र[1] का प्रत्यय गढ लिया और उद्दीपक-प्रतिक्रिया के द्वैत को स्थापित कर दिया। डीवी ने उद्दीपक और प्रतिक्रिया मे कोई मौलिक भेद नही माना और उन्होने कहा यह भेद केवल प्रकार्यात्मक है। दोनो पृथक् यथार्थताएँ नही है वरन् दोनो के कार्य भिन्न है। उद्दीपक और प्रतिक्रिया दोनो एक ही प्रवाह मे आते जाते रहते हैं। फिर भी हम उद्दीपक और प्रतिक्रिया मे साधारणत भेद तो देखते ही है। इस भेद के विषय मे डीवी कहता है कि मानसिक प्रक्रियाओ की रचना के कारण यह भेद नही है। स्मरण रहे सरचनावादी कहेगा कि उद्दीपक बोध-स्नायु द्वारा मस्तिष्क मे पहुँचता है और प्रतिक्रिया कर्म-स्नायु द्वारा होती है अत उद्दीपक और प्रतिक्रिया की क्रियाओ मे रचना सम्बन्धी भेद है। डीवी इस भेद को अस्वीकार करता है और कहता है कि उद्दीपक और प्रतिक्रिया मे भेद मानसिक-प्रक्रिया के कार्य के आधार पर है न कि रचना के। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। मान लीजिए एक शिशु अपने पिता से कुछ दूर पर खडा है। वह अपने पिता के हाथ मे एक सुन्दर गुड़िया देखता है। गुडिया को लेने के लिए वह शीघ्रता से दौडता है और रास्ते मे लडखडा कर गिर पडता है। यहाँ पर सरचनावादी कहेगा कि गुडिया को बोध-स्नायुओ की क्रिया के फलस्वरूप शिशु ने देखा। देखना ज्ञानात्मक क्रिया हुई। उसका चलना एक दूसरी प्रकार की क्रिया हुई जो कर्म-स्नायुओ पर निर्भर है। गिरना एक तीसरी गत्यात्मक क्रिया हुई। पहले सवेदना हुई। बाद मे चलने की क्रिया और तब गिरना। एक के बाद दूसरी क्रिया हुई और सभी क्रियाएँ शरीर के भिन्न भागों से नियन्त्रित हुई। डीवी कहता है बालक का चलना उसके देखने को नियन्त्रित करता रहता है और उसका गिरना उसके चलने और देखने को नियन्त्रित करता है। इसमे आगे और पीछे का क्या प्रश्न ? ये सभी क्रियाएँ एक निरन्तर प्रवाह मे ही देखी जानी चाहिए।

[1] Reflex-arc.

डीवी के मत मे हम तीन मुख्य बातें पाते हैं। एक तो उसने मनोवैज्ञानिक परमाणुवाद का विरोध किया दूसरे उसने मन और शरीर के द्वैत को समाप्त कर दिया। उसने उद्दीपक और प्रतिक्रिया के भी सारचनिक भेद को अस्वीकार किया। डीवी के मत की तीसरी विशेषता उसकी व्यावहारिकता है। डीवी ने व्यावहारिक परिणामो पर इतना बल दिया कि व्यवहृत मनोविज्ञान को लोग आदर की दृष्टि से देखने लगे। डीवी के उपर्युक्त लेख के अतिरिक्त जिन पुस्तको का मनोविज्ञान मे विशेष महत्व है वे पुस्तके हैं "हम कैसे विचार करते हैं ?"[1] और "मानव-प्रकृति तथा आचरण।"[2] प्रथम पुस्तक मे उसने विचार के ऊपर विचार किया है और द्वितीय पुस्तक मे उसने व्यक्ति और उसके वातावरण के सम्बन्धो की ओर ध्यान दिलाया है।

शिकागो विश्वविद्यालय मे मनोविज्ञान के निदेशक एन्जल महोदय को प्रशासकीय कार्यों मे अधिक व्यस्त रहना पड़ता था। एन्जल अपने समय का उच्च कोटि का प्रशासक माना जाता है। फिर भी एन्जल को मनोविज्ञान मे विशेप रुचि थी और अपने रुचिकर विषय की श्रीवृद्धि भी वह करता रहा। उसके पथ-प्रदर्शन मे कार्य करने वाले नवयुवको ने प्रकार्यवाद को बडा महत्वपूर्ण बना दिया। सन् १९०६ ई० मे एन्जल को अमरीकी मनोविज्ञान सघ के अध्यक्ष पद को सुशोभित करने का अवसर मिला। अपने अध्यक्षीय भाषण मे उसने प्रकार्यवाद की मीमासा की। उसका अध्यक्षीय भाषण डीवी के लेख के समान और कदाचित उससे भी अधिक प्रसिद्ध हुआ। यह भाषण[3] प्रकार्यात्मक मनोविज्ञान का एक आधार-स्तम्भ माना जाता है। एन्जल ने अपने भाषण मे प्रकार्यात्मक मनोविज्ञान की तीन बातो का विशेष रूप से उल्लेख किया। पहले तो उसने प्रकार्यात्मक और

1 *How we Think ?* 2 *Human Nature and Conduct*
3 *The Province of Functional Psychology*

सारचनिक मनोविज्ञानो मे भेद दिखलाया। संरचनावाद चेतना की विषय-वस्तु की ओर उन्मुख है तो प्रकार्यवाद चेतना के कार्य की ओर; सरचनावाद चेतना को मूलतत्वो मे विभाजित करता है तो प्रकार्यवाद किसी मानसिक प्रक्रिया को एक प्रवाह के रूप मे समझता है और इसके कार्यों की ओर ध्यान देता है। एन्जल ने दूसरी बात यह कही कि प्रकार्यवाद मानसिक प्रक्रियाओ की उपयोगिता की ओर ध्यान देता है। प्रकार्यवाद के लिए किसी मानसिक प्रक्रिया का अपने आप मे कोई महत्व नही। प्रकार्यवाद मे मानसिक प्रक्रिया को सम्पूर्ण शारीरिक क्रिया का एक भाग समझा जाता है और प्रकार्यवादी चेतना का विश्लेषण नही करता वरन् निर्णय करना, सकल्प करना, इच्छा करना आदि क्रियाओ का ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार वह चेतना की उपयोगिता पर ध्यान देता है। तीसरी महत्वपूर्ण बात मन और शरीर के सम्बन्ध मे थी। मन और शरीर की समस्या को एन्जल ने आध्यात्मिक समस्या कहा और बताया कि इस समस्या के समाधान का दायित्व मनोविज्ञान पर नही है। उसने कहा मन और शरीर को दो भिन्न पदार्थ मानने की आवश्यकता नही है। मन और शरीर एक ही व्यवस्था के दो रूप हैं। एन्जल ने जिस समय अपना भाषण किया उस समय प्रकार्यवाद चारो ओर चर्चा का विषय बना हुआ था। इसीलिए उसके इस भाषण का बडा स्वागत हुआ। सन् १९०४ मे उसकी "मनोविज्ञान की पाठ्य पुस्तक"[1] प्रकाशित हुई और सन् १९१८ मे "मनोविज्ञान-परिचय"[2] नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। दोनो पुस्तकें प्रकार्यवादी दृष्टिकोण से लिखी गईं किन्तु दोनो ही साधारण कोटि की पाठ्य-पुस्तके हैं।

शिकागो विश्वविद्यालय मे मनोविज्ञान-विभाग के अध्यक्ष पद पर लगभग छब्बीस वर्ष तक एन्जल महोदय ने कार्य किया और उसके पश्चात वह येल विश्वविद्यालय के उपकुलपति बने। उनके स्थान पर शिकागो विश्वविद्यालय मे हार्वे कार[3] महोदय की नियुक्ति

[1] *Text-book of Psychology* [2] *Introduction to Psychology*
[3] Harvey Carr.

हुई। कार महोदय भी उच्चकोटि के प्रकार्यवादी हुए। कार असाधारण प्रतिभा का व्यक्ति था। शिकागो विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान मे उसने डाक्टर की उपाधि प्राप्त की थी और एन्जल तथा डीवी के सम्पर्क का उसे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कार के समय प्रकार्यवाद का स्वरूप निश्चित हो गया था। सन् १९२५ ई० मे उसकी प्रसिद्ध पुस्तक "मनोविज्ञान"[1] प्रकाशित हुई। कार की इस पुस्तक से वर्तमान प्रकार्यवाद का परिमार्जित रूप सामने आ जाता है। इस पुस्तक मे कार ने मनोविज्ञान को मानसिक क्रिया[2] का विज्ञान माना है। प्रत्यक्षीकरण, कल्पना, निर्णय आदि प्रक्रियाओ के लिये ही कार ने मानसिक क्रिया शब्द का प्रयोग किया है। मानसिक क्रिया मे अनुभवो की प्राप्ति, स्थिरीकरण, धारणा, व्यवस्था एवं माप सभी सम्मिलित है और मानसिक क्रिया का सम्बन्ध आचरण से है। आचरण मे अनुभवो का उपयोग किया जाता है। उपयोग करना मानसिक क्रिया का कार्य है। जिस आचरण मे मानसिक क्रिया स्पष्टत दृष्टिगोचर होती है उसे समायोजनात्मक आचरण कहते है। इस प्रकार आचरण के अनुकूलन पर कार ने बल दिया। अनुकूलन मानसिक क्रिया का सारचनिक नही वरन् क्रियात्मक पहलू है। मानसिक क्रिया को कार ने मनोभौतिक बताया। इस प्रकार मन और शरीर के प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण को स्वीकार किया गया। अध्ययन की पद्धति के रूप मे कार ने कई विधियो को मान्यता दी। अन्तर्दर्शन को महत्वपूर्ण बताया गया और वस्तुनिष्ठ निरीक्षण को भी स्वीकार किया गया। प्रयोगो को अपरिहार्य बताया गया। किन्तु यह माना गया कि मानव-मन पूर्णरूपेण प्रयोग का विषय नही बन सकता। कार कहता है प्रेरणा किसी क्रिया के लिए अनिवार्य नही है। प्रेरणा एक प्रकार का उद्दीपक है और यह क्रिया की केवल दिशा बता सकती है।

उपर्युक्त अमरीकी प्रकार्यवादियो के अतिरिक्त कुछ यूरोपीय विद्वानो ने भी प्रकार्यवाद के आन्दोलन को गति प्रदान की।

[1] Psychology [2] Mental Activity

जर्मनी के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक काज[1] को भी प्रकार्यवादी कहा जा सकता है। काज का सर्वाधिक योगदान पशु-मनोविज्ञान और बाल-मनोविज्ञान मे है। काज ने रग और स्पर्श सवेदना का भी विशेष अध्ययन किया। उसने कहा जब व्यक्ति किसी पदार्थ का स्पर्श करता है तो उसे स्पर्श की प्रतीति होती है। बाह्य निरीक्षक केवल इस स्पर्श का दृश्य देखता है न कि स्पर्शकर्ता के मन मे बैठकर स्पर्श सवेदना के मूलतत्वो को ढूंढता है। तो बाह्य निरीक्षक के लिये यह दृश्य[2] या वृत्त ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, न कि अनुभव का विश्लेषण करके मूलतत्वो का पता लगाना। इस प्रकार काज ने दृश्यात्मक मनोविज्ञान[3] की नीव डाली। दृश्यात्मक मनोविज्ञान मे रग सम्बन्धी अथवा स्पर्श सम्बन्धी दृश्यो का वर्णन है। स्पर्श-सम्बन्धी दृश्य घटना या वृत्त का बाह्य निरीक्षण है। स्पर्शकर्ता स्पर्श का विवरण संस्कारों के आधार पर करता है। यह विवरण मनोविज्ञान के लिए बड़ा महत्व-पूर्ण है। काज का दृश्यात्मक मनोविज्ञान सरचनावाद के प्रतिकूल है और प्रकार्यवाद के अधिक निकट पड़ता है इसीलिए उसे यहाँ पर प्रकार्यवादी माना गया है।

रूबिन[4] काज का समर्थक है। रूबिन ने चित्र[5] और पृष्ठभूमि[6] का विशेष अध्ययन किया। वह कहता है कि चित्र का कोई रूप होता है किन्तु पृष्ठभूमि असीमित दिक् की भाँति दिखाई पड़ती है। चित्र और पृष्ठभूमि दृष्टि-सवेदना के लिए कोई समस्या नही हैं। दोनो की ओर ही ध्यान जाता है। रूबिन का मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायो मे कोई विश्वास नही है।

सरचनावाद और प्रकार्यवाद पर विचार करने पर ऐसा लगता है कि दोनो ही एक दूसरे के पूरक है। सरचनावाद के प्रबल समर्थक टिचनर थे। टिचनर के समय मे बुद्धि-परीक्षण प्रारंभ हो गए थे। किन्तु टिचनर ने बुद्धि-परीक्षणो को मान्यता नही दी।

[1] David Katz
[2] Phenomenon
[3] Phenomenological
[4] Edgar Rubin
[5] Figure
[6] Ground or Background

अमरीकी मनोवैज्ञानिको ने व्यक्तिगत विभिन्नताओ की ओर भी ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया था किन्तु टिचनर के लिए व्यक्तिगत विभिन्नताओ का कोई महत्व नही था। कुछ लोग व्यवहृत मनोविज्ञान मे भी रुचि लेने लगे थे किन्तु टिचनर को शुद्ध मनोविज्ञान ही प्रिय था। टिचनर ने सवेगो मे जेम्स-लैंग के सिद्धान्त को अस्वीकार किया और प्रतिमाविहीन विचार को भी वह नही मानता था। उसने अपने लेख "सारचनिक मनोविज्ञान की मान्यताएँ"[1] मे प्रकार्यवाद का विरोध किया और एक अन्य लेख "व्यवहारवादी की दृष्टि मे मनोविज्ञान पर"[2] लिखकर उसने व्यवहारवाद की कटु आलोचना की। टिचनर के विशुद्ध चिन्तन का अमेरिका मे बड़ा प्रभाव पडा। उसका सरचनावाद निश्चित मान्यताओ सहित एक क्रमबद्ध सम्प्रदाय बन गया। किन्तु टिचनर समय की गति को न बदल सका। अमरीका मे प्रकार्यवाद एव व्यवहारवाद का जोर बढता ही गया और टिचनर के जीवन-काल मे ही उसकी उपेक्षा प्रारम्भ हो गई। कोलम्बिया विश्वविद्यालय मे कैटल[3] ने व्यक्तिगत विभिन्नताओ मे अध्ययन एव शोध-कार्य को प्रोत्साहन दिया, थार्नडाइक ने पशुओ पर कई प्रयोग प्रारम्भ किये; शिकागो मे प्रकार्यवाद ने जन्म लिया। इन सब कार्यों ने टिचनर के मत पर आघात किया। जर्मनी मे कुल्पे[4] ने और फ्रास मे बीने ने सिद्ध किया कि विचार के लिये प्रतिमा या सवेदना की आवश्यकता नही है। अमरीका मे वुडवर्थ ने भी प्रमाणो द्वारा प्रतिमाविहीन विचार का समर्थन किया। इन सब अन्वेषणो से टिचनर के सरचनावाद को धक्का लगा।

प्रकार्यवाद का भी पर्याप्त विरोध हुआ। सरचनावादी ने प्रकार्य, मूल्य एव उपयोगिताओ के अध्ययन के विषय मे कहा कि इनका अन्तर्दर्शन द्वारा अध्ययन नही किया जा सकता अतः इन्हे

[1] *Postulates of a Structural Psychology*
[2] *On 'Psychology as the Behaviorist Views it'*
[3] Cattell [4] Kulpe

मनोविज्ञान की विषय-वस्तु के रूप मे स्वीकार करना व्यर्थ है। प्रकार्यवाद के ऊपर यह भी लाछन लगाया गया कि यह 'प्रकार्य' का अर्थ स्पष्ट नही करता और इधर-उधर की बकवास करता है। यह कहा गया कि डीवी, एन्जल व कार के मतो को देखने से एक ही निष्कर्ष निकलता है और वह है भ्रम। प्रकार्यवाद के विषय मे यह भी कहा जाता है कि यह पूर्णरूपेण विज्ञान नही है क्योकि प्रयोगात्मक विधि का ठीक से इसमे उपयोग नही है। अमरीकी प्रकार्यवादियो के विषय मे ऐसा कहना तो ठीक प्रतीत होता नही क्योकि वे 'प्रयोगो' का प्रयोग निस्सकोच करते हैं। इन आलोचनाओ के बावजूद प्रकार्यवाद उन्नति करता रहा। सरचनावाद और प्रकार्यवाद दोनो मे हो अन्तर्दर्शन की पद्धति प्रमुख पद्धति थी। अन्तर्दर्शन की पद्धति का प्रयोग आदि काल से ही चला आ रहा है। वस्तुनिष्ठ निरीक्षण भी एक प्रकार से अन्तर्दर्शन ही प्रतीत होता है क्योकि वाह्य निरीक्षण मे भी हमे व्यक्ति के निजी अनुभव पर ही निर्भर रहना पड़ता है। मनुष्य का आचरण कोई निर्जीव पदार्थ नही है जिसका भौतिकी के सिद्धान्तो के अनुसार अध्ययन कर सकें। अनुभव सदा व्यक्ति की निजी वस्तु है। एबिगहास[1] ने अन्तर्दर्शन को अनुपयुक्त बताते हुए वस्तुनिष्ठ निरीक्षण का ही समर्थन किया। उसने स्मृति पर कई प्रयोग किए हैं। उसने यह देखना चाहा था कि व्यक्ति किसी पाठ को कितने समय मे याद कर पाते हैं। उसे इसमे अन्तर्दर्शन की आवश्यकता नही पडी। किन्तु मूलर[2] को एबिगहास की पद्धति ठीक नही लगी और उसने व्यक्तियो से कहा कि एक बार याद करने और फिर से याद करने मे उन्हे अपने निजी अनुभवो का वर्णन भी देना है। मूलर को इन वर्णनो मे सार दिखाई पडा और उसने देखा कि याद करते समय मन निष्क्रिय होकर केवल ग्रहण ही नही करता वरन् सक्रिय होकर समानता और भेद के आधार पर कार्य करता रहता है। मूलर ने यह निष्कर्ष अन्तर्दर्शन एव वस्तुगत निरीक्षण के आधार

1 Ebbinghaus   2 Muller

पर निकाला। मूलर की इस पद्धति को टिचनर ने भी स्वीकार किया। उसने अन्तर्दर्शन की पद्धति को खूब सँवारा और इसका खुल कर प्रयोग किया। किन्तु अन्तर्दर्शन की पद्धति का विरोध भी खूब हुआ। इसके विषय मे कहा जाता है कि यह विधि वैज्ञानिक नही है क्योकि एक व्यक्ति के अन्तर्दर्शन से दूसरे व्यक्ति लाभ नही उठा सकते। अन्तर्दर्शन मे व्यक्ति को अनुभव करना पडता है और अनुभव का विश्लेषण भी। ऐसा करना व्यक्ति के लिए सम्भव नही। किसी मानसिक प्रक्रिया का कई विद्वान् एक साथ इस विधि से अध्ययन नही कर सकते हैं। अन्तर्दर्शन मे निरीक्षण को दोहराया नही जा सकता जबकि वैज्ञानिक विधियो मे हम निरीक्षण को दोहरा सकते हैं। इन दोषो को देखने पर ऐसा लगता है कि कुछ दोष तो सरलता से दूर किए जा सकते हैं। यदि कई व्यक्ति अपने अन्तर्दर्शन के निष्कर्षो की तुलना कर लें और यदि ये निष्कर्ष मिलते-जुलते हो तो इनमे विश्वास करने मे कोई हानि नही दिखाई पडती है।

संरचनावाद और प्रकार्यवाद का अब केवल ऐतिहासिक महत्व रह गया है। इनके द्वारा निकाले गए निष्कर्षो के आधार पर मनोविज्ञान मे अनेक प्रत्यय आज भी प्रचलित हैं। किन्तु मनोविज्ञान अब बहुत आगे बढ़ गया है। संरचनावाद मे पर्याप्त संशोधन करके गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने जन्म लिया और उसने मनोविज्ञान-जगत पर बड़ा प्रभाव डाल दिया है। प्रकार्यवाद भी पीछे पड़ गया है। प्रारम्भ मे अमरीका मे प्रकार्यवादी बनना एक फैशन बन गया था किन्तु अब इसको अधिक नही पूछा जाता। वहाँ पर अब व्यवहारवाद ने अड्डा जमा लिया है। व्यवहारवाद की लहर चल निकली है और आधुनिक मनोविज्ञान उसी ओर जाता दिखाई पड़ रहा है।

३

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान

जिस प्रकार व्यवहारवाद परम्परागत मनोविज्ञान के विरोध में अमेरिका में उठ खडा हुआ उसी प्रकार जर्मनी मे तत्कालीन मनोविज्ञान के विरोध मे गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का उदय हुआ। सन् १९१० के आसपास जर्मनी मे वुण्ट का प्रयोगात्मक मनोविज्ञान ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण मनोविज्ञान था। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने अपने साहित्य मे 'प्राचीन मनोविज्ञान' शब्द का प्रयोग वुण्ट के मत के लिए ही किया है। कहने की आवश्यकता नही है कि वुण्ट के मत का गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने डटकर विरोध किया। वुण्ट एवं उसके अनुयायी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का विश्लेषण करने मे जुटे हुए थे। वे मानसिक प्रक्रिया के मूल तत्वो की खोज करते थे और फिर उन मूलतत्वों मे सम्बन्ध या साहचर्य्य का विश्लेषण करते थे। वे पहले चेतना को मूलतत्वो मे छिन्न-भिन्न करते थे और फिर यह देखते थे कि ये मूलतत्व आपस मे मिल कैसे जाते हैं। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने प्राचीन मनोविज्ञान का विरोध किया और यह तथ्य सामने रखा कि बहुत से अवयवो से एक नया रूप तैयार होता है

जो अवयवों में नहीं पाया जाता। अतः मानसिक क्रियाओं को पहले सरलतर मानसिक दशाओं में विश्लेषित करना और फिर संवेदना, प्रत्यक्ष और प्रतिमाओं आदि के साहचर्य के नियम ढूँढना अनुपयुक्त और असंगत प्रतीत होता है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान आकार के पूर्ण रूप को दृष्टि में रखता है, किसी एक भाग को नहीं। इस मत को आंग्लभाषा में गेस्टाल्ट साइकॉलॉजी[1] कहते हैं। वस्तुतः गेस्टाल्ट शब्द अंग्रेजी भाषा का न होकर जर्मन भाषा का है जिसका अर्थ है रूप, आकार, ढाँचा या सापेक्षावयव[2]।

प्रारम्भ में गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के तीन नेता थे। इन तीनों नेताओं ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में क्रान्ति मचा दी। इनके नाम हैं मैक्स वर्दाइमर[3], कर्ट कोफ्का[4] और कोहलर[5]। बर्लिन विश्वविद्यालय में इन तीनों ने कुछ समय तक साथ-साथ अन्वेषण कार्य किया था। बाद में व्यावसायिक जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में भी लोग पास-पड़ोस में रहे और एक-दूसरे से सदा विचार-विमर्श करते रहे। सन १९११ तथा १९१२ ई० में वर्दाइमर ने चलचित्रों के मनोवैज्ञानिक पहलू पर कई प्रयोग किए। कैमरे से अलग-अलग आसनों के चित्र लिए जाते हैं। प्रत्येक चित्र अपने आप में स्थिर होता है और किसी एक स्थिति का होता है। यदि दो चित्रों को कुछ समय का अन्तर देकर दिखाया जाता है तो वे पृथक चित्र दिखाई पड़ते हैं किन्तु यदि दोनों चित्रों को इतनी जल्दी दिखाया जाय कि दोनों के संस्कारों के बीच कोई अन्तर न रहे तो वे एक ही चित्र दिखाई पड़ते हैं। वर्दाइमर ने प्रयोग के द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा और इसी प्रकार कई चित्र यदि जल्दी-जल्दी दिखाए जायँ तो चलने का आभास होता है। कई चित्रों के संस्कारों के बीच अवधि बहुत कम कर दी जाती है तो गति दिखाई पड़ती है। यदि क्रमानुसार कई दृश्यों को एक साथ प्रस्तुत किया जाता

[1] Gestalt Psychology
[2] Configuration
[3] Max Wertheimer
[4] Kurt Kofka
[5] Kohler

है तो चलचित्र बन जाता है। इस चलचित्र की अपनी अलग विशेषता है जो चित्रो मे पृथक् पृथक् नही पाई जाती। यदि इस चल-चित्र की शृखला से चित्रो को अलग किया जाय तो वे चित्र गतिहीन और निरर्थक दिखाई पडते है किन्तु उन्हे एक निरन्तर क्रमिक शृखला मे देखने पर उनमे गति एव जीवन दिखाई पडता है। वर्दाइमर ने अवधि का माप निश्चित करने के लिए भी प्रयोग किया। उसने एक लाइन दिखाई और फिर दूसरी लाइन दिखाई। ये दोनो लाइनें अलग-अलग दिखती रही किन्तु जब एक लाइन को दिखाने के बाद दूसरी लाइन को दिखाने की अवधि कम करके $\frac{1}{16}$ सेकण्ड कर दी गई तो दोनो के स्थान पर एक ही लाइन चलती हुई दिखाई पडने लगी। इतनी कम अवधि मे गति दिखाई पडने लगी। वर्दाइमर ने गति पर जो प्रयोग किये उनके लिए उसने बड़े ही उपयुक्त पात्रो[1] को चुना था। ये पात्र थे कर्ट कोफका और कोहलर ! इन प्रयोगो से वर्दाइमर ने निष्कर्ष निकाला कि गति सवेदना का ही अग है। प्राचीन मनोविज्ञान गति को सवेदना से अलग मानता था। प्राचीन मनोविज्ञान मे यह भी माना जाता था कि गति चक्षुओ के विचलन से उत्पन्न होती है। वर्दाइमर ने एक प्रयोग ऐसा किया जिसमे दो लाइनें दिखाई गई। कुछ ऐसा प्रबन्ध किया गया कि एक लाइन जिस दिशा मे घुमाई गई ठीक उसी समय दूसरी लाइन पहली लाइन के ठीक विपरीत दिशा मे घुमाई गई। अब आंखो की गति का सवाल नही रहा क्योकि आँखें एक ही समय मे दो दिशाओ मे कैसे जा सकती। इससे यह सिद्ध हुआ कि पदार्थ की गति आंखो की गति के कारण नही है। ऐसा भी कभी-कभी कहा जाता था कि पदार्थों मे गति नही होती। प्रसिद्ध दार्शनिक जेनो कहा करता था कि गति तो एक भ्रम है। बाण भी जब 'क' स्थान से 'ड' स्थान तक जाता है तो वह वस्तुत. कही आता-जाता नही वरन 'क' पर ठहरा रहता है इसके पश्चात् 'क' से हट कर 'ख' पर फिर 'ग' बिन्दु पर और फिर 'घ' बिन्दु पर ठहरता है। बाण

[1] Sub,ects (upon whom the experiment is conducted)

मे स्थिरता है, गति तो भ्रम है। कुछ मनोवैज्ञानिक भी ऐसी ही बातें करने लगे थे। उनके अनुसार उद्दीपकों को स्थिर रूप मे देखा जाता है, गति का तो केवल अनुमान कर लिया जाता है। वर्दाइमर ने इस मत का भी विरोध किया और उसने कहा गति तो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है। उद्दीपक की स्थिति और गति भिन्न नही दिखाई पड़ती। ये दोनो बातें भिन्न दिखाई पडती तब तो कहा जा सकता है कि पहले उद्दीपक की स्थिति को देखा जाता है और बाद मे गति की कल्पना कर ली जाती है। किन्तु ऐसा होता नही अतः वर्दाइमर ने गति को सवेदना का ही अंग माना है।

उपर्युक्त प्रयोगो से गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि पूर्ण में एक ऐसी विशेषता होती है जो भागो मे नही पाई जाती। पूर्ण केवल भागो का योगफल नही होता, उसमे भागो के अतिरिक्त पूर्णता का अपना गुण विद्यमान रहता है। चल-चित्र मे जीवन व गति दिखाई पडती है। यह पूर्णता का अपना धर्म है। प्रत्येक चित्र मे पृथक रूप से गुण नही दिखाई पड़ते है। तो पूर्ण अपने आप एक इकाई है। यह भागो का आधार है और भागों के मूल मे स्थित रहता है। आकार की पूर्णता को ही जर्मन भाषा मे गेस्टाल्ट कहते हैं। अंग्रेजी मे इसको 'फार्म', 'शेप' या 'कन्फिगूरेशन' आदि शब्दो द्वारा व्यक्त करने की चेष्टा की गई किन्तु कोई भी शब्द 'गेस्टाल्ट' का ठीक से अर्थ न दे सका अत अंग्रेजी मे इस मत को "गेस्टाल्ट साइकॉलॉजी" ही कहा जाता है। हिन्दी मे पूर्णाकार मनो-विज्ञान अथवा अवयवीवाद भी इसका निकटतम अर्थ देता है किन्तु पर्यायवाची नही कहा जा सकता। गेस्टाल्ट केवल चाक्षुप रूप नही है, न ही यह विभिन्न तत्वो का सम्बन्ध है क्योकि विभिन्न तत्वो का तो यह प्रारम्भ से ही विरोध करता है। कोहलर के कथनानुसार जर्मन भाषा मे गेस्टाल्ट शब्द दो अर्थो मे प्रयुक्त होता है। गेस्टाल्ट का पहला अर्थ है पदार्थ के धम के रूप मे उसका आकार। इस अर्थ मे त्रिभुज की त्रिभुजाकारिता अथवा चतुर्भुज की चतुर्भुजाकारिता को गेस्टाल्ट कहा जायगा। कुर्सी, मेज, लता, पुष्प आदि के सम्पूर्ण आकार को गेस्टाल्ट कहेगे। गति के क्रम को भी गेस्टाल्ट कहते हैं। नाचना,

चलना, दौडना आदि भी इस पहले अर्थ मे समाहित हो जाते हैं। दूसरे अर्थ मे गेस्टाल्ट शब्द का प्रयोग उस पदार्थ के लिए ही किया जाता है। अर्थात त्रिभुजाकारिता या चतुर्भुजाकारिता के अर्थ मे नही वरन् त्रिभुज या चतुर्भुज के ही अर्थ मे गेस्टाल्ट शब्द का प्रयोग होता है। दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि गेस्टाल्ट शब्द का प्रयोग धर्म और धर्मी दोनो अर्थो मे किया जाता है। धर्मी के अर्थ मे इसका चलन अधिक होता है क्योकि धर्मी का वर्णन करते समय धर्म का वर्णन करना ही होगा।

वैसे तो गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का जन्म-काल सन् १९१२ माना जाता है जबकि वर्दाइमर ने अपने एक लेख[1] को प्रकाशित किया था किन्तु गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के जैसे ही कुछ विचार पहले भी प्रचलित थे। उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे "रूप के गुण" पर लोग बहुत विचार कर रहे थे और कुछ लोगो ने तो 'ग्रेज'[2] नाम से एक मत की स्थापना भी कर ली थी। सन् १८८५ ई० मे माश[3] ने एक पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक है "सवेदनाओ का विश्लेषण"[4]। इस पुस्तक मे माश ने 'देश' और 'काल' के रूपो की पृथक् सवेदनाओ का जिक्र किया है। अर्थात त्रिभुजाकारिता की भी सवेदना हो सकती है। 'ग्रेज मत' मे रूप या आकार की संवेदना को एक अलग तत्व माना गया। ग्रेज मत ने वुण्ट-मत के मौलिक तत्वो का बहिष्कार नही किया वरन् 'आकार-तत्व' नाम का एक नया तत्व ला खडा किया फिर भी ये लोग वुण्ट से एक पग आगे थे। विलियम जेम्स ने भी चेतना के पृथक तत्वो का विरोध किया था और चेतना को एक अबाध गति से प्रवाहित धारा माना था। जेम्स भी कुछ-कुछ 'गेस्टाल्ट' जैसी बातें ही करना चाहता था किन्तु अपने विचारो को साफ नही कर पाया था।

[1] M. Wertheimer, "Experimentelle Studien Uber das Sehen Von Bewegungen," *Zeitschrift fur Psychologie* 61, 161—265.

[2] Graz.

[3] Mach

[4] *The Analysis of Sensation*

वर्तमान गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने 'ग्रेज-मत' और जेम्स के मत दोनो को अमान्य घोषित किया। यह मूल-तत्वो का परम विरोधी है, अत. रूप तत्व की बात को अनर्गल मानता है। जेम्स ने चेतना के प्रवाह को मानते हुये भी यह कहा था कि व्यावहारिक रूप से पदार्थों को हम पृथक कर लेते है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान इसमे भी विश्वास नही करता और वह केवल पूर्णता को मान्य करता है। फिर भी गेस्टाल्टवादी लोग इन मतो का इतना अधिक विरोध नही करते जितना कि वुण्ट के प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का। वर्तमान गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की औपचारिक घोषणा वर्दाइमर ने की इसीलिए उसे इस मत का प्रवर्तक माना जाता है किन्तु कोफका और कोहलर भी प्रारम्भ से ही इस मत से सम्बद्ध रहे हैं और इस वाद के आदि प्रवर्तको मे भी उनका स्थान है। कोहलर ने "लगूरो की मनोवृत्ति"[1] नामक पुस्तक लिखकर अमेरिका के मनोवैज्ञानिको का ध्यान आकर्षित किया। इस पुस्तक मे उसने अपने प्रयोगो का उल्लेख किया है। विश्वयुद्ध के समय चार वर्षों तक वह एक द्वीप मे रहा। द्वीप के एकान्तवास मे उसे लंगूरो के अध्ययन का अच्छा खासा मौका मिल गया। उसने नौ लगूरो पर बड़े पैमाने पर प्रयोग किया और अनेक प्रकार की सूचनाएँ एकत्र कर ली। पशुओ की उच्चतर मानसिक क्रियाओ तक उसने पूर्णाकारवाद के सिद्धान्तो को पहुँचा दिया। उसने देखा कि समस्याओ के समाधान मे पशु भी 'अन्तर्दृष्टि' अथवा 'सूत्र' का उपयोग करते है। उसने गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के सिद्धान्तो को भौतिकी एव जैविकी पर लागू किया। कोफका ने भी 'गेस्टाल्ट मनोविज्ञान' पर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। उसने गति के प्रत्यक्षीकरण पर कई प्रयोग किए। मानसिक विकास की समस्याओ का भी उसने गेस्टाल्ट की दृष्टि से अध्ययन किया। कोफका और कोहलर मे एक बात और थी जो उल्लेखनीय है। वर्दाइमर ने जर्मन भाषा मे बहुत कुछ लिखा किन्तु अंग्रेजी मे 'गेस्टाल्टवाद' को लिखकर अग्रेजी-भाषी क्षेत्रो मे

[1] *The Mentality of Apes*

इस मत का प्रचार करने का श्रेय कोफका और कोहलर को ही है। कोफका की लिखी हुई पुस्तक "मन का विकास"[1] और कोहलर की पुस्तक "पूर्णाकार मनोविज्ञान"[2] इस सिद्धान्त की अनूठी पुस्तकें है।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के अनुसार संवेदनाएँ अपने आप ही व्यवस्थित हो जाती हैं। यह व्यवस्था किसी पृथक्तत्व द्वारा नही आती वरन् सवेदनाओ मे स्वय मे ही यह शक्ति होती है। सवेदनाए सदा संगठित रूप मे ही सामने आती है। रूप या आकार को व्यवस्था या सगठन ही तो कहते हैं। जब कभी रूप या आकार दृष्टिगोचर होता है तो वहाँ पर सवेदनाओ का सगठन हो जाता है। किसी समतल पृष्ठभूमि मे सगठन दिखाई नही पड़ता किन्तु ज्योही ऊवड-खावड पृष्ठभूमि आती है सगठन स्पष्ट होने लगता है। चित्रकार इसीलिए पृष्ठभूमि को किसी दूसरे रग से दिखाता है। लाल कमल के फूलो के चित्र बनाते हुये चित्र की अवशिष्ट भूमि को वह हलके नीले रग मे रग देता है। वर्दाइमर ने इस सम्बन्ध मे लाइनो एव विन्दुओ का प्रयोग करके यह दिखलाने की चेष्टा की है कि किस प्रकार सगठन हो जाता है। कई विन्दु इस प्रकार दिखाई पडने लगते है मानो वे एक समूह बना लिए हो। विन्दुओ का यह एक समूह शेप पृष्ठभूमि से अलग दिखाई पड़ने लगता है। पृष्ठभूमि से अलग एक समूह मे विन्दु सगठित हो जाते हैं। इस सगठन के पीछे विन्दुओ की समानता और उनकी समीपता प्रभाव डालती रहती है। एक और प्रभाव महत्वपूर्ण है। विन्दु एक क्रम मे सगठित होते हैं और यदि इस क्रम मे कही कोई रिक्त स्थान है तो मन उसकी पूर्ति कर लेता है। किसी वृत्त के रिक्त स्थानो को पूरा करके उसे एक सगठित वृत्त देखने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। पूर्णाकार मनोविज्ञान मे इसे रिक्तपूर्ति का सिद्धान्त[3] कहते हैं। आकार पूर्ण ही देखा जाता है। यदि उसमें कोई कमी या रिक्तता है तो मन उसे उपेक्षित कर देता है।

[1] *The Growth of the Mind* [2] *Gestalt Psychology*
[3] Principle of Closure

जिस प्रकार विद्युत छोटे से रिक्त स्थान को लाँघ कर प्रवाहित हो जाती है उसी प्रकार मस्तिष्क की क्रिया खाली जगह को भर देती है। खाली जगह के दोनो ओर तनावपूर्ण स्थिति रहती है। मस्तिष्क तनाव को कम कर देता है और सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास करता है। संवेदनाओ के संगठन मे चौथा प्रभावक अवयव परिचय[1] का होता है। यदि विन्दु या लाइनें किसी परिचित वस्तु का चित्र बनाती है तो उस संगठित चित्र का प्रत्यक्षीकरण सरल हो जाता है। पाँचवे प्रभावक अवयव के रूप मे अभिवृत्ति का नम्बर आता है। निरीक्षक की अभिवृत्ति का भी संवेदनाओ के संगठन मे प्रभाव पडता है और वह विन्दुओ एव लाइनो से तदनुसार चित्र का प्रत्यक्ष कर लेता है। चित्र को अच्छा एवं अर्थगर्भित[2] देखने की भी प्रवृत्ति होती है। निरीक्षक यह चाहता है कि वह चित्र को सुन्दर, सरल, समतल एव रुचिकर रूप मे देखे। इससे उसे सन्तोष मिलता है। इसी को कभी कभी "वर्दाइमर का नियम" भी कहा जाता है।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान मन के यान्त्रिक रूप को स्वीकार नही करता। मस्तिष्क को कुछ विद्वानो ने भ्रमवश मशीन की भाँति माना था। वाहर की उत्तेजना बोध स्नायु द्वारा मस्तिष्क के किसी स्थल मे पहुँचती है और वहाँ से कर्म-स्नायु द्वारा गति का सन्देश आता है। मस्तिष्क एक मशीन की तरह मान लिया गया जिसमे स्नायु-मण्डल के कार्य के यान्त्रिक रूप को महत्व दिया गया। मशीन की रचना की तरह ही मस्तिष्क की रचना की कल्पना की गई। नाडियो को टेलीफोन या टेलीग्राम के तारो की तरह बताया जाने लगा। किन्तु मशीन का कार्य तो यन्त्रवत् होता है। इसका कार्य सदा एक सा ही रहता है, इसके कार्य मे परिवर्तन की गुंजाइश नही रहती जबकि मस्तिष्क के कार्य मे इसका ठीक उलटा होता है। मस्तिष्क के कार्य मे परिवर्तन होता है। मस्तिष्क मे स्वाधीनता है; मशीन मे पराधीनता। भेजे के कार्टेक्स नामक भूरे रंग के पदार्थ मे मशीन की

[1] Familiarity [2] Preguant

तरह पुर्जे नही लगे होते। वहाँ तो स्वतन्त्रापूर्वक अन्त क्रिया होती रहती है। मस्तिष्क गत्यात्मक अन्त.क्रिया का क्षेत्र है, कोई मशीन नही। प्राचीन मनोविज्ञान मे यह माना जाता था कि सवेदना जब बोध-स्नायु द्वारा मस्तिष्क के भूरे पदार्थ मे आती है तो वहाँ वह स्वतन्त्र इकाई के रूप मे अपना अस्तित्व बनाए रहती है और अनेक प्रकार की सवेदनाओ का योग ही पूर्ण सवेदना है। इस प्रकार के सिद्धान्त मे पूर्णाकार के प्रत्यक्षीकरण की कोई गुजाइश नही थी। पूर्णाकार मे रूप एव सम्बन्ध पर बल है। आकार सम्पूर्ण रूप मे एक समय मे ही उपस्थित होता है। यह निम्न सवेदनाओ का योग नही है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान कहता है ऐसा तो होता नही कि प्राणी किसी उद्दीपक की पहले एक विशेष सवेदना ग्रहण करे और फिर दूसरे और बाद मे उन स्वतन्त्र सवेदनाओ का योग करे। मस्तिष्क तो सम्पूर्ण आकार के प्रति प्रतिक्रिया करता है और पूर्णाकार की ही सवेदना उसके मस्तिष्क मे आती है। व्यक्ति के समक्ष सवेदना एक दृश्य के रूप मे आती है, विभिन्न चित्रो के रूप मे नही। सवेदनाएँ हमारे सामने व्यवस्थित रूप मे आती हैं। यह सगठन केवल सयोग के रूप मे ही नही होता। सवेदनाओ के सगठन या उनकी व्यवस्था मे सयोग और वियोग दोनो रहते हैं। समानता, समीपता आदि के आधार पर बिन्दुओ मे आपस मे सयोग हो जाता है और शेष पृष्ठभूमि से इस सयुक्त व्यवस्था का वियोग हो जाता है। चित्र और पृष्ठभूमि का आपस मे यही सम्बन्ध है। जब चित्र और भूमि मे परिवर्तन कर दिया जाता है तो पूर्णाकार के प्रभाव मे अन्तर आ जाता है। चित्र और भूमि की अपनी अलग-अलग विशेषताएँ होती हैं। चित्र एक ठोस वस्तु दिखाई पडता है जबकि भूमि मे केवल रिक्त स्थान होता है। भूमि मे केवल विस्तार दिखाई पडता है, भूमि का कोई रूप नही होता जबकि चित्र मे आकार या रूप का वास रहता है। मूल रूप मे प्रत्येक अनुभव किसी आकार को ग्रहण करने की ओर प्रवृत्त होता है, अपूर्ण चित्र पूर्णता प्राप्त करने की ओर तथा इकाइयाँ सगठन की ओर उन्मुख रहती है।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का अनुयायी अपने मत के समर्थन मे दैनिक जीवन के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करता है। हम जो कुछ देखते हैं पूर्ण रूप मे ही देखते हैं। उदाहरण के रूप मे मेज, कुर्सी आदि पदार्थ अपने पूर्ण रूप मे ही दिखाई पडते हैं। पदार्थ के एक भाग की सवेदना नही होती वरन् सम्पूर्ण पदार्थ का प्रत्यक्ष होता है। पदार्थ सगठित एव पूर्णाकार होता है। कई बिन्दु आपस मे मिलकर एक समूह बना लेते हैं। व्यक्तियो मे भी ऐसे समूह बन जाते है। मान लीजिए पाँच छात्र गेस्टाल्ट मनोविज्ञान पर वाद-विवाद कर रहे हैं। चार इसके पक्ष मे हैं और एक विपक्ष में ! इन चारो मे एक समूह के गुण दिखाई पड़ने लगते हैं।

कोहलर ने लगूरो पर प्रयोग करके यह दिखाया कि समस्या के समाधान मे भी गेस्टाल्ट घटित होता है। समस्या का समाधान पाना एक क्रमिक प्रक्रिया है। उद्देश्य की ओर जाने वाली यह प्रक्रिया प्रारम्भ से अन्त तक निर्वाध गति से जाती रहती है और एक पूर्ण प्रक्रिया के रूप मे दिखाई पडती है। ऐसा नही होता कि यह प्रक्रिया छिन्न-भिन्न अवस्था मे वर्तमान हो। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत अनेक क्रियाएँ की जाती हैं। प्रत्येक क्रिया अपने आप अर्थहीन है। यह क्रिया सम्पूर्ण प्रक्रिया के अग के रूप मे भी सार्थक है।

इस चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि गेस्टाल्ट मनोविज्ञान केवल प्रत्यक्षीकरण का ही एक मत नही है। वैसे तो इस सम्प्रदाय का आरम्भ सवेदना और प्रत्यक्षीकरण से ही हुआ है क्योकि इसने पूर्णाकार के प्रत्यक्षीकरण के 'रहस्य का उद्घाटन किया किन्तु पूर्णाकारवादियो ने अपने मत की रोशनी मे अन्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओ का भी अध्ययन किया। सीखने की प्रक्रिया की ओर पूर्णाकारवादियो ने विशेष रुचि दिखाई। कोहलर के जिस प्रयोग का ऊपर उल्लेख किया गया है वह वस्तुत: सीखने के ही क्षेत्र मे था। कोहलर ने देखा कि पशु केवल प्रयत्न और भूल से ही नही सीखता वरन वह सूझ और बुद्धि के द्वारा सीखता है। सूझ का साधारण अर्थ है वस्तु के धरातल के अन्दर बैठकर उसे समझना। कोहलर ने सूझ का प्रयोग पूर्णाकार को देखने के लिए किया है। यदि प्राणी पूर्ण एव सगठित रचना को देख

लेता है तो हम कहेंगे कि उसने सूझ का प्रयोग किया है। थार्नडाइक का कथन था कि पशु केवल प्रयत्न और भूल से सीखता है। थार्नडाइक ने बिल्ली पर प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला था। कोफ्का ने इस प्रयोग से भी कई उदाहरण देकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि थार्नडाइक के प्रयोग मे भी बिल्ली ने सूझ से काम लिया था। सीखने मे कोई नई बात की जाती है और नई बात तब तक नही की जा सकती जब तक कि स्थिति को फिर से सगठित न किया जाय। सीखने मे स्थिति को पुनर्संगठित करके उद्देश्य और स्थिति के बीच की बाधा को दूर किया जाता है। ऐसा करने मे स्थिति और उद्देश्य को एक समष्टि के रूप मे देखना पडता है। इस प्रकार का देखना ही तो सूझ है। कोहलर ने लगूरो पर प्रयोग करके यह दिखाया कि लगूर भी सूझ से ही सीखते है। सूझ-विधि से सीखने पर सबसे प्रसिद्ध प्रयोग तो वनमानुषो के साथ किये गये। एक वनमानुष को एक छडी दी गई जिससे वह पेड पर लटक रहे केले को उतार सके। पेड पर केला लटका दिया गया। वनमानुष ने केला उतारना सीख लिया। अब केला पेड पर एक निश्चित ऊँचाई पर लटका दिया गया और वनमानुष को दो छडियाँ दे दी गई। दोनो छडियाँ इतनी छोटी थी कि उनमे से कोई भी अकेली छड़ी केले तक नही पहुँच सकती थी और दोनो ही इस प्रकार की बनाई गई थी कि एक का सिरा दूसरे से जोडा जा सकता था। वनमानुष पिंजड़े के दूसरी ओर उन छडियो से खेल रहा था। क्योकि वह पहले अजमा चुका था कि किसी छडी से केला नही मिल सकता था। इन छडियो से खेलते-खेलते वनमानुष ने उन दोनो छडियो को अचानक जोड लिया और तब उसे अचानक यह विचार हुआ कि छड़ी अब लम्बी हो गई है और वह केला उतर सकता है। यह सोचकर वह शीघ्र ही पेड की ओर भागा और केला उतार लिया। दोनो छडी मिलकर लम्बी हो गई हैं यह उसने कैसे जाना ? स्पष्ट है कि सूझ से ही उसने यह जान लिया।

वर्दाइमर ने चिन्तन की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए लिखा है कि एक सफल एव सृजनात्मक चिन्तन मे पूर्ण का अशो के ऊपर आधिपत्य रहता है। सफल चिन्तक स्थिति का विस्तार से विश्ले-

षण करते समय भी पूर्ण को दृष्टि से ओझल नही करता। किसी समस्या के एक अश पर चिन्तन निरर्थक होता है। ऐसा चिन्तन समस्या के समाधान मे कोई सहायता नही करता। चिन्तन मे सम्पूर्ण परिस्थिति को एक समष्टि के रूप मे ही देखना चाहिए। चिन्तन मे अश से पूर्ण की ओर नही वरन पूर्ण से अश की ओर जाना चाहिए।

सवेगो का अध्ययन करने मे भी अधिकाश मनोवैज्ञानिको ने विश्लेषण की ही पद्धति अपनायी थी। लोग संवेगो की विभिन्न सूचियाँ बनाने मे व्यस्त थे। वह यह देखने मे जुटे हुये थे कि सवेगात्मक अभिव्यक्ति के समय किस प्रकार की शारीरिक दशा होती है। मनोवैज्ञानिको ने वस्तुगत निरीक्षण करके बताया कि अमुक सवेग की स्थिति मे भृकुटि की आकृति, चक्षुओ का रग, ललाट की सिकुडन, ओष्ठो का कम्पन, मुख की शुष्कता, चक्षुओ का फैलाव, हाथो का सचालन आदि किस प्रकार का होगा। पूर्णाकार मनोवैज्ञानिक को इस सूची मे कोई रुचि नही। वह इस लम्बी चौडी सूची को अनावश्यक बताता है। निस्सन्देह वह भी उपर्युक्त शारीरिक लक्षणो पर विचार करता है पर वह सवेग के पूर्णाकार को जानने के लिये ऐसा करता है। पृथक-पृथक शारीरिक लक्षणो मे सवेग नही होता, यह तो उन सभी लक्षणो की समष्टि मे पाया जाता है।

इसी प्रकार से गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक ने व्यक्तित्व के विषय मे भी अपने विचार व्यक्त किए है। किसी व्यक्ति के चरित्र को जानने के लिए उसके गुण-दोषो या योग्यताओ-अयोग्यताओ की सूची बनाना अनावश्यक है। व्यक्ति का चरित्र तो उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व मे निहित रहता है। व्यक्तित्व की माप करने मे व्यक्ति के विभिन्न गुणो को देखना अवश्य पडता है किन्तु किसी एक गुण मे व्यक्तित्व समाहित नही हो सकता। हम यह भी निश्चयपूर्वक नही कह सकते कि अमुक व्यक्ति मे अमुक गुण-दोष प्रधान है और अमुक गौण। व्यक्ति एक पूर्ण सत्ता है। वह केवल अवयवो का समूह नही। व्यक्तित्व के सभी अग परस्पर गुँथे होते है और उनमे सगठन रहता है। व्यक्तित्व की यह अखण्डता बड़ी महत्वपूर्ण है। मनुष्य जब व्यवहार करता है तो किसी एक अग से नही। विभिन्न अगो से किये गये कार्यों के समूह को

ही व्यवहार नही कह सकते। व्यवहार तो अखण्ड व्यक्तित्व की अखण्ड क्रिया को ही कह सकते हैं। सम्पूर्णता मे अपना एक विशेष गुण होता है। केवल ईंट-गारा के योग को ही मकान नही कहते। मकान के रूप, ढाँचे या आकार के कारण उसमे एक नया गुण आ जाता है जो उसके भागो मे नही होता। इसी प्रकार व्यक्तित्व का अपना विशेष गुण है जो व्यक्तित्व के अवयवो मे नही पाया जाता। वुण्ट के मनोविज्ञान मे विश्लेषण पर वडा जोर दिया जाता था। पूर्णाकार मनोविज्ञान के अनुसार विश्लेषण की पद्धति मनोविज्ञान के लिए हानिकर है। मनोविज्ञान का उद्देश्य तो समग्र एव अखण्ड मानसिक प्रक्रियाओ का अध्ययन करना है।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के तीन प्रमुख नेताओ—वर्दाइमर, कोफका और कोहलर का उल्लेख किया जा चुका है। इन तीनो नेताओ के अतिरिक्त आर० एम० आग्डेन[1], आर० एच० ह्वीलर[2] तथा कर्ट लेविन[3] के नाम भी उल्लेखनीय हैं। तीसरा नाम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। लेविन प्रारम्भ मे साहचर्यवादी था किन्तु वाद मे उसका झुकाव गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की ओर अधिक हो गया। लेविन ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य अभिप्रेरण के क्षेत्र मे किया। उसने कहा साहचर्य तथा मूल प्रवृत्ति के लिए भी आवश्यकताओ एव ईहाओ की आवश्यकता है। उद्दीपक और प्रतिक्रिया के आधार पर आचरण की जो विवेचना की जाती है लेविन उसे असन्तोषप्रद बताता है। उसका झुकाव आचरण के शारीरिक आधार की ओर न होकर सामाजिक आधार की ओर अधिक था। लेविन ने 'क्षेत्र' की जो वात कही उसमे सामाजिक वातावरण का ही उसने ध्यान रखा। लेविन का "क्षेत्र-सिद्धान्त" वडा प्रसिद्ध है। उसके अनुसार 'क्षेत्र' का मतलव मनुष्य के जीवन-क्षेत्र से है जिसमे मनुष्य एव उसका मानसिक वातावरण भी सम्मिलित होता है। मानसिक वातावरण या मनोवैज्ञानिक वातावरण मे व्यक्ति के

1 R. M Ogden   2 R. H. Wheeler
3 Kurt Lewin

आचरण से सम्बन्धित वे सभी बातें आ जाती हैं जिन्हे वह समझता और प्रत्यक्ष करता रहता है। वह वातावरण व्यक्ति की वर्तमान आवश्यकताओ से सम्बन्धित होता है। मनुष्य बहुत सी ऐसी वस्तुओ के सम्पर्क मे आता है जिनका वर्तमान काल मे उस मनुष्य से साक्षात सम्बन्ध नही होता। ऐसी वस्तुएँ उस मनुष्य के मनोवैज्ञानिक वातावरण के अन्दर नही आती। शेष वस्तुओ मे से कुछ तो उसकी आवश्यकता की पूरक होती हैं और कुछ बाधक। पहली प्रकार की वस्तुएँ व्यक्ति को आकर्षित करती है, दूसरी प्रकार की वस्तुओ से व्यक्ति दूर भागना चाहता है। आकर्षण या अपकर्षण दोनो ही "प्रेरक शक्ति" का काम करते हैं। जब भी व्यक्ति कोई कार्य करने चलता है तो उसके अन्दर एक प्रकार का तनाव आ जाता है। यह तनाव तब दूर होता है जब व्यक्ति वह कार्य कर लेता है। लेविन के अनुसार आचरण का कारण उद्दीपक और प्रतिक्रिया न होकर ये तनाव ही हैं। लेविन को कुछ लोग पूर्णाकार मनोवैज्ञानिक नही मानते। निस्सन्देह ल्युइन कुछ ऐसी बाते कहता है जो पूर्णाकार मनोविज्ञान से पूर्णरूपेण मेल नही खाती। वह स्वय कहता है कि मनोविज्ञान मे केवल एक बात यथा साहचर्य्य, मूल प्रवृत्ति या पूर्णाकार से ही सभी मानसिक प्रक्रियाओ को नही समझाया जा सकता। वह यह मानता है कि विभिन्न बातो का प्रयोग मनोविज्ञान की उन्नति के लिए आवश्यक है।

अब तक गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के महत्वपूर्ण सिद्धान्तो की विवेचना की गई है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की उपर्युक्त देन तो है ही इसके साथ ही इसका विरोध-पक्ष भी उल्लेखनीय है। इसने कुछ बातो का डटकर विरोध किया है। इन बातो मे पहली बात तो मूल-तत्वो का सिद्धान्त है। प्रत्यक्ष अनुभव यह बताता है कि प्रत्यक्षीकरण मे पूर्णाकार देखा जाता है न कि पदार्थ के मूलतत्व। दूसरे, इस मत ने साहचर्य्यवाद का घोर विरोध किया। जिस प्रकार मूल तत्व असत्य है उसी प्रकार उनमे सहचार भी मिथ्या है। तीसरे, पूर्णाकारवादी विश्लेषण का भी विरोध करते है। विश्लेषण से समष्टि का गुण नष्ट हो जाता है। किसी बात को समझने के लिए सदा उसका विश्लेषण सहायक नही होता। चलचित्र का विश्लेषण करने पर हमे मिलेगा

केवल निर्जीव, गतिहीन चित्र। यदि विश्लेषण न किया जाय तो सजीव एव गतिपूर्ण चलचित्र रहता है। विश्लेषण से अखण्डत्व का गुण नष्ट हो जाता है। विरोध करने का चौथा विषय है शरीर विज्ञान। लोगो ने स्नायुमण्डल का विश्लेषण करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि निश्चित स्थान की स्नायु एक निश्चित प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है। स्नायुमण्डल को मानव निर्मित मशीन के रूप मे देखा गया। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान इस विचार का विरोध करता है और बताता है कि सम्पूर्ण व्यक्ति आचरण करता है उसका कोई अवयव नही।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने अपना कार्य प्रत्यक्षीकरण से प्रारम्भ किया था किन्तु शीघ्र ही इसने सभी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओ को अपने मे समेट लिया। किन्तु सभी गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक वैज्ञानिक पद्धति पर ही विश्वास करते रहे। इस सम्प्रदाय के अधिकाश निष्कर्ष प्रयोगो द्वारा निकाले गये हैं किन्तु कुछ बातो मे प्रयोगो का सहारा नही लिया गया।

व्यवहारवाद ने चेतना का पूर्णतः बहिष्कार किया है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान मे चेतना और आचरण दोनो को स्वीकार किया गया है। सरंचनावादी और आचरणवादी एक दूसरे के कट्टर विरोधी हैं। किन्तु गेस्टाल्ट मनोविज्ञान मे दोनो की झलक एक साथ दिखाई पडती है। फिर भी गेस्टाल्ट मनोविज्ञान मे दोनो का विरोध भी देखने को मिलता है। सरंचनावादी की विश्लेषक प्रवृत्ति को पूर्णाकारवादी हानिकर एवं निरर्थक बताता है। आज भी सरचनावादी गेस्टाल्ट मत का वहुत विरोध करते हैं क्योकि वे देखते हैं कि इस मत ने तो उनके मत के मूल मे ही कुठाराघात किया है। व्यवहारवादी मनोविज्ञान को भौतिकी के साँचे मे ढालना चाहता है। पूर्णाकारवादी कहता है कि मनोविज्ञान भौतिकी की दासता नही कर सकता। दोनो की विषय-वस्तु भिन्न है। भौतिकी एक निश्चित विज्ञान है किन्तु मनोविज्ञान नया विषय होने के कारण भौतिकी के नियमो मे वँध नही सकता। भौतिकी मे सांख्यिकी एव मापन की अधिकता रहती है। मनोविज्ञान मे इसकी इतनी अधिक आवश्यकता ही नही है। दोनो के

क्षेत्र अलग-अलग हैं। कोई कहे कि भौतिकी को मनोविज्ञान बना दिया जाय तो यह हास्यास्पद होगा ठीक इसी प्रकार से मनोविज्ञान को भौतिकी बना देने से मनोविज्ञान का अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान इस प्रकार सरंचनावाद एव आचरणवाद दोनो का विरोध करता है और दोनो की ही कुछ बातो को अपने मत मे सम्मिलित कर लेता है।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की प्रमुख बातो को देख लेने के पश्चात इसकी कुछ कमियो की ओर दृष्टिपात किया जाय। इस समुदाय ने दूसरे मतो की आलोचना की है किन्तु दूसरे सम्प्रदायो ने भी पूर्णाकारवाद की डटकर आलोचना की है। यहाँ पर हम कुछ प्रमुख आलोचनाओ की ओर ही सकेत करेंगे।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के विषय मे यह कहा जाता है कि यह कोई नया मत नही है। पूर्णाकार का प्रत्यय बहुत पुराना है। पूर्ण में अशो का योग ही नही होता वरन् पूर्णता का विशेष भाव भी होता है यह बात प्राचीन समय मे हिराक्लिटस और अनैक्सेगोरस जैसे विद्वानो ने भी कही थी। जेम्स और डीवी भी चेतना के प्रवाह की अखण्डता के समर्थक थे।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की इसलिए आलोचना की जाती है कि इस सम्प्रदाय ने मूलतत्ववाद को अतिरजित रूप मे देखा है। पहले इसने सरचनावादी के मूलतत्ववाद को बढा चढा कर कहा और फिर उन्ही बातो को आलोचना का जिनको इसने अपनी कल्पना से अपने सामने खडा कर लिया था। इसने मूलतत्ववाद का भूत सामने खडा कर लिया और फिर उसी की आलोचना को क्योकि परम्परागत मनोविज्ञान मे मूलतत्वो को इतना महत्व नही दिया गया है। परम्परागत मनोविज्ञान चेतना को समझने के लिए इसका विश्लेषण करता है किन्तु एक बार विश्लेषण कर लेने के पश्चात सम्पूर्ण चेतना का ही अध्ययन करता है। वस्तुत. मूल-तत्वो को सरचनावादी इतना अधिक महत्वपूर्ण मानता ही नही जितना कि पूर्णाकारवादी सोच लेता है।

तीसरी आलोचना पूर्णाकार पद के ही सम्बन्ध मे है। आलोचको का कहना है कि पूर्णाकारवादी अनेक ऐसे पदो का प्रयोग करता है जिनका अर्थ उसे स्वयं स्पष्ट नही है। 'पूर्णाकार' (गेस्टाल्ट) ही कभी तो पूर्णता के अर्थ मे प्रयुक्त होता है और कभी सापेक्षावयव, एकता, व्यवस्था, सगठन, पूर्णवस्तु आदि के अर्थ मे किया जाता है।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के प्रति चौथा आक्षेप यह है कि यह विश्लेषण का कट्टर विरोधी है किन्तु क्या कोई विज्ञान विश्लेषण का तिरस्कार कर सकता है ? विज्ञान की तो पद्धति ही विश्लेषण की है। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक को भी प्रयोग करने के लिए अन्त.स्थ विचलनो का विश्लेषण करना ही पडेगा। जब तक अवयव-विश्लेषण नही किया जाता तव तक अवयवी का स्वरूप सामने नही आता।

अमेरिका के मनोवैज्ञानिक गेस्टाल्ट मनोविज्ञान मे आध्यात्मशास्त्र की गन्ध पाते हैं। अमेरिका मे व्यवहारवाद का बोलवाला है अत: उनका यह कथन स्वाभाविक समझ पडता है। साधारण अमरीकी की दृष्टि भौतिकवादी होती है। व्यवहार भौतिक है किन्तु मन का नाम लेते ही अमरीकी चौंक पडता है। वह इसमे आध्यात्मिकता का पुट देखने लगता है।

इन आलोचनाओ को देखने से पता चलता है कि आलोचको ने किसी एक दृष्टि से गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की आलोचना की है। कुछ कमियो के होते हुये भी गेस्टास्ट मनोविज्ञान की देन से इन्कार नही किया जा सकता। उद्दीपको, प्रतिक्रियाओ एव उनके सम्वन्धो के अतिरिक्त एक गत्यात्मक पुनर्-सगठन भी चलता रहता है। इस सत्य की ओर सर्वप्रथम पूर्णाकारवादियो ने ही ध्यान आकर्षित किया। जिस दृष्टि से इस मत ने पूर्णाकार की ओर ध्यान दिलाया उसमे कुछ नवीनता है अवश्य। जहाँ तक विश्लेषण-पद्धति का प्रश्न है कोहलर कहता है कि गेस्टाल्ट मनोविज्ञान मे विश्लेषण को तिलाञ्जलि नही दी गई है किन्तु पूर्णता को ही मौलिक तथ्य के रूप मे

स्वीकार किया गया है। व्यवहारवादियो ने गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की आलोचना करने मे पूर्वधारणा से काम लिया है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान चेतना के अस्तित्व को स्वीकार करता है और इसको पुद्गल की भाँति प्रत्यक्ष सत्य बताता है। ऐसी बात भला व्यवहारवादी को क्यो अच्छी लगे अतः उसने यह कहकर पूर्णाकारवाद का तिरस्कार किया कि इसमे आध्यात्मिकता की गन्ध आती है। किन्तु वह यह भूल जाता है कि पुद्गल के अस्तित्व को आँख मूँद कर स्वीकार करके उसने भी एक अन्य प्रकार के आध्यात्मशास्त्र का पल्ला पकड़ा है।

૪

વ્યવહારવાદ

व्यवहारवाद आज एक बहुत प्रभावशाली मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय माना जाता है। इसका मुख्य प्रवर्तक है जॉन ब्रॉडस वाटसन (John Broadus Watson) जिसका जन्म सन् १८७८ ई० में हुआ था। वाटसन जब कालेज में अध्ययन कर रहा था उस समय उसकी रुचि दर्शन-शास्त्र में थी और दर्शन-शास्त्र के विशेष अध्ययन के लिए ही वह शिकागो विश्वविद्यालय गया था। शिकागो विश्वविद्यालय में अध्ययन करते समय वह मनोविज्ञान में रुचि लेने लगा और अन्ततः अपने विशेष अध्ययन के लिए उसने मनोविज्ञान का क्षेत्र ही अपनाया। सन् १९०३ ई० में वाटसन ने शिकागो विश्वविद्यालय में अपना शोध-कार्य प्रस्तुत किया जिसके परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय ने उसे डॉक्टर की उपाधि प्रदान की। शिकागो विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग से डॉक्टर की उपाधि प्राप्त करने वाला वह प्रथम व्यक्ति था। उसका शोध-कार्य गत्यात्मक एवं आवयविक संवेदनाओं[1] से

[1] The Topic of Watson's Thesis was "Kineasthetic and Organic Sensations : Their Role in the Reactions of the White Rat to the Maze."

सम्बन्धित था। इसके पश्चात् वाटसन ने शिकागो विश्वविद्यालय मे अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। सन् १९०८ ई० मे वह जॉन हॉपकिन्स विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर नियुक्त हुआ और सन् १९१२ ई० मे उसने अपने व्याख्यानो मे व्यवहारवाद की घोषणा कर दी।

जिस समय वाटसन शिकागो विश्वविद्यालय मे मनोविज्ञान का अध्यापन कर रहा था उसी समय वह मनोविज्ञान को काल्पनिक विषयवस्तु से बहुत ऊब गया था। उसने देखा कि मनोविज्ञान मे अनिश्चित प्रत्ययो एव अमूर्त विचारो की भरमार थी और इतनी अनिश्चितता होते हुए भी मनोविज्ञान एक विज्ञान होने का दावा करता था। मनोविज्ञान ने आत्मा एवं मन का प्रत्यय इसीलिये छोड दिया था कि उनका अध्ययन वैज्ञानिक विधि से सम्भव नही था। किन्तु मनोविज्ञान ने आत्मा एव मन के स्थान पर चेतना को केन्द्र बिन्दु बना दिया जो कि अपने पूर्व प्रत्ययो से कम अनिश्चित एव अमूर्त नही था। विज्ञान स्थूल वस्तु का ही अध्ययन कर सकता है। विज्ञान की परिधि मे वे ही पदार्थ आ सकते हैं जिनका इन्द्रियो द्वारा प्रत्यक्षीकरण सम्भव हो। अगोचर वस्तुओ का अध्ययन वैज्ञानिक विधि से किया ही नही जा सकता। अतः वाटसन मन ही मन इस निश्चय पर उसी समय पहुँच गया था कि मनोविज्ञान को विज्ञान बनाने के लिए चेतना के प्रत्यय को छोड़ना पड़ेगा। वह इस निष्कर्ष पर पहुँच चुका था कि या तो वह मनोविज्ञान को विज्ञान बना देगा या मनोविज्ञान का क्षेत्र ही छोड देगा।

वाटसन मन ही मन यह सोचा करता था कि यदि मनोविज्ञान से चेतना का प्रत्यय हटा दिया जाय तो मनोविज्ञान मे बडा सुधार हो जायगा। अपने इस विचार को उसने सबसे पहले शिकागो विश्वविद्यालय के अपने सहयोगियो के समक्ष रखा। उसे अपने सहयोगियो का समर्थन न मिल सका। उस समय शिकागो विश्वविद्यालय मे मनोविज्ञान-विभाग के अध्यक्ष थे श्री एन्जल[1] महोदय जिन्हे वाटसन के प्रति हार्दिक सहानुभूति थी। एन्जल

1 J. R. Angell

महोदय ने वाटसन के कुछ विचारो को धैर्यपूर्वक सुना और उन्होने एक सच्चे मित्र की भाँति वाटसन को यह परामर्श दिया कि चेतना-विहीन मानव-मनोविज्ञान की कल्पना करने की भूल वह न करे। वाटसन को अपने विचारो मे कोई भूल नही दिखाई पडी और वह अपने निश्चय पर अटल रहा। सन् १९१२ ई० मे उसे कोलम्बिया विश्वविद्यालय मे व्याख्यान देने का अवसर प्राप्त हुआ जिसमे उसने सर्वप्रथम अपने व्यवहारवादी विचारो का प्रतिपादन किया किन्तु प्रकाशित रूप मे व्यवहारवाद एक वर्ष वाद आया जवकि उसने एक पत्रिका मे इस आशय का एक लेख लिखा।[1] उसी वर्ष वाटसन ने "व्यवहार मे प्रतिमा और भाव"[2] नामक एक लेख लिखा जिसमे उसने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया कि प्रतिमा और भाव जैसे अमूर्त प्रत्यय भी वास्तव मे शारीरिक गतियो के रूप मे समझे जा सकते हैं और इनके अध्ययन के लिए अन्तर्दर्शन की आवश्यकता नही है।

उपर्युक्त दोनो लेखो ने मनोविज्ञान के क्षेत्र मे एक क्रान्ति-सी मचा दी। वाटसन का विरोध होने लगा और उसके सामने अनेक समस्याएँ उपस्थित हुई। उसे अव अपने विचारो को और अधिक व्यवस्थित रूप मे प्रस्तुत करने की आवश्यकता का अनुभव हुआ और इसका परिणाम यह हुआ कि एक वर्ष वाद ही सन् १९१४ मे उसकी प्रथम पुस्तक "व्यवहार, तुलनात्मक मनोविज्ञान का एक परिचय"[3] नाम से प्रकाशित होकर मनोविज्ञान-जगत् में आ गई।

1 The title of the article was, "Psychology as the Behaviourist Views It" and it was published in *Psychological Review*, 1913, 20, pp 158–177.

2 The Image and Affection in Behaviour, published in *Journal of Philosophy, Psychology and Scientific Method*, 1913, 10, pp. 421-428.

3 Watson J. B, *Behaviour : An Introduction to Comparative Psychology*, New York, Henry Holt and Company, 1914.

व्यवहारवाद अमेरिकी समाज की प्रकृति के अनुकूल था। अमेरिका मे सामान्य व्यक्ति की भी रुचि सिद्धान्त से अधिक व्यवहार में दिखाई पडती है। जीवन के शाश्वत एव चिरन्तन मूल्यो की अपेक्षा उपयोगी एवं व्यावहारिक मूल्यो पर अमेरिकी नवयुवक अधिक ध्यान देता है। वहाँ के समाज की भावना 'प्रैगमैटिज्म' के रूप मे दर्शन मे प्रकट हुई है और व्यवहारवाद के रूप मे इसी भावना ने मनोविज्ञान मे पदार्पण किया है। जो कार्य डाक्टर डीवी ने दर्शन मे किया है वही कार्य डाक्टर वाटसन ने मनोविज्ञान मे किया। यद्यपि प्रोफेसर डीवी व्यवहारवादी नही थे किन्तु उनके सिद्धान्तो ने वाटसन का रास्ता साफ कर दिया था। शिकागो विश्वविद्यालय मे डाक्टर डीवी से वाटसन ने शिक्षा पायी थी और वह उनके विचारो से प्रभावित भी हुआ था।

ऐसा प्रतीत होता है कि अमेरिका के नवयुवक मनोवैज्ञानिक वाटसन के विचारो का स्वागत करने के लिए तैयार बैठे थे। वाटसन के भाषणो को ध्यान से सुना गया; उसके दोनो लेख चाव से पढ़े गये और उसकी प्रथम पुस्तक का स्वागत किया गया। प्रथम पुस्तक के प्रकाशित होने के एक वर्ष पश्चात् ही वाटसन ने अमेरिकी मनोविज्ञान-सघ[1] के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया।

वाटसन से पूर्व भी कुछ मनोवैज्ञानिको ने व्यवहार की ओर ध्यान दिया था। कैटल[2] ने मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यवहार से जोडते हुये मन और शरीर के भेद को अस्वीकार किया था। कैटल मनोविज्ञान को चेतना तक सीमित रखने के विरुद्ध था और उसने अन्तर्दर्शन के अतिरिक्त अन्य प्रणालियो को मनोविज्ञान मे व्यवहृत करने की माँग की थी। उसने सकेत किया था कि हम पशु, शिशु अथवा असभ्य व्यक्ति की चेतना का अध्ययन नही कर सकते किन्तु उनके व्यवहार का अध्ययन किया जा सकता है, बहुत कुछ किया गया

1 American Psychological Association 1860 1944
2 Cattell

है, और यह अध्ययन उपयोगी सिद्ध हुआ है। कैटल ने स्वयं पेन्सिलवेनिया और कोलम्बिया मे मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओ की स्थापना की थी और अन्तर्दर्शन को अलग रखकर कई प्रयोग किये थे। मिशिगन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर पिल्सवरी (Walter Bowers Pillsbury) ने अन्तर्दर्शन (Introspection) और बाह्य निरीक्षण (Objective Observation) दोनो को स्वीकार करते हुये मनोविज्ञान के विषय के रूप मे व्यवहार को ही मान्यता प्रदान की। उनके अनुसार मन को जानने की विधि उसके व्यवहार एव काय का अध्ययन है। मैक्डूगल (Willian McDougall) ने भी मनोविज्ञान को व्यवहार का विज्ञान माना किन्तु उसने चेतना तथा अनुभव के अध्ययन की ओर भी ध्यान दिया। चेतना तथा अनुभव के अध्ययन को मैक्डूगल ने शुद्ध मनोविज्ञान की सज्ञा दी और यह स्वीकार किया कि शुद्ध मनोविज्ञान किसी क्षेत्र मे उपयोगी नही होता। व्यवहार के अध्ययन को उसने निश्चयात्मक विज्ञान बताया। इस प्रकार हम देख रहे हैं कि वाटसन से पहले ही मनोविज्ञान मे व्यवहार पर बल दिया जाने लगा था। कैटल, पिल्सवरी और मैक्डूगल व्यवहार की ओर झुके थे किन्तु उन्होने व्यवहार को विस्तृत अर्थ मे प्रयुक्त किया था। उन मनोवैज्ञानिको ने व्यवहार की विस्तृत व्याख्या करते हुये उन मानसिक प्रक्रियाओ को भी आचरण मे सम्मिलित कर लिया था जिनका अध्ययन हम अन्तर्दर्शन द्वारा करते हैं। इस प्रकार देखना, सुनना, स्पर्श करना, सूँघना, कल्पना करना, इच्छा करना आदि भी आचरण ही माना गया। जो कार्य किया जाय वही व्यवहार है। इस अर्थ मे मन और शरीर के कार्यो मे कोई विरोध नही है। मानसिक प्रक्रियाओं को स्वीकार करने पर चेतना के अस्तित्व को स्वीकार करना ही पडता है। वाटसन ने इन मनोवैज्ञानिको की उपेक्षा की और उनके सिद्धान्तो को अस्वीकार करते हुये घोषणा की कि चेतना और व्यवहार परस्पर विरोधी प्रत्यय हैं।

मनोविज्ञान को यदि व्यवहार का विज्ञान माना जाय तो चेतना को वहिष्कृत करना पडेगा। वाटसन ने देखा कि कैटल, पिल्सवरी और मैक्डूगल ने आचरण के पद का तो समर्थन किया किन्तु

वे चेतना के मोह से मुक्त नही हो पाए । वाटसन कहता है कि व्यवहार को स्वीकार करने पर चेतना और अन्तर्दर्शन का अपने आप वहिष्कार हो जाता है। चेतना को मानने पर अन्तर्दर्शन की पद्धति का आश्रय लेना पडता है। विज्ञान के लिए वैज्ञानिक पद्धति वडे महत्व की वस्तु है। चेतना का वैज्ञानिक विधि से अध्ययन नही किया जा सकता और उसे समझने के लिए अन्तर्दर्शन की अवैज्ञानिक विधि का सहारा लिया जाता है। इस प्रकार मनोविज्ञान विज्ञान की अपेक्षा कपोल-कल्पित गाथा बनने लगता है। वाटसन अन्तर्दर्शन को अवैज्ञानिक विधि मानता है। वाटसन अन्तर्दर्शन का कट्टर विरोधी है। उसके विरोध के कुछ विशेष कारण है।

अन्तदर्शन की पद्धति का समर्थन सवसे अधिक सरचनावाद ने किया। सरचनावादी अन्तर्दर्शन को मनोविज्ञान की मुख्य पद्धति मानता है। किन्तु यह पद्धति पशुओ के अध्ययन मे प्रयुक्त नही की जा सकती है। इस प्रकार पशु-मनोविज्ञान के क्षेत्र मे काम करने वाले मनोवैज्ञानिको को सरचनावादी लोग मनोवैज्ञानिक के रूप मे स्वीकार करने को प्रस्तुत नही थे। पशु-मनोवैज्ञानिको को सरचनावादियो के समक्ष मुँह की खानी पडती थी। वाटसन भी पशु-मनोवैज्ञानिको की श्रेणी मे ही आता था। इस वात के विषय मे हम आगे चर्चा करेगे। इसका परिणाम यह हुआ कि वाटसन ने अन्तदर्शन को मनोविज्ञान के क्षेत्र से निकालने का बीडा उठाया।

वाटसन को अन्तर्दर्शन की सत्यता पर भी विश्वास नही था। टिचनर ने अन्तर्दशन की पद्धति को वैज्ञानिक पद्धति बनाने का प्रयत्न अवश्य किया था किन्तु इस पर भी अन्तर्दर्शन की पद्धति वस्तुनिष्ठ नही हो पाई थी। सुदीक्षित अन्तर्दर्शक लोग भी एक ही विषय पर भिन्न-भिन्न परिणामो पर पहुँच रहे थे। अमूर्त प्रत्ययो पर विचार करते करते अपने अनुभव के अनुसार अन्तर्दर्शक निष्कर्ष निकाल देते थे किन्तु ये निष्कर्ष वैध एव विश्वस्त नही होते थे। विज्ञान सदा वस्तुनिष्ठ होता है। विज्ञान मे निकाले गये निष्कर्ष सार्वजनिक होते है, इसमे व्यक्तिगत अनुभवो के आधार पर भिन्नता का प्रश्न ही नही उठता। मनोविज्ञान भी एक विज्ञान बन रहा था। अतः

इसमे भी वस्तुनिष्ठता लानी आवश्यक थी। वाटसन ने देखा कि अन्तर्दर्शन का दामन पकडने से मनोविज्ञान नही बन सकता अत. उसने इसका परित्याग करना ही उचित समझा।

एक बात और थी। अन्तर्दर्शन के द्वारा ऐसी वस्तु का अध्ययन किया जाता था जो इन्द्रियगम्य नही थी और जिसका सम्बन्ध मानसिक प्रक्रियाओ से था। जिस वस्तु को हम आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा आदि से देख, सुन, सूँघ, चख और और छू सकते हैं उसके लिए अन्तर्दर्शन की आवश्यकता ही नही है। अन्तर्दर्शन का आश्रय तो वहाँ पर लेना पडता है जहाँ बाह्य निरीक्षण से सफलता नही मिलती। अन्तर्दर्शन द्वारा चेतना का अध्ययन किया जाता था और इस विधि के द्वारा मास-पेशी, स्नायु, ग्रन्थि आदि के अध्ययन का कोई महत्व नही था। वाटसन ने मास-पेशी, स्नायु, ग्रन्थि, शरीर के अवयव आदि के अध्ययन को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया और इनका अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओ मे क्रमबद्ध निरीक्षण की पद्धति को ही विश्वसनीय ठहराया। इन्ही सब कारणो से वाटसन ने अन्तर्दर्शन का बलपूर्वक विरोध किया। अन्तर्दर्शन की अध्ययन-वस्तु चेतना का भी तिरस्कार किया गया। व्यवहारवादी के अनुसार चेतना एक कल्पना है। इसके अस्तित्व को किसी वैज्ञानिक प्रमाण द्वारा प्रमाणित नही किया जा सकता। मानसिक प्रक्रियाएँ, चेतना, आत्मा, मन आदि केवल शब्द है और इनका कही अस्तित्व नही। ये सभी शब्द विज्ञान के लिए अनुपयुक्त हैं। चेतना को किसी परीक्षण के द्वारा परीक्षित नही किया जा सकता, इस पर कोई प्रयोग नही हो सकता क्योकि यह परीक्षण-नली (test-tube) मे रखी नही जा सकती। इसका सम्बन्ध धर्म एव दर्शन से अधिक है और इस रहस्यमय प्रत्यय का यदि अस्तित्व भी हो तो इसका वैज्ञानिक विधि से अध्ययन नही किया जा सकता। चेतना केवल व्यक्तिगत अन्तर्दर्शन द्वारा जानी जा सकती है अत यह बूढी नानी या दादी की कहानी मात्र रह जाती है। मनोविज्ञान ने चेतना को विषय-वस्तु बनाकर भूल की है और यह भूल अन्तर्दर्शन और चेतना को पूर्णतया बहिष्कृत कर सुधारी जा सकती है।

वाटसन से पहले मनोवैज्ञानिक लोग शरीर और मन के सम्बन्ध को समझने मे ही उलझे रहे। लगभग सभी मनोवैज्ञानिकों ने शरीर और मन के सम्बन्ध का विश्लेषण करना अपना कर्त्तव्य समझा था। शरीर और मन का सम्बन्ध एक दार्शनिक समस्या है। प्रत्ययवादी (Idealist) दार्शनिक मन को मुख्य मानता है और शरीर को गौण। कुछ प्रत्ययवादी तो शरीर को मन का ही विकार समझते हैं। वैसे शरीर और मन मे मौलिक भेद समझ पडता है। मन का गुण चेतनता है और शरीर का गुण प्रसार। मन प्रसारित नही होता और शरीर को बोध नही होता। इस मौलिक भेद को ही देखकर प्रसिद्ध दार्शनिक डेकार्ट (Descartes) ने द्वैतवाद का समर्थन किया था। डेकार्ट के अनुसार शरीर और मन दो भिन्न तत्व हैं और पीनियल नामक ग्रन्थि मे मन और शरीर की अन्त क्रिया होती है। स्पिनोजा (Spinoza) ने शरीर और मन की अन्त क्रिया का सिद्धान्त अस्वीकार किया और समानान्तरवाद (Parallelism) का प्रतिपादन किया। इस वाद के अनुसार शरीर और मन की क्रियाएँ एक दूसरे के समानान्तर चलती रहती हैं और कभी एक दूसरे से प्रभावित नही होती। दोनो की बनावट ही ऐसी है कि शारीरिक क्रिया होते ही उसके समानान्तर एक मानसिक क्रिया हो जाती है किन्तु दोनो मे अन्त.क्रिया नही होती है। मनोविज्ञान के क्षेत्र मे अन्त.-क्रियावाद और समानान्तरवाद का ही वाटसन के अभ्युदय के समय तक बोलवाला था। वाटसन ने मन के अस्तित्व को अस्वीकार करके शरीर और मन के द्वैत को समाप्त कर दिया। वाटसन कहता है कि मन अभौतिक पदार्थ होने के कारण भौतिकी (Physics) द्वारा अग्राह्य है। मनोविज्ञान को विज्ञान बनने के लिए भौतिकी का अनुसरण करते हुए यान्त्रिक, वस्तुनिष्ठ, सार्वजनिक, भौतिक और प्राकृतिक होना चाहिए।

शिकागो विश्वविद्यालय मे वाटसन जब शिक्षा प्राप्त कर रहा था, उस समय उसका ध्यान पशु-मनोविज्ञान मे हो रही उन्नति की ओर गया था। वाटसन ने पशु-मनोविज्ञान से ही मनोविज्ञान की अपनी शिक्षा प्रारम्भ की थी और डाक्टर की उपाधि के लिए उसने

जो शोध-कार्य किया था वह भी पशु-मनोविज्ञान के ही क्षेत्र मे था। सन् १९१३ मे जब वाटसन ने व्यवहारवाद की विधिवत् घोषणा की थी उस समय तक पशु-मनोविज्ञान मे पर्याप्त उन्नति हो गई थी। बहुत पहले पशुओ के व्यवहार के अध्ययन की कोई प्रणाली नही थी। मनोविज्ञान का सम्बन्ध केवल मनुष्यो से ही था क्योकि उस समय मनोविज्ञान आत्मा या मन का शास्त्र था और अन्तर्दर्शन ही अध्ययन की विधि थी। पशु अन्तर्दर्शन करने मे असमर्थ था। डेकार्ट ने तो स्पष्ट रूप से कहा था कि पशुओ मे आत्मा, मन या चेतना का निवास नही होता। डेकार्ट के अनुसार कुत्ते का भूँकना, रवड़ के कुत्ते को दवाने पर पो-पो की आवाज के ही समान है। उसके बाद के मनोवैज्ञानिक भी यही मानते रहे कि पशुओ मे चेतना का अभाव है। चूँकि मनोविज्ञान चेतना का विज्ञान माना जाता था अतः पशु के व्यवहार का अध्ययन उन मनोवैज्ञानिको के लिए व्यर्थ था। डार्विन द्वारा विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन किए जाने पर पशु और मनुष्य मे मौलिक भेद अस्वीकार किया गया। डार्विन के अनुयायियो ने पशु और मनुष्य मे समानता दिखाने मे उतावले होकर पशुओ में भी उच्चतर मानवीय मानसिक प्रतिक्रियाओ का आरोपण कर दिया। मनुष्यो ने अपनी चेतना के आधार पर पशुओ के मन की कल्पना करना प्रारम्भ कर दिया। इससे पशुओ के व्यवहार की जानकारी तो हुई नही उल्टे मनोविज्ञान के क्षेत्र मे कई जटिल समस्याएँ खडी हो गई। इन समस्याओ का समाधान करने के लिए लॉयड मॉर्गन (Lloyd-Morgan) ने एक ऐसी विधि का विकास किया जो बहुत कुछ प्रयोगात्मक पद्धति से मिलती-जुलती थी।

लॉयड मॉर्गन की निरीक्षण पद्धति मे पशुओ के व्यवहार का नियन्त्रित परिस्थितियो मे अध्ययन किया जाता था। मॉर्गन के पश्चात् थार्नडाइक ने पशुओ के व्यवहार के अध्ययन की पद्धति का विकास किया। थार्नडाइक ने पशुओ को प्रयोगशालाओ मे ला खडा किया और समस्या-मजूषा (Puzzle-box) तथा पहेलियो जैसी विशिष्ट परिस्थितियो मे पशुओ की समस्याओ का अध्ययन प्रारम्भ किया। थार्नडाइक के प्रयत्नो के परिणामस्वरूप पशुओ के व्यवहार का

क्रमबद्ध निरीक्षण किया जाने लगा। इसके पश्चात् पावलोव और बेखटरेव के प्रयोगो से भी पशु-मनोविज्ञान की पर्याप्त उन्नति हुई। मारगरेट फ्लॉय वाशबर्न (Margaret Floy Washburn) तथा रावर्ट यर्कीज (Robert M. Yerkes) के कार्यों ने भी मनोवैज्ञानिको का ध्यान आकृष्ट किया था। पशु-मनोविज्ञान मे हो रही उन्नति की ओर से सरचनावादी भी आँख न मूंद सके और उन्होने भी इस बात को बड़े ध्यान से देखा कि पशुओ पर किए जा रहे प्रयोगो से कुछ लाभप्रद निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं किन्तु सरचनावादियो की दृष्टि म पशु-मनोविज्ञान एक आनुपगिक ज्ञान था और मानव-मनोविज्ञान की तुलना मे निम्न कोटि का था।

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि व्यवहारवाद के आगमन के समय तक पशु मनोविज्ञान मे पर्याप्त उन्नति हो गई थी किन्तु पशु-मनोविज्ञान को वह स्थान नही दिया जा रहा था जिस स्थान का वह अधिकारी था। वाटसन को पशु-मनोविज्ञान के साथ हो रहे अन्याय से बड़ा क्षोभ हुआ। उसने देखा कि पशुओ की समस्याओ के अध्ययन से मनुष्यो के व्यवहार को समझने मे बड़ी सहायता मिलती है। व्यवहार का अध्ययन अकस्मात् नही किया जा सकता। व्यवहार के विधिवत् अध्ययन के लिए परिस्थितियो पर नियन्त्रण आवश्यक है। मनुष्यो के काम करने के समय, भोजन, कार्य, जीवन-दशाओ आदि पर नियन्त्रण करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है किन्तु पशुओ के व्यवहार की विभिन्न परिस्थितियो पर सरलता से नियन्त्रण किया जा सकता है। पशुओ का व्यवहार सरल होता है और इसमे मानवीय व्यवहार की जटिलता का अभाव होता है। पशुओ के सम्पूर्ण जीवन का और किन्ही किन्ही पशु-जातियो मे कई पीढियो का अध्ययन सरलता से किया जा सकता है किन्तु मनुष्यो के लिए ऐसी सम्भावना नही है। पशु की किसी इन्द्रिय को शून्य किया जा सकता है, किसी मास-पेशी को गतिहीन किया जा सकता है, भेजे के किसी भाग को नियन्त्रित किया जा सकता है और उसके शरीर के किसी भाग को क्षति पहुँचा कर शारीरिक अगो के कार्यों का व्यवहार पर प्रभाव जाना जा सकता है किन्तु मनुष्य के व्यवहार के अध्ययन के लिए इन

खतरों को मोल लेना लाभप्रद नहीं है। इन्ही सब कारणो से वाटसन पशु-मनोविज्ञान से बहुत प्रभावित था और इसमे कोई सन्देह नही है कि वाटसन के व्यवहारवाद का पशु-मनोविज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

वाटसन को यह बात बहुत अच्छी लगी कि पशु-मनोविज्ञान इतना ही वस्तु निष्ठ है जितना कि भौतिकी या अन्य प्राकृतिक विज्ञान। पशु व्यवहार का अध्ययन कई मनोवैज्ञानिक एक साथ कर सकते हैं और वे सब मिलकर एक सामान्य निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। यहाँ अध्ययन की सामग्री अध्ययनकर्ता से भिन्न है, अध्ययन के कर्ता और कर्म पृथक्-पृथक् है। अन्तर्दर्शनात्मक या सरचनात्मक मनोविज्ञान मे ऐसा नही है। इसीलिए वाटसन पशु-मनोविज्ञान की ओर आकृष्ट हुआ। जब वाटसन शिकागो विश्वविद्यालय मे अध्ययन कर रहा था तब उसने एक पशु-प्रयोगशाला की स्थापना की थी। सन् १९१४ मे उसने जो अपनी प्रथम पुस्तक लिखी थी वह भी पशु-मनोविज्ञान पर थी। इस पुस्तक मे उसने पशु-मनोविज्ञान को एक पृथक् विज्ञान के रूप मे स्वीकार करने के लिए तर्क प्रस्तुत किए हैं। प्रयोगात्मक कार्यो का उल्लेख करते हुये वाटसन ने इस पुस्तक मे यह स्पष्ट किया है कि पशु-मनोविज्ञान या तुलनात्मक मनोविज्ञान एक स्वतन्त्र विषय है। सन् १९१९ में उसकी दूसरी पुस्तक प्रकाशित हुई जिसका शीर्षक है "व्यवहारवादी की दृष्टि में मनोविज्ञान।"[1] इस पुस्तक में वाटसन ने पशु-मनोविज्ञान के सिद्धान्तो के आधार पर मानव व्यवहार की व्याख्या की है। उसने इस पुस्तक मे बडी कुशलता से पशु-मनोविज्ञान मे प्राप्त निष्कर्षों को मानव-मनोविज्ञान में प्रयुक्त किया है और सम्पूर्ण पुस्तक में यह दिखाने की चेष्टा की है कि मनुष्य उत्तेजना-प्रतिक्रिया का एक यन्त्र है और उसके सभी कार्यों को उत्तेजना प्रतिक्रिया सिद्धान्त द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। इस पुस्तक मे 'चेतना' अथवा 'मानसिक प्रक्रिया' शब्दो का पूर्ण वहिष्कार किया गया है और पूरी पुस्तक मे पाठक की भेंट किसी ऐसे शब्द से नही

[1] *Psychology from the Standpoint of a Behaviorist*, Philadelphia ; J B. Lippincott Co , 1919.

होती जिससे चेतना की गन्ध आ सके। इस पुस्तक मे वाटसन द्वारा किये गये प्रयोगो का भी वर्णन है और पुस्तक को पढने से मानव जीवन शैशव के महत्व का भी परिचय मिलता है। वाटसन की तीसरी पुस्तक छः वर्ष पश्चात् निकली। सन् १९२५ में प्रकाशित उसकी तीसरी पुस्तक का शीर्षक है "व्यवहारवाद"[1] जो पाँच वर्ष बाद सन् १९३० में संशोधित की गई। वाटसन की यह तीसरी पुस्तक बड़ी लोकप्रिय हुई और इसमें उसने बड़ी ही सरल भाषा मे अपने मत का विवेचन किया है। पुस्तक की भूमिका मे ही लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि इस पुस्तक मे उसका मत ठीक-ठीक प्रस्तुत किया गया है। पिछली दो पुस्तको में व्यवहृत मनोविज्ञान[2] (Applied Psychology) मे इतनी रुचि नही दिखाई गई है जितनी तीसरी में। "व्यवहारवाद" मे वाटसन ने मनोविज्ञान के ज्ञान को जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे व्यवहृत करने पर बल दिया है। इस पुस्तक में वाटसन ने वंशानुक्रम के महत्व को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया है। इस तीसरी पुस्तक का बड़ा स्वागत हुआ और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ ने इसकी प्रशंसा की।

व्यवहारवाद के अनुसार मनोविज्ञान की विषय-वस्तु है व्यवहार न कि चेतना या मानसिक क्रियाए। मनोविज्ञान न तो आत्मा का विज्ञान है, न मन का शास्त्र है, न चेतना की विद्या है और न ही मनोभौतिक (Psychophysical) प्रक्रियाओ का ज्ञान है।[3] यह साफ साफ आचरण या व्यवहार का विज्ञान है और देश और काल

[1] *Behaviorism*, New York : W. W. Norton and Co., 1925, 1930.

[2] व्यवहृत मनोविज्ञान के विषय में अधिक जानकारी के लिए देखिए लेखक की पुस्तक 'व्यवहृत मनोविज्ञान" (प्रकाशक लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा)

[3] देखिए लेखक की पुस्तक, 'सामान्य मनोविज्ञान' अध्याय १ (प्रकाशक-आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली ६)

मे होने वाली गतियाँ ही इसकी अध्ययन-सामग्री है। यह शंका उठ सकती है कि शारीरिक क्रियाओ का अध्ययन तो शरीर-विज्ञान (Physiology) में करते ही हैं और 'व्यवहारवाद' भी शारीरिक क्रियाओ का ही अध्ययन करने का स्वाँग करता है तो इसे मनोविज्ञान के अन्तर्गत कैसे लिया जाय ? इस शका के अनुसार व्यवहारवाद शरीर विज्ञान का ही एक भाग बन जाता है। वाटसन ने 'व्यवहार' प्रत्यय का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ मे किया है। इस अर्थ को समझ लेने के पश्चात् हमारी उपर्युक्त शका समाप्त हो जायगी। शरीर-विज्ञान मे शारीरिक अगो की क्रियाओ का अध्ययन किया जाता है। एक अग एक विशेष क्रिया करता है। फेफडा रक्त-शोधन करता है तो हृदय रक्त-सचार करता है। पाचन-क्रिया के लिए अलग अग है। मनोविज्ञान इन शारीरिक अंगो की क्रियाओ का अध्ययन नही करता वरन् सम्पूर्ण शरीर की क्रिया का अध्ययन करता है। शरीर-विज्ञान मे हृदय, आमाशय, जिगर, फेफडे आदि के कार्यों का अध्ययन किया जाता है, मनोविज्ञान मे सम्पूर्ण शरीर के आचरण की व्याख्या कीजाती है। आमाशय भोजन पचाता है, किन्तु सम्पूर्ण शरीर व्यवहार करता है। इस प्रकार व्यवहार किसी एक क्रिया से भिन्न है। किन्तु क्रिया व्यवहार दोनो भौतिक कार्यकलाप के अन्तर्गत हैं और दोनो का निरीक्षण तथा परीक्षण किया जा सकता है। मनोविज्ञान अपनी वस्तुनिष्ठ पद्धतियो से इसी व्यवहार की व्याख्या करता है ? इस व्यवहार से चेतना या मन या आत्मा का कोई सरोकार नही और इसके अध्ययन के लिए किसी रहस्यपूर्ण पद्धति की कोई आवश्यकता नही। टिचनर ने इसका विरोध करते हुये कहा कि वह विद्या मनोविज्ञान है ही नही जिसमे मन या चेतनतत्त्व को उपेक्षित किया जाय। वाटसन ने ईट का जवाव पत्थर से देते हुये कहा कि केवल व्यवहार का विज्ञान ही मनोविज्ञान है, शेष कपोल-कल्पित गाथा है। टिचनर के लिए 'मनोविज्ञान' का प्रथम पद (मन) प्रधान है, वाटसन के लिए द्वितोय (विज्ञान)। मनोविज्ञान तभी विज्ञान वन सकता है जव इसकी विषय-वस्तु मूर्त एव इन्द्रियगम्य हो। वाटसन ने इसीलिए व्यवहार को महत्व दिया।

व्यवहार के अध्ययन के लिए केवल वस्तुनिष्ठ पद्धति ही वाटसन को मान्य है। निरीक्षण सभी प्रकार की वस्तुनिष्ठ पद्धतियो की आधारशिला है। वैज्ञानिक उपकरणो की सहायता से अथवा उनके बिना भी व्यवहार का निरीक्षण किया जा सकता है। वाचन मे चक्षुओ की गति अथवा लेखन मे उँगलियो की गति का चित्र लेकर वाचन के समय का आचरण जाना जा सकता है अथवा बिना किसी कैमरे की सहायता से गति का वस्तुनिष्ठ निरीक्षण हो सकता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणो (Psychological Tests) का भी व्यवहारवादी प्रयोग करता है किन्तु वह इन्हे मानसिक (Mental Tests) नही मानता। बुद्धि-परीक्षण अथवा विशेष-योग्यता के परीक्षण मानसिक प्रक्रियाओ की परीक्षा नही करते वरन् व्यक्ति के व्यवहार की जाँच करते हैं। बुद्धि-परीक्षण तो केवल ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते है जिसमे व्यक्ति आचरण करता है। बुद्धि-परीक्षणो द्वारा उत्पन्न परिस्थिति में व्यक्ति विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करता है। इन्ही प्रतिक्रियाओ को मापना ही बुद्धि-परीक्षण का कार्य है। प्रयोगशालाओ मे व्यक्ति के आचरण का विधिवत् अध्ययन किया जाता है।

इस व्यवहार का अध्ययन प्रतिक्रिया के अध्ययन से प्रारम्भ होता है। मनुष्य का व्यवहार बड़ा जटिल होता है। किसी जटिल समस्या के अध्ययन करने की वैज्ञानिक विधि यह है कि उसका विश्लेषण कर लिया जाय। वैज्ञानिक किसी वस्तु को विभिन्न भागो मे विभक्त करके उसके प्रत्येक भाग का सावधानी से निरीक्षण करता है। आचरण का भी विश्लेषण किया जाय तो इसकी सबसे छोटी इकाई उत्तेजना-प्रतिक्रिया (Stimulus-Response) के रूप मे हमे मिलती है। सरचनावादी भी चेतना का विश्लेषण करता है और सवेदना को चेतना की सबसे छोटी इकाई मानता है। आचरणवादी आचरण को उत्तेजना-प्रतिक्रिया की अनेक इकाइयो का समूह मानता है। उत्तेजना-प्रतिक्रिया की इकाई को व्यवहारवादी सहज क्रिया (reflex) के नाम से पुकारता है। मनुष्य का पूरा व्यवहार उत्तेजना प्रक्रिया का ही खेल है। वातावरण मे अनेक प्रकार की उत्तेजनाएँ

व्याप्त हैं। प्राणी जब इनमे से उत्तेजना के सम्पर्क मे आता है तो वह प्रतिक्रिया करता है। हम जो कुछ करते हैं उसे उत्तेजना-प्रतिक्रिया द्वारा समझाया जा सकता है। वाटसन व्यवहार की सबसे छोटी इकाई सहज क्रिया को मानता है किन्तु इससे यह नही समझ लेना चाहिये कि वह विश्लेषणवादी है। वाटसन का ध्यान व्यवहार के विश्लेषण पर इतना नही है जितना कि किसी परिस्थिति मे प्राणी के कार्यो पर है। व्यवहार का विश्लेषण करते करते हम मास-पेशी की गति तक पहुँच जाते हैं किन्तु इन गतियो को मास-पेशी की विभिन्न गतियो मे विभक्त करना शरीर-विज्ञान का कार्य है, मनोविज्ञान का नही। वाटसन सहज क्रिया से व्यवहार की व्याख्या प्रारम्भ अवश्य करता है किन्तु वह पत्र-लेखन और भवन-निर्माण जैसे जटिल कार्यों तक बढता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वाटसन के लिए प्रतिक्रिया केवल मास-पेशी की गतियो का समूह ही नही है वरन् किसी कार्य को सफलतापूर्वक करने से सम्बन्धित है। उत्तेजना भी वाटसन के लिए महत्वपूर्ण है। यह केवल वातावरण का पदार्थ नही है, न ही पदार्थ पर पड रही सूर्य की किरणे हैं और न ही प्रकाश का आँख मे या ध्वनि का कान मे घुसना ही है। उत्तेजना सम्पूर्ण वाह्य परिस्थिति है। इस परिस्थिति के प्रति व्यक्ति कुछ प्रतिक्रिया करता है। इस प्रतिक्रिया का कुछ वस्तुनिष्ठ परिणाम होता है। वाटसन के लिये यह वस्तुनिष्ठ परिणाम महत्वपूर्ण है। इस प्रकार उत्तेजना-प्रतिक्रिया का विस्तृत रूप वस्तुनिष्ठ परिस्थिति और वस्तुनिष्ठ परिणाम है।

वातावरण उत्तेजना प्रस्तुत करता है, प्राणी प्रतिक्रिया करता है। इस उत्तेजना की जानकारी कैसे होती है ? सरचनावादी सवेदना और प्रत्यक्षीकरण द्वारा इस प्रश्न का उत्तर देता है। सरचनावादी के अनुसार वातावरण मे उत्तेजना उपस्थित होते ही ज्ञानेन्द्रियो मे स्फुरण होता है और बोध-स्नायु द्वारा उत्तेजना मस्तिष्क के एक विशिष्ट ज्ञान-क्षेत्र मे पहुँचती है। मन को उत्तेजना की जानकारी हो जाती है वह अपने पूर्वानुभाव के सहारे इसका अर्थ ग्रहण कर लेता है। वाटसन ने देखा कि परम्परागत मनोविज्ञान सवेदना और प्रत्यक्षीकरण की जो प्रक्रिया समझा रहा है वह केवल चैतनतत्व के लिए सम्भव है

और पशु के व्यवहार को समझाने मे यह प्रक्रिया असफल हो जाती है अत. उसने सवेदना और प्रत्यक्षीकरण से भी छुट्टी ले ली। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। सवेदना और प्रत्यक्षीकरण के पदो का प्रयोग चेतना के झमेले मे डाल देगा और वाटसन पग-पग पर चेतना से बचना चाहता है। किन्तु किसी चाक्षुप उत्तेजना, श्रोतृ-उत्तेजना आदि के प्रस्तुत होने पर कुछ न कुछ प्रतिक्रिया तो पशु भी करता ही है। अतः वाटसन चाक्षुस-प्रतिक्रिया, श्रोत-प्रतिक्रिया आदि शब्दो का प्रयोग करने मे कोई हानि नही देखता। वह सवेदना के स्थान पर प्रतिक्रिया शब्द का प्रयोग करता है। देखना चाक्षुष प्रतिक्रिया है और सुनना श्रोतृ-प्रतिक्रिया। परम्परागत मनोविज्ञान की दृष्टि मे भी प्रतिक्रिया तो होती है किन्तु यह सवेदना की जानकारी के पश्चात्। जब उत्तेजना का अर्थ मन ग्रहण कर लेता है तो मस्तिष्क उत्तेजना के अनुरूप प्रतिक्रिया करने का आदेश देता है और मस्तिष्क के आदेश को कर्म-स्नायु क्रियान्वित करते हैं। बोध-स्नायु मस्तिष्क तक उत्तेजना को पहुँचाते हैं, कर्म-स्नायु मस्तिष्क के आदेश को मास-पेशियो की गति मे परिवर्तित कर देते है। वाटसन कहता है हमे तो उत्तेजना के प्रति प्राणी की प्रतिक्रिया ही दिखाई पड़ती है। उत्तेजना को हम आँखो से देख सकते हैं और उसके प्रति की गई प्राणी की प्रतिक्रिया का भी हम वस्तुनिष्ठ निरीक्षण कर सकते हैं। हमे प्राणी की प्रतिक्रिया दिखाई पडती है और इसी से हमारा मतलब है। यदि व्यक्ति की प्रतिक्रिया के पूर्व किसी प्रकार का चेतना पूर्ण अनुभव होता भी हो तो वह हमे दिखाई नही पडता और उसका हम अध्ययन नही कर सकते। इस दृष्टि से वह चेतनापूर्ण अनुभव मनोविज्ञान के लिए निरर्थक हो जाता है। वाटसन के अनुसार बोध-स्नायु द्वारा भेजे मे आने वाली उत्तेजना तुरन्त ही कर्म स्नायु द्वारा ग्रहण कर ली जाती है और इस प्रकार का व्यवहार बोधात्मक एव क्रियात्मक दोनो होता है।

भेजे का कार्य बोध स्नायुओ एव कर्म-स्नायुओ मे सम्बन्ध स्थापित कर देना है। कोई ऐसा काय नही है जो केवल भेजे मे ही होता हो क्योकि उत्तेजना तुरन्त ही प्रतिक्रिया मे परिणत हो जाती है। बोध-स्नायु एव कर्म-स्नायु के कार्यों के बीच मे सवेदना एव

प्रत्यक्षीकरण जैसी कोई क्रिया नही होती है। यदि कोई कार्य भेजे मे होता भी है तो उसे हम व्यवहार के अन्तर्गत सम्मिलित नही कर सकते। ऐसी स्थिति मे देखना यह है कि वाटसन स्मृति के विषय मे क्या कहता है। वाटसन स्मृति के अस्तित्व से इन्कार नही कर सकता। उसके लिए ऐसा सम्भव नही था नही तो वह स्मृति की ओर से भी आँख मूँद लेता। वाटसन ने देखा कि स्मृति तो सामान्य जीवन मे भी दिखाई पडती है। हमारे प्रत्येक कार्य स्मृति की सहायता से होते हैं। कल्पना कीजिए यदि हम स्मरण न कर सकते तो अपने घर, बाल-बच्चो आदि को भी न पहचान सकते। पग-पग पर स्मृति का चमत्कार दिखाई पड़ता है। वाटसन कहता है स्मृति से इन्कार तो नही किया जा सकता किन्तु स्मृति से किसी मानसिक शक्ति का बोध करना भ्रमात्मक है। स्मृति भी एक प्रकार का व्यवहार है। स्मृति का अर्थ बड़ा सरल है। एक समय एक प्रकार की प्रतिक्रिया होती है। उत्तेजना से सम्बद्ध अनेक प्रतिक्रियाएँ हो सकती है। इन प्रतिक्रियाओ का हम अभ्यास छोड़ देते है। जिस अवधि मे अभ्यास नही किया जाता उस अवधि के बाद जब प्रतिक्रियाओ को पुनः स्थापित किया जाता है तो वह प्रक्रिया स्मृति हो जाती है। अत. स्मृति से किसी मानसिक शक्ति का सम्बन्ध जोड़ना ठीक नही है। प्रतिमा भी वाटसन के अनुसार बोध एव कर्म से सम्बन्धित है। इसमे उत्तर-प्रतिमा, गत्यात्मक उत्तेजना एव अन्तर्भूत वाणी सम्मिलित रहता है।

यही हाल भाव एव सवेग का भी है। दुख एव सुख के भाव मनोगत नही हैं। परम्परागत मनोविज्ञान दुख एव सुख को मानसिक दशा बताता है। वाटसन दुख एव सुख को भी उत्तेजना-प्रतिक्रिया के चक्कर मे डाल देता है। कुछ सवेदनशील अवयवो से स्नायविक उत्तेजना भेजे तक जाती है और कर्म स्नायु उस उत्तेजना को किसी प्रतिक्रिया मे बदल देते हैं। हम ऐसे समय दुख या सुख की प्रतिक्रिया करते हैं। व्यवहारवादी किसी ऐसे पद का प्रयोग नही करता जो बोध-स्नायु एव कर्म-स्नायु द्वारा अग्राह्य हो। भाव के विषय मे भी इसलिए वाटसन निजी दृष्टिकोण अपनाता है। सवेग भाव से अधिक जटिल होते है भाव सामान्य होता है, सवेग विशिष्ट।

संवेग मे शारीरिक परिवर्तन भी बड़ा महत्वपूर्ण होता है। परम्परागत मनोविज्ञान सवग को एक मनोदशा मानता है। इस दशा मे पूरा शरीर उत्तेजित हो जाता है। जब हम किसी पदार्थ, विचार या स्थिति के सम्पर्क मे आते हैं तो हम उनका प्रत्यक्षीकरण करते हैं। प्रत्यक्षीकरण से मन मे उत्तेजित दशा आ जाती है। उत्तेजित दशा मे विभिन्न शारीरिक परिवर्तन हो जाते है। जेम्स-लैंग सिद्धान्त ने एक दूसरी बात बतायी। जेम्स-और लैंग के अनुसार पदार्थ, विचार आदि का जब हम प्रत्यक्षीकरण करते है तो उस प्रत्यक्षीकरण मे ही यह शक्ति होती है कि वह शरीर मे परिवर्तन ला दे। ये शारीरिक परिवर्तन बाद मे सवेग को जन्म देते हैं। उदाहरणार्थ, शत्रु का प्रत्यक्षीकरण सीधे ही प्रत्यक्षकर्त्ता के शरीर मे कुछ परिवर्तन ला देता है और वह अपना अस्त्र उठा लेता है। शारीरिक परिवर्तन के बाद क्रोध का सवेग आता है। ऐसा जेम्स-लैंग सिद्धान्त के अनुसार है। वाटसन के अनुसार उत्तजना की उपस्थिति से शारीरिक परिवर्तन होते हैं। उत्तेजना के प्रत्यक्षीकरण को वाटसन ने छोड दिया। केवल शत्रु की उपस्थिति ही शारीरिक परिवर्तनो का कारण है। वाटसन के अनुसार इसके पश्चात सवेग की उत्पत्ति नही होती। सम्पूर्ण शरीर का तेजी से परिवर्तन ही सवेग है। कुछ ग्रन्थियो एव आन्तरिक अवयवो मे परिवर्तन होना ही सवेग है। तो सवेग अपने आप कही से आ नही जाता है। उत्तेजना के प्रति आन्तरिक अवयवो एव ग्रन्थियो की प्रतिक्रिया होती है और यह प्रतिक्रिया सवेग है। वाटसन कहता है कि सवेग भी व्यवहार है। इसमे भी सम्पूर्ण शरीर क्रिया करता है। हाँ, यह व्यवहार अन्तर्मूत है और इसमे आन्तरिक अवयवो का कार्य प्रधान होता है तथा शरीर के वाह्य अंग गौण रूप से कार्य करते है।

व्यवहारवाद को पावलोव के प्रयोगों से बड़ी सहायता मिली। पावलोव (Pavlov) रूसी वैज्ञानिक था और उसकी रुचि शरीर-विज्ञान मे विशेप रूप से थी। उसने सम्बद्ध सहज क्रिया (Conditioned Reflex) का आविष्कार किया। सम्बद्ध सहज क्रिया का प्रत्यय व्यवहारवाद का प्रमुख प्रत्यय बन गया है। किन्तु पावलोव ने सम्बद्ध सहजक्रिया का आविष्कार आनुषगिक रूप मे ही

किया था। एक समय वह कुत्ते के ऊपर पाचन-क्रिया से सम्बन्धित प्रयोग कर रहा था। यह प्रयोग विशुद्ध रूप से शरीर विज्ञान के क्षेत्र में था। उसने देखा कि जो व्यक्ति कुत्ते को भोजन देने आता था उस व्यक्ति के आने पर कुत्ते के मुँह मे लार आ जाती थी। भोजन देखने पर ही लार नही आती थी वरन् व्यक्ति को देखने पर भी। यदि वह व्यक्ति बिना भोजन लिए हुये भी कुत्ते के सामने से गुजरता था तो भी कुत्ते के मुँह मे लार आने लगती थी। इस स्थिति को देखकर पावलोव ने एक विधिवत् प्रयोग किया। कुत्ते को एक निश्चित समय पर भोजन दिया जाता और भोजन देते समय घंटी बजायी जाती। वहाँ पर भोजन उत्तेजना थी और लार आना प्रतिक्रिया। भोजन स्वाभाविक उत्तेजना थी और इस उत्तेजना की उपस्थिति मे लार आना स्वाभाविक प्रतिक्रिया। यह देखा गया कि भोजन देते समय घंटी बजाने के कारण बाद मे केवल घंटी बजाने से ही कुत्ते के मुँह मे लार आ जाती। घंटी बजाना कृत्रिम उत्तेजना थी क्योकि घंटी से लार आना स्वाभाविक प्रतिक्रिया नही है। किन्तु लार आने की प्रतिक्रिया घंटी बजाने पर भी होने लगी। कृत्रिम उत्तेजना ने स्वाभाविक उत्तेजना का स्थान ले लिया। यह सम्बन्धीकरण हुआ। यहाँ पर प्रतिक्रिया सम्बन्धीकृत हो गयी। जब प्रतिक्रिया किसी ऐसी उत्तेजना से सम्बन्धित कर दी जाती है जो मूलत. उस प्रतिक्रिया की उत्तेजना नही है तो उस प्रतिक्रिया को सम्बन्धीकृत प्रतिक्रिया कहा जाता है। पावलोव द्वारा कुत्ते पर किया गया यह प्रयोग बडा सरल है किन्तु यह सम्बन्धीकरण के मूल सिद्धान्त को समझाने के लिए पर्याप्त है। कभी कभी प्रतिक्रिया वही रहती है और कृत्रिम उत्तेजना मूल उत्तेजना का स्थान ले लेती है जैसा कि ऊपर के प्रयोग से स्पष्ट है और कभी-कभी उत्तेजना वही रहती है किन्तु एक दूसरी प्रतिक्रिया मूल प्रतिक्रिया का स्थान ले लेती है। दूसरी दशा मे उत्तेजना का ही सम्बन्धीकरण हो जाता है। एक उदाहरण लीजिए। बालक किसी वस्तु की उपस्थिति पर उसकी ओर इशारा करता है। वस्तु उत्तेजना है, इशारा प्रतिक्रिया। बाद मे चलकर बालक उस वस्तु की उपस्थिति

पर उसकी ओर इशारा करने की बजाय उसका नाम लेना सीख जाता है। वस्तु वही है अर्थात् उत्तेजना वही है किन्तु प्रतिक्रिया बदल गई। सम्बन्धीकरण की दोनो ही दशाओ मे उत्तेजना और प्रतिक्रिया के मूल सम्बन्ध मे परिवर्तन आता है। सम्बन्धीकरण की विधि के विकास का श्रेय पावलोव और उसके शिष्यो को ही है।

सम्बद्ध सहज क्रिया के आविष्कार से व्यवहारवाद को बडा बल मिला। इस विधि से व्यवहार का वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जा सकता है। इस विधि की वस्तुनिष्ठता से ही व्यवहारवाद इसकी ओर आकर्षित हुआ। व्यवहारवाद के अनुसार मनोविज्ञान का लक्ष्य व्यवहार का नियन्त्रण करना है। मनोविज्ञान को किसी उत्तेजना के द्वारा प्रस्तुत प्रतिक्रिया की अथवा किसी प्रतिक्रिया के कारणस्वरूप उत्तेजना की व्याख्या करना है। इस प्रकार मनोविज्ञान मे ज्ञानेन्द्रिय, ग्रन्थि और मास-पेशी तथा स्नायुमण्डल का विशेष महत्व है।

वाटसन ने सीखने मे भी सम्बद्ध प्रतिक्रिया को ही प्रमुख स्थान दिया। थार्नडाइक ने सीखने के तीन नियम बताए थे जिनमे परिणाम का नियम (Law of effect) भी था। परिणाम के नियम के उद्घोषकर्ता थार्नडाइक महोदय ही थे। इस नियम के अनुसार यदि प्राणी को किसी कार्य को करने मे सन्तोष मिलता है तो वह उस कार्य को शीघ्र सीख लेता है। असन्तोष और सन्तोष से मनोदशा का बोध होता है। परिणाम के नियम से चेतना की गन्ध आती है अतः वाटसन ने इस नियम को अस्वीकृत कर दिया। व्यवहारवादियो ने परिणाम के नियम को अभ्यास के नियम मे ही सम्मिलित करने का प्रयास किया। सीखने के सम्बन्ध मे वाटसन ने अभ्यास के नियम को लाभप्रद बताया। जन्म के समय शिशु मे अनेक प्रतिक्रियाएँ रहती हैं। वह अपने अगो को इधर उधर चलाता है; उसके शरीर की मास-पेशियाँ फैलती और सिकुड़ती रहती है। शिशु ने केवल शारीरिक गतियो को ही जन्म से पाया है। बुद्धि, विशेष-योग्यता आदि को उसने वशानुक्रम से नही प्राप्त किया। मूल-प्रवृत्ति भी जन्मजात नही है। वाटसन वशानुक्रम पर अधिक विश्वास नही करता और वह वातावरण का पक्षपाती है। वाटसन के अनुसार मूल-प्रवृत्तियाँ भी सीखने के परिणाम

हैं। सीखने का प्रारम्भिक रूप सम्बन्धीकरण ही है। प्रारम्भिक सरल प्रतिक्रियाओ को ही शनैः शनै. सम्बन्धीकृत बनाते हुये बालक जटिल प्रतिक्रियाएँ करने लगता है। इस कार्य मे वृद्धि एवं प्रौढता भी सहायता करती है। सवेग भी सीखने के परिणाम है। नवजात शिशु मे केवल तीन संवेग होते हैं। ये तीन सवेग क्रोध, भय एव प्रेम है। हम यह कह सकते हैं कि केवल ये ही तीन सवेग सीखने के पूर्व रहते हैं। इन तीनो सवेगो का सम्बन्ध मन से नहीं है। ये तो शारीरिक प्रतिक्रियाएँ हैं। साधारण शारीरिक प्रतिक्रियाओ से सवेगात्मक प्रतिक्रियाओ मे केवल एक भिन्नता है। वह भिन्नता यह है कि सवेग शरीर के आन्तरिक अवयवो द्वारा उद्बुद्ध होते हैं। शरीर के अन्दर की ग्रन्थियो के सचालन से सवेग उद्भूत हो जाते हैं। उपर्युक्त तीनो सवेगो के सम्बन्धीकरण द्वारा ही अन्य सवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं। जिस प्रकार व्यक्ति अन्य प्रतिक्रियाएं सीखता है उसी प्रकार सवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ भी सीखता है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति हारमोनियम बजाना सीखता है तो उसकी मास-पेशियो मे परिवर्तन हो जाता है ठीक उसी प्रकार सवेगात्मक प्रतिक्रियाओ मे आन्तरिक अवयवो के कार्यो में परिवर्तन होता है। सीखने का हम उत्तेजना-प्रतिक्रिया के रूप मे विश्लेषण कर सकते हैं। सीखने मे किसी चेतनापूर्ण अनुभव का आरोप करना ठीक नही है। सन्तोष, आनन्द आदि पद व्यर्थ है। सीखना मूलत एक भौतिक एव यान्त्रिक प्रक्रिया है।

जिस प्रकार हमारी अन्य आदतो का विकास होता है उसी प्रकार चिन्तन का भी भौतिक रूप मे विकास होता है। चिन्तन से किसी आध्यात्मिक या मानसिक पद का व्यवहारवादी को बोध नही होता। चिन्तन भी एक प्रकार का बोधात्मक एव क्रियात्मक व्यवहार है। किन्तु चिन्तन का बाह्य निरीक्षण सम्भव नही है। अत. वाटसन इसके लिए अन्तर्भूत व्यवहार (Implicit Behaviour) पद का प्रयोग करता है। चिन्तन मे अन्तर्भूत वाणी रहती है। शिशु तथा बालक बोलकर सोचते हैं। बोलना बाह्य व्यवहार है। किन्तु जब मन मे ही बोला जाता है तो वह बोलना अन्तर्भूत व्यवहार है। चिन्तन मे हम अन्दर ही अन्दर बोलते चलते हैं। जब व्यक्ति सोचता है तो वह

अन्तर्भूत वाणी का प्रयोग करता है और अन्दर ही अन्दर शाब्दिक प्रतिक्रियाएं करता चलता है। चिन्तन का यही सीधा-सा अर्थ है। बाह्य क्रियाओ के साथ-साथ भी अन्तर्भूत शाब्दिक क्रिया चलती रहती है। यदि ध्यान से देखा जाय तो यह विदित होता है कि अन्तर्भूत शाब्दिक क्रिया ही बाह्यक्रियाओ का पथ-प्रदर्शन करती चलती है। जब हम कोई कार्य करते हैं तो उस कार्य के विषय मे हम अन्दर ही अन्दर शाब्दिक क्रिया करते हैं। बाह्य क्रिया अन्तर्भूत शाब्दिक क्रिया के रूप में आ जाती है जिससे हमे बाह्य क्रिया को पुनर्व्यवस्थित अथवा संशोधित करने मे सहायता मिलती है। इसी प्रक्रिया को हम कह देते हैं कि अमुक विषय पर हम चिन्तन कर रहे हैं। संवेगात्मक प्रतिक्रिया के समय अन्तर्भूत शाब्दिक प्रतिक्रिया नही होती है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि अन्तर्भूत शाब्दिक क्रिया बाह्य क्रिया को नियन्त्रित करती चलती है किन्तु संवेगात्मक प्रतिक्रिया के समय शाब्दिक क्रिया की अनुपस्थिति के कारण प्राणी का व्यवहार अनियन्त्रित हो उठता है। उस समय चिन्तन नाम की कोई प्रतिक्रिया नही होती है। शैशव मे भी व्यक्ति का व्यवहार अनियन्त्रित होता है क्योकि शिशु की बाह्य प्रतिक्रियाओ के साथ साथ शाब्दिक प्रतिक्रिया नही चलती। शाब्दिक प्रतिक्रिया के लिए भाषा का ज्ञान आवश्यक है। शिशु का भाषा-ज्ञान नगण्य होता है इसीलिए उसके व्यवहार मे अन्तर्भूत वाणी का अभाव होता है; दूसरे शब्दो मे, उसमे चिन्तन का अभाव होता है। धीरे-धीरे ज्यो ज्यो वह शब्दो का ज्ञान प्राप्त करता है त्यो त्यो वह बाह्य क्रियाओ के साथ-साथ बोलना भी प्रारम्भ कर देता है, और अधिक विकास करने पर वह अन्दर ही अन्दर बोलने लगता है। प्रारम्भ मे शिशु बोलकर सोचता है, बाद मे वह अन्दर ही अन्दर बोलता है।

वाटसन ने शिशु मे चिन्तन के विकास का अध्ययन बडी लगन से किया है। शिशु प्रारम्भ मे तुतला कर केवल "आ-आ" करता है। शिशु की कुछ ध्वनियाँ शिशु के कल्याण के लिए होती हैं और कुछ निरर्थक। जिन ध्वनियो से शिशु की आवश्यकताएँ पूरी करने मे प्रौढ़ तत्पर हो जाते है, बालक उन ध्वनियो की आवृत्ति

करता रहता है और निरर्थक ध्वनियाँ धीरे-धीरे अप्रयुक्त होती जाती हैं। इस प्रकार त्रुटि एव प्रयास से बालक कुछ ऐसी ध्वनियो का विकास कर लेता है जो किसी सार्थक शब्द की प्रतिनिधि के रूप मे कार्य करती हैं। बालक के इस सीखने मे वही सिद्धान्त काम करता है जो पशु के सीखने मे काम करता है। बाद मे बालक पूरे शब्द को कहना सीख जाता है। ध्वनि से शब्द का सीखना भी त्रुटि एव प्रयास के अनुसार ही होता है। शिशु किसी शब्द को बार बार उच्चारण करता है और जब तक वह सही उच्चारण नही कर लेता तब तक सीखता ही रहता है। मान लीजिए शिशु प्रारभ मे "पा-पा-पा" कहता है। इस ध्वनि से माता-पिता उसे पानी देते हैं। बालक इस ध्वनि को सार्थक समझ लेता है। बाद मे वह "पारी" शब्द का उच्चारण करता है। इस शब्द से उसे माता-पिता चाहे पानी दे ही दे किन्तु अन्य व्यक्ति उसकी प्यास की आवश्यकता की पूर्ति नही कर सकते है; शिशु पुन. पाली कहता है किन्तु अभी भी उसको आवश्यकता की पूर्ति नही होती। इसी प्रकार त्रुटि एव प्रयास से वह पानी कहना सीख जाता है। चिन्तन मे शब्द मुख्य होता है। शिशु इस प्रकार शब्द सीख लेता है। धीरे-धीरे बालक शब्दो को अन्य प्रकार के व्यवहार से सम्बद्ध कर लेता है और उस व्यवहार के समय उन शब्दो को दुहराता रहता है। बालक कोई क्रिया करते समय बोलता रहता है। बाद मे सामाजिक वातावरण का बालक पर प्रभाव पडता है और इस प्रभाव के अधीन वह जोर-जोर से बोलने की अपेक्षा फुस-फुस करके धीरे-धीरे बोलता है। कालान्तर मे चलकर वह फुसफुसाना भी बन्द कर देता है और अन्दर ही अन्दर बोलने लगता है। सभी परिस्थितियो मे भाषा के वही अवयव काम करते रहते हैं। वाटसन कहता है यह अन्तर्भूत वाणी ही चिन्तन कहलाती है। वाटसन को चिन्तन के समय किसी विचार का अस्तित्व नही दिखाई पडता है। चिन्तन मे केवल शब्द ही अन्तर्भूत रूप मे दिखाई पड़ते है जिन्हे गलती से विचार कहा जाता है। किन्तु चिन्तन के कुछ ऐसे भी रूप होते हैं जिनमे शाब्दिक क्रिया नहीं होती। चिन्तन के इन रूपो को भी व्यवहारवादी सकेत, हाथ की गति, पैरो की गति, गर्दन, आँखें एव अन्य अगो की गति से समझाता हैं।

मनुष्य का सभी प्रकार का व्यवहार प्रतिक्रियाओ के रूप मे होता है। ये प्रतिक्रियाएँ चाहे शाब्दिक हो, चाहे आन्तरिक अवयव की प्रतिक्रियाएँ हो, चाहे बाह्य शारीरिक क्रियाएँ हो, किन्तु है वे सभी प्रतिक्रियाएँ ही। इन सभी प्रतिक्रियाओ के समन्वित रूप को ही व्यक्तित्व कहते है। व्यक्तित्व कोई गूढ पदार्थ नही है। व्यक्तित्व से किसी रहस्यमय वस्तु का बोध नही होता। प्रायः लोग कह बैठते है व्यक्तित्व एक ऐसा प्रत्यय है जो अध्यात्मशास्त्रीय परिभाषा मे आता है। किन्तु व्यवहारवादी के लिए व्यक्तित्व मे किसी अध्यात्मशास्त्रीय भावना की गुंजाइश नही है। व्यवहारवादी की दृष्टि मे प्रतिक्रियाओ का सगठन ही व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व से व्यक्ति की सभी प्रतिक्रियाओ एव प्रतिक्रियाओ की प्रवत्तियो का बोध होता है। व्यक्तित्व का अध्ययन वस्तुनिष्ठ पद्धति से किया जा सकता है। किसी के व्यक्तित्व का अध्ययन करने मे हम उस व्यक्ति की शिक्षा, निष्पत्ति, अभिवृत्ति, आदत, ईहा, सवेग आदि का अध्ययन करते हैं। इन सभी बातो का अध्ययन वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक पद्धतियो से किया जाता है। व्यक्तित्व कोई स्थायी वस्तु नही है जिसका एक बार अध्ययन करके व्यक्ति के विषय मे पूरी सूचना प्राप्त की जा सके। व्यक्तित्व बदलता रहता है। व्यक्ति की प्रतिक्रियाओ मे तथा प्रतिक्रियाओ की प्रवृत्तियों मे जैसे-जैसे परिवर्तन होता जाता है, व्यक्तित्व भी वैसे ही परिवर्तित होता चलता है। व्यक्तित्व के निर्माण मे भी सम्बन्धीकरण की ही प्रक्रिया काम करती है। कुछ सीमित प्रतिक्रियाओ के सहारे व्यक्ति अन्य प्रतिक्रियाएँ सीख जाता है। इन सभी प्रतिक्रियाओ से ही उसका व्यक्तित्व बनता है।

व्यवहारवाद मे कोरा सिद्धान्तवाद नही है। व्यवहारवादी व्यावहारिक जगत की गुत्थियो को सुलझाने मे बडी रुचि दिखाता है। विशुद्ध विज्ञान मे कभी-कभी व्यवहृत विज्ञान की अवहेलना दिखाई पडती है किन्तु व्यवहारवाद व्यवहृत मनोविज्ञान को बड़ी आदर की दृष्टि से देखता है। व्यवहारवादी जीवन के मूल्यो को महत्त्व देता है यद्यपि ये मूल्य नितान्त भौतिकवादी ही होते हैं। वाटसन ने मनोवैज्ञानिक तथ्यो का अध्ययन केवल शास्त्रीय दृष्टि से नही किया वरन् जीवन के विविध क्षेत्रो मे उनका उपयोग करने का प्रयत्न किया।

इस दृष्टिकोण से व्यवहारवाद ने विशुद्ध मनोविज्ञान बनने का दम्भ नहीं किया और इसे हम सरलता से व्यवहृत मनोविज्ञान की सज्ञा दे सकते है। व्यवहारवाद ने मानव के व्यवहार का अध्ययन मानव वर्ग की सुख-सुविधा के लिए किया।

यदि मानव-मात्र का कल्याण करना है और यदि मनुष्य की सुख-सुविधा मे वृद्धि करनी है तो मनुष्य के व्यवहार का नियन्त्रण आवश्यक है। व्यवहार का अध्ययन व उसका नियन्त्रण शैशव मे बडी सरलता से किया जा सकता है। प्रौढों मे तो व्यवहार बड़ा जटिल हो जाता है। इस प्रकार वाटसन ने शैशव को अधिक महत्व दिया। शैशव मे व्यवहार निर्माणावस्था मे रहता है और सम्बन्धीकरण की प्रारम्भिक अवस्था रहती है। अत शैशव मे व्यवहार का स्पष्ट रूप से अध्ययन किया जा सकता है। छः वर्ष की अवस्था के पूर्व ही व्यक्ति के भावी जीवन की आधारशिला रख जाती है। शैशव मे ही व्यक्ति समार के प्रति किसी अभिवृत्ति का विकास कर लेता है। शिशु मे आदतो का निर्माण प्रारम्भ मे ही हो जाता है। वह प्रतिक्षण सीखता ही रहता है। दूसरे शब्दो मे, व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण भाग शैशव मे ही बन जाता है। वाटसन ने शैशव को विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सोपान माना है। उसने शिशु की प्रतिक्रियाओ के सम्बन्ध मे कई अन्वेषण भी किए और इन अन्वेषणो के आधार पर एक पुस्तक भी लिखी।[1]

शिशुओ की प्रतिक्रियाओ का अध्ययन करते-करते वाटसन का विश्वास वशानुक्रम से अधिक वातावरण मे हो गया। वशानुक्रम को मान्यता देना व्यवहार के विरुद्ध भी पड़ता था इसीलिए वाटसन ने वशानुक्रम को तिरस्कृत किया। वाटसन के समय के अधिकाश मनोवैज्ञानिक सवेगो और मूलप्रवृत्तियो को वशानुक्रम की देन मानते थे। वाटसन ने सन १९१९ मे जब अपनी पुस्तक 'व्यवहारवादी की दृष्टि मे मनोविज्ञान'[2] की रचना की तब उसने भी सवेग व मूल-

[1] *The Psychological Care of the Infant and Child*
[2] *Psychology from the Standpoint of a Behaviorist*

प्रवृत्ति को वंशानुक्रम से प्राप्त माना किन्तु उसने केवल तीन ही सवेगो[1] को जन्मजात माना और मूल प्रवृत्तियो के रूप में केवल कुछ प्रारंभिक शारीरिक गतियों को मान्यता दी। इस पुस्तक के प्रणयन के पश्चात् मनोवैज्ञानिक जगत् मे मूलप्रवृत्तियो पर कुछ विद्वानो ने अनेक शकाएँ व्यक्त की। श्री क्यूओ[2] महोदय ने तो यहाँ तक कहा कि मूलप्रवृत्ति के विचार मे आध्यात्मिकता निहित हैं अतः मूलप्रवृत्तियो को मनोविज्ञान मे शामिल करना ठीक नही है। वाटसन ने अपनी सन १९१९ की पुस्तक मे मूलप्रवृत्तियो को माना था किन्तु वाद मे उसे पता चला कि यह उसकी भूल थी इसलिए उसने अपनी दूसरी पुस्तक "व्यवहारवाद"[3] मे मूलप्रवृत्तियो को तिलाञ्जलि दे दी। इस पुस्तक मे वाटसन ने उन सभी बातो का तिरस्कार किया जिनमे वशानुक्रम की भावना निहित थी। वाटसन ने वातावरण को ही सर्वोपरि माना। उसने इस बात का दावा किया कि यदि उसे कुछ नवजात शिशु दे दिये जायें तो वह उपयुक्त वातावरण देकर उन शिशुओ को वकील, डाक्टर, व्यवसायी, अध्यापक आदि बना सकता है। कोई भो बालक वातावरण के प्रभाव से सज्जन या दुर्जन, महान पुरुप या चोर, डाकू वन सकता है। बालक के इस प्रकार के विकास मे किसी मानसिक शक्ति का हाथ नही है, कोई जन्मजात मेधा या रुझान नही है और न ही इसमे उसके पूर्वजो की योग्यता का हाथ है। वाटसन ने वशानुक्रम की अवहेलना करके वातावरण को इतना अधिक महत्व दिया कि वातावरणवाद उसके सिद्धान्त का अभिन्न अग बन गया। यद्यपि यह आवश्यक नही है कि व्यवहारवादी सदा वातावरणवादी हो, तथापि अधिकाश व्यवहारवादी वातावरण के समर्थक हैं। व्यवहारवाद और वातावरणवाद मे अन्योन्याश्रित सम्बन्ध नही है फिर भी वाटसन ने वशानुक्रम पर प्रहार करना एक पुण्य कार्य समझा।

व्यवहारवाद का जन्मदाता वाटसन था और दो दशाब्दियो तक वह मनोविज्ञान के व्योम मे छाया रहा। किन्तु उसके

[1] Fear, rage and love [2] Z A. Kuo

[3] *Bahaviorism*

समय में ही कुछ अन्य मनोवैज्ञानिको ने भी व्यवहारवाद से मिलते-जुलते विचार अपनाए। कुछ तो पूर्णरूप से वाटसन के अनुयायी थे और कुछ वाटसन के कुछ विचारो से सहमत थे तो कुछ की ओर वे उदासीन भाव रखते थे। मैक्स मेयर[1] प्रारभ से ही व्यवहारवादी कहे जाते थे। मेयर ने सन् १९११ मे ही एक पुस्तक प्रकाशित करके चेतना के मनोविज्ञान से अपनी असहमति प्रकट की थी और कहा था कि अन्तर्दर्शन की पद्धति अनुभवों के कार्यों को जानने के लिए प्रयुक्त की जानी चाहिए। सन् १९२१ मे उसने एक पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक है "दूसरे का मनोविज्ञान"[2]। इसमे उसने यह दर्शाया कि मनोविज्ञान अपना अर्थात् आत्म-निरीक्षण का मनोविज्ञान न होकर दूसरे का अर्थात किसी अन्य व्यक्ति के वस्तुनिष्ठ निरीक्षण का मनोविज्ञान है। मेयर के शिष्य अलवर्ट वीस[3] ने बाल-मनोविज्ञान के क्षेत्र मे कई प्रयोग किये। वह मनोविज्ञान को भौतिकी के तुल्य एक प्राकृतिक विज्ञान बनाना चाहता था। उसका मत था कि मनोविज्ञान मे भौतिकी के समान मूल तत्व एलेक्ट्रोन और प्रोटोन ही हैं। वाल्टर हण्टर[4] भी एक प्रसिद्ध व्यवहारवादी कहे जाते हैं। हण्टर को प्रयोगात्मक मनोविज्ञान मे बडी रुचि थी और उसने सीखने के ऊपर कई प्रयोग किए। उसके "विलम्बीकृत प्रतिक्रिया" और "सासारिक भूलभुलैया" नामक प्रत्यय बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। हण्टर ने सरचनावाद का बहुत कड़े शब्दो मे विरोध किया है।

व्यवहारवाद ने अन्वेषण की वस्तुनिष्ठ पद्धति का महत्व बढा दिया और अनेक मनोवैज्ञानिको ने इस पद्धति को अपनाया। इस सन्दर्भ मे ऊपर कुछ नाम आये हैं। इसी सम्बन्ध मे लैशले[5] का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। लैशले वाटसन का शिष्य था और उसने सीखने मे भेजे की क्रिया के सम्बन्ध मे कई प्रयोग

[1] Max Meyer
[2] *The Psychology of the Other One*
[3] Albert P. Weiss.
[4] Walter S. Hunter
[5] K. S. Lashley

किये। शरीर विज्ञान की खोजो से यह पता लगा था कि विभिन्न प्रकार की सवेदनाओ के लिए भेजे मे एक निश्चित क्षेत्र होता है। उदाहरण के लिए देखने, सुनने, सूँघने आदि के लिए भेजे मे श्रवण-केन्द्र, दृष्टि-केन्द्र, गन्ध-केन्द्र आदि निश्चित हैं और यही से इन सवेदनाओ का नियत्रण होता है। लेकिन कुछ ही केन्द्रो का पता चल सका था और अनेक कार्यों के लिए भेजे मे निश्चित स्थान अज्ञात था। लैशले ने सोचा कि प्रत्येक सीखे हुये व्यवहार का कोई केन्द्र होना चाहिये और इसी वात को ज्ञात करने के लिये उसने वडी मेहनत से कई प्रयोग किये। जिस आशा से लैशले ने प्रयोग आरम्भ किये थे वह आशा पूरी न हुई और वह भिन्न परिणाम पर पहुँचा। उसने अपने प्रयोगो मे चूहो का प्रयोग किया। वह पहले कुछ चूहो के कार्यो को निश्चित परिस्थिति मे देख लेता था, वाद मे उन चूहो के भेजे का कुछ भाग नष्ट कर देता था, और आपरेशन के पश्चात इन चूहो के कार्यों को पुन. दखता था और इस प्रकार पहले के कार्यों से बाद के कार्यो की तुलना करके निष्कर्ष निकालता था। लैशले ने देखा कि भेजे का एक निश्चित भाग किसी विशेष क्रिया से सम्बन्धित नही है। अत. उसने निष्कर्ष निकाला कि कार्य का निश्चित केन्द्र ज्ञात करना ठीक नही है क्योकि प्रत्येक कार्य का एक निश्चित स्थान होता ही नही है। भेजे मे भूरे रग का पदार्थ जितना ही अधिक होगा, सीखने मे उतनी ही सुविधा होगी और भेजे का एक भाग दूसरे भाग के समान ही सीखने की क्षमता रखता है। लैशले ने देखा कि नाडी-मण्डल के क्षेत्र मे भी पुराने विचारो को बदलना पडेगा। पहले यह कहा जाता था कि स्नायविक उत्तेजना निश्चित रास्ता वनाकर एक ओर प्रवाहित होती है किन्तु लैशले ने कहा ऐसा कोई निर्विवाद नियम प्रयोगो से सिद्ध नही होता। यदि स्नायविक उत्तेजना के एक मार्ग को नष्ट कर दिया जाता है तो उसके कार्य को नाड़ी-मण्डल के दूसरे भाग सँभाल लेते है। लैशले कहता है कि भेजा एक समन्वित रूप मे कार्य करता है और इसके किसी भाग मे चोट आ जाने से सम्पूर्ण व्यवहार मे गडबडी आ जाती है। इस नियम का अपवाद केवल दृष्टि प्रत्यक्षीकरण है क्योकि दृष्टि-प्रत्यक्षीकरण भेजे के पिछले भाग

से ही होता है। लैशले के प्रयोगो ने वाटसन के भी कुछ विचारो को महत्वहीन कर दिया। वाटसन यह मानता था कि व्यवहार धीरे-धीरे खण्डश. उत्तेजना और प्रतिक्रिया द्वारा निर्मित होता है; लैशले ने इस सिद्धान्त को अमान्य घोषित किया। फिर भी लैशले ने वाटसन की पद्धति को बडे सम्मान की दृष्टि से देखा और उसने सदा वस्तुनिष्ठ पद्धति को ही अध्ययन की उचित पद्धति माना।

व्यवहारवाद को टॉलमन[1] के प्रयोगो से बड़ा बल मिला। किन्तु टॉलमन का व्यवहारवाद वाटसन के व्यवहारवाद से कुछ भिन्न हो गया है। टॉलमन ने सन् १९३२ मे एक पुस्तक[2] लिख कर अपने ढग के व्यवहारवाद की व्याख्या की। उसके मत को "सोद्देश्य व्यवहारवाद"[3] कहा जाता है। वाटसन ने उद्देश्य को मानसिक प्रत्यय कहकर तिरस्कृत किया था किन्तु टॉलमन ने व्यवहार मे वस्तुनिष्ठ उद्देश्य को अनिवार्य बताया। व्यवहार की परिभाषा करने मे वाटसन ने कुछ अनिश्चयात्मक बात कही थी। उसने व्यवहार के भौतिक आधार का विश्लेषण किया था किन्तु इससे किसी व्यवहार के स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश नही पडता था। व्यवहार मे उत्तेजना अथवा प्रतिक्रिया अपने आप मे महत्वपूर्ण नही है। उत्तेजना किस प्रकार प्रतिक्रिया को जन्म देती है और प्रतिक्रिया किस प्रकार उत्तेजना मे परिवर्तन ला देती है, महत्व की बात तो यह है। व्यवहार का सदा आदि और अन्त हुआ करता है। व्यवहार के एक भाग के रूप मे कोई भी प्रतिक्रिया किसी परिस्थिति के कारण उत्पन्न होती है और पुन वह परिस्थिति मे परिवर्तन करके समाप्त हो जाती है। किसी व्यवहार की पूरी प्रक्रिया मे कई सोपान हो सकते हैं किन्तु पूरा व्यवहार किसी उद्देश्य की ओर अभिमुख होता है। व्यवहार के परिणाम की ओर की प्रवृत्ति को सवेग कहते है। पशु त्रुटि और

[1] Edward Chace Tolman

[2] *Purposive Behavior in Animals and Men*

[3] Purposive Behaviorism

प्रयास से सीखता है। इस सीखने में भी पशु के आचरण का कोई उद्देश्य होता है। भूलभुलैया में वह उद्देश्य की ओर का मार्ग ही तो सीखता है। पशु में यदि चेतना न मानी जाय तो उसके व्यवहार में उद्देश्य कैसे माना जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए टॉलमन कहता है कि पशु उद्देश्य के प्रति क्या अनुभव करता है इससे उसका कोई मतलब नहीं है। मनुष्य के व्यवहार में भी उद्देश्य तो वस्तुनिष्ठ रूप से दिखाई पड़ता है किन्तु मनुष्य क्या अनुभव करता है इससे कोई प्रयोजन नहीं है। स्पष्ट है कि टॉलमन की इस मान्यता का अन्तर्दर्शनवादी तथा व्यवहारवादी दोनों ने ही प्रारम्भ में विरोध किया। टॉलमन का कथन था कि प्रयोगकर्ता का कार्य यह है कि वह देखे कि व्यक्तिविशेष परिस्थितिविशेष के प्रति क्या प्रतिक्रिया करता है। प्रयोगकर्ता परिस्थिति को पहले से ही जानता रहता है और व्यक्ति के विषय में भी कुछ जानकारी रखता है। वह व्यक्ति की आयु वंशपरम्परा आदि को जानता रहता है। प्रयोगकर्ता परिस्थिति को जानता है अतः परिस्थिति में परिवर्तन कर सकता है। वह इस बात का भी ध्यान रख सकता है कि एक निश्चित आयु के व्यक्तियों पर ही प्रयोग किया जाय। बाद में वह भिन्न आयु के, वंश परम्परा के या पूर्वानुभव के व्यक्तियों का चुनाव कर सकता है। इस प्रकार अनेक प्रयोग किये जा सकते हैं और इन प्रयोगों में परिस्थिति, आयु, वंश-परम्परा आदि बातों को परिवर्तित किया जा सकता है। जिस बात को प्रयोग में परिवर्तित करते हैं उसे "प्रयोगात्मक विचलन"[1] कहते हैं। इसे 'स्वतन्त्र विचलन'[2] भी कहते हैं। इस परिवर्तन से जो व्यवहार सामने आएगा उसे "व्यवहार विचलन या परतन्त्र विचलन'[3] की संज्ञा दी जाती है।

टॉलमन ही पहला व्यक्ति है जिसने इतने स्पष्ट रूप में "अन्तःस्थ विचलन"[4] की विवेचना की है। किसी प्रयोग में उद्दीपक

1 Experimental Variable 2 Independent Variable
3 Behavior or Dependent Variable
4 Intervening Variable

एव प्रतिक्रिया के बीच मे या यो कहिए कि परिस्थिति और व्यक्ति के व्यवहार के मध्य मे जो प्रभावक तत्व परिवर्तनशील होते हैं उन्हे अन्त स्थ विचलन कहते है। उपर्युक्त प्रयोगात्मक एवं व्यवहार विचलनो के मध्य मे अन्त स्थ विचलन होता है। प्रयोगकर्त्ता विभिन्न प्रयोगात्मक दशाओ मे व्यवहार का निरीक्षण करता है और व्यवहार विचलन तथा प्रयोगात्मक विचलन मे सम्बन्ध ढूँढने का प्रयत्न करता रहता है। टॉलमन कहता है कि व्यवहार का अध्ययन करने के लिए परिस्थिति के विचलन और वश परम्परा, आयु आदि के विचलन की आवृत्ति का ज्ञान आवश्यक है क्योकि इन्ही विचलनो पर व्यवहार निर्भर है। परिस्थिति और प्रतिक्रिया के बीच मे 'अन्त स्थ विचलन' होता है। परिस्थिति मे परिवतर्न से अन्त.स्थ विचलन होता है और अन्तस्थ विचलन से 'व्यवहार विचलन' की उत्पत्ति होती है। हम इस स्थल पर प्यास का उदाहरण ले सकते हैं। प्यास सम्बन्धी व्यवहार का पता लगाने के लिए पहले हम परिस्थिति देखेंगे। पानी व्यक्ति ने कब से नही पिया और उसने किस प्रकार का भोजन किया था इसे हम प्रयोगात्मक विचलन के अन्तर्गत लेंगे। पानी मिलने पर व्यक्ति पानी शीघ्र पीता है। वह कितना पानी पीता है इस प्रतिक्रिया को व्यवहार विचलन मे लेंगे। व्यक्ति की उम्र, उसका स्वास्थ्य आदि अन्त.स्थ विचलन कहे जा सकते है।

टॉलमन बड़ी सूझ-बूझ का व्यक्ति था। उसने व्यवहारवाद मे अपना सशोधन प्रस्तुत कर दिया फिर भी वह व्यवहार के विज्ञान को ही श्रेष्ठ विज्ञान समझता रहा। उसने थार्नडाइक, पावलोव आदि साहचर्य्यवादियो का कडा विरोध किया। वह सदा अपने को व्यवहारवादी ही समझता रहा। नि सन्देह उसके 'अन्तःस्थ विचलन' के सिद्धान्त ने प्रयोगात्मक पद्धति की स्पष्ट दिशा निश्चित कर दी।

हल[1] महोदय भी व्यवहारवादी थे किन्तु वे पशु-मनोविज्ञान के मार्ग से व्यवहारवाद मे नही आये। प्रारम्भ मे हल पूर्ण

[1] Clark L. Hull

रूप से व्यवहारवादी नही थे और वे चेतना, प्रतिमा आदि मानसिक प्रत्ययो का निस्संकोच प्रयोग करते थे। किन्तु उनके अन्वेषण—कार्य मे वस्तुनिष्ठ पद्धति का ही प्रयोग किया गया था। हल ने रुझान-परीक्षणो से अपना कार्य प्रारम्भ किया था। साख्यिकीय पद्धति मे उनकी विशेष रुचि थी। उन्होने सम्मोहन तथा सकेत-ग्राहकता पर भी कई प्रयोग किये थे। हल सदा इस चिन्ता मे रहते थे कि व्यवहार का कोई निश्चित नियम निकल आये। हल चाहते थे कि व्यवहार को ज्यामिति के साध्यो की तरह समझने के लिये प्रारम्भ मे कुछ परिकल्पनाओ तथा स्वय-सिद्धियो को स्वीकार करके इन्ही के आधार पर तार्किक निष्कर्ष निकाले जायँ। मनोविज्ञान मे ज्यामिति की भाँति स्वय सिद्धियाँ नही मिल सकती अत प्रारम्भिक परिकल्पनाओं की भी परीक्षा करनी होगी। हल टॉलमन के कार्यो के प्रशसक हैं और उन्होने पावलोव के सम्बन्धीकरण के नियम का भी अधिकाधिक प्रयोग किया है। फिर भी हल पावलोव के अनुयायी नही कहे जा सकते है। हल अपने को व्यवहारवादी कहने मे सकोच करते है और अपने मत को वह वस्तुनिष्ठ मत अथवा प्रकृतिवादी मत कहना अधिक पसन्द करते हैं। किन्तु अन्तर्दर्शन के वे भी विरोधी हैं और थार्नडाइक के 'परिणाम के नियम' के स्थान मे आवश्यकता की पूर्ति पर अधिक बल देते है। अतः उन्हे व्यवहारवादी कहना अधिक न्यायसङ्गत लगता है।

अन्त मे हम स्किनर[1] के मत पर आते हैं जिसकी गणना आज के प्रसिद्ध व्यवहारवादियो मे की जाती है। स्किनर ने प्रयोगात्मक पद्धति को अधिकाधिक स्पष्ट बनाना प्रारम्भ किया। उसने कहा कि प्रयोगकर्त्ता का प्रमुख कार्य यह है कि वह उद्दीपक प्रदान कर दे और उस उद्दीपक के प्रति प्राणी की प्रतिक्रिया को जान ले। उद्दीपक और प्रतिक्रिया के सम्बन्ध के आधार पर व्यवहार की व्याख्या की जा सकती है। मनोवैज्ञानिक का कार्य बाह्य व्यवहार का अध्ययन करना है न कि व्यवहार की आन्तरिक रचना का ज्ञान प्राप्त करना है। इस प्रकार स्किनर ने व्यवहार के अध्ययन मे वैयूह[2]

[1] Burrhus Frederic Skinner [2] Molar

दृष्टिकोण का समर्थन किया। स्किनर कहता है कि प्रयोगात्मक विचलनों पर व्यवहार कहाँ तक निर्भर है इसी बात का पता लगाना, मनोवैज्ञानिक का कार्य है। उद्दीपक, एवं अन्य अनेक दशाओं पर प्रयोगकर्ता नियन्त्रण स्थापित कर सकता है और वह यह देख सकता है कि प्राणी की प्रतिक्रिया उद्दीपक पर निर्भर है या प्रयोगात्मक विचलन पर।

स्किनर ने एक विशेष प्रकार की समस्या-मञ्जूषा[1] का निर्माण किया जिसे प्राय स्किनर-मजूषा कहा जाता है। उसने समस्या-मजूषा के आधार पर सीखने पर कुछ प्रयोग किये। इन प्रयोगों के विषय मे साहचर्य्यवाद के अध्ययन मे वर्णन किया जा चुका है।

स्किनर के मत को मौलिक सकार्यवाद[2] कहा जा सकता है। संकार्यवाद का प्रत्यय भौतिकी से आया है। भौतिकी मे इसका सम्बन्ध वैज्ञानिक प्रत्ययो के अर्थ से है। किसी वैज्ञानिक पद का अर्थ घटना या द्रव्य के मापने के कार्य से लगाया जाता है। किसी वैज्ञानिक पद को सकार्यों से पृथक् नही समझा जाता। लम्बाई को लम्बाई नापने के सकार्यों का समानार्थक समझा जाता है। भौतिकी मे प्रयुक्त सकार्यवाद मनोवैज्ञानिको को जँचा और उन्होने इसे मनोविज्ञान मे भी प्रयुक्त किया। मनोवैज्ञानिक पदो के अर्थ के विषय मे वडा भ्रम छाया हुआ था। लोग किसी निश्चित दिशा की खोज मे लगे थे। यह दिशा सकार्यवाद ने प्रदान कर दी। कुछ लोग मनोवैज्ञानिक पदो का अर्थ उनके कार्यों से लेने लगे। स्किनर ने इसका प्रवल समथन किया। स्किनर अपने को संकार्यवादी कहने मे गर्व अनुभव करता है। उसने सकार्यवाद के चार आवश्यक तत्व वताए। संकार्यवाद मे किसी के द्वारा किया गया निरीक्षण निहित है। दूसरे, निरीक्षण करने मे माध्यकीय कार्य, तीसरे, पूर्व एव पश्चात् के वर्णनो के मध्य मे आए तार्किक एव गणनात्मक सोपान भी मुख्य हैं। चौथी वात विशेष महत्व की है और वह है उपर्युक्त तीनो के अतिरिक्त 'कुछ नही'।

[1] Puzzle--Box [2] Radical Operationism

यदि हम यह मानलें कि जिस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का हम अध्ययन करने जा रहे हैं वह वही है जिसका हम अध्ययन करने जा रहे हैं तो हम गोलमोल शब्दो मे उस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का अर्थ तो दे दिये लेकिन समस्या का उपयुक्त समाधान न प्राप्त कर सके। स्मृति वह है जिसे हम नापने जा रहे हैं, बुद्धि वह है जिस पर हम परीक्षण करने जा रहे हैं आदि विचार तर्कसगत नही मालूम होते। हम बिना किसी धारणा के किसे नापने चलेंगे ? यदि कोई परिकल्पना या धारणा पहले से है तो उसकी समीक्षा भी आवश्यक है। सकार्यवाद इस तथ्य की ओर आँख मूँद लेता है।

अब तक व्यवहारवाद एव उसके विभिन्न रूपो पर विचार किया गया है। इसके आगे सक्षेप मे व्यवहारवाद की समीक्षा की जायगी।

व्यवहारवाद ने मन और शरीर के द्वैत को समाप्त करने की चेष्टा की। इस प्रयत्न मे वाटसन ने चेतना और मन के अस्तित्व से इकार किया। किन्तु चेतना या मन के अस्तित्व को इकार करके केवल शरीर के अस्तित्व को स्वीकार करने मे वाटसन ने उसी प्रकार की भूल की जिस प्रकार प्रत्ययवादी ने केवल प्रत्ययो के जगत् को स्वीकार और भौतिक जगत् को अस्वीकार करके की।

व्यवहारवादी कहता है कि केवल व्यवहारवाद ही वैज्ञानिक मनोविज्ञान है, शेष काल्पनिक मनोविज्ञान कहलायेगा किन्तु वह यह भूल जाता है कि विज्ञान मे जिन पदो का प्रयोग किया जाता है उन्हे तब तक वैध नही माना जाता जब तक कि प्रदत्तो के आधार पर उनकी परीक्षा नही कर ली जाती है। व्यवहारवादी विज्ञान की इस न्यूनतम योग्यता को भी नही पूरा करता और वह पुद्गल के आध्यात्मिक प्रत्यय को बिना परीक्षण के ही स्वीकार कर लेता है और उसी के आधार पर मनोविज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र मे निर्णय दे देता है।

व्यवहारवाद यह दावा करता है कि वह केवल वैज्ञानिक विधि ही अपनाता है और उसी के आधार पर निष्कर्ष निकालता है। किन्तु स्मृति, तर्क और सवेग के विषय मे वह पूर्णतः

वैज्ञानिक विधि नही अपनाता और इन्हे अन्तर्भूत व्यवहार कहकर टालना चाहता है। अन्तर्भूत व्यवहार का अर्थ है ऐसा व्यवहार जिसका वाहर की गतियो से परिचय नही मिलता और वाहर की हरकतो के अध्ययन को ही व्यवहारवादी वैज्ञानिक विधि मानता है। कैसा विरोवाभास है !

वाटसन ने कुछ विचित्र वाते भी कही हैं। विचार-प्रक्रिया को वह वाणी वतलाता है और कहता है कि चिन्तन मे व्यक्ति अन्दर ही अन्दर वाणी का प्रयोग करता है और वस्तुओ के स्थान पर सकेतो का प्रयोग करता है। पर विचार और वाणी एक तो प्रतीत नही होते। अनेक वार हम अपने विचारो को व्यक्त करने के लिये उपयुक्त भाषा नही पाते और कई वार हम वकवाद तो करते है किन्तु उस वकवाद के पीछे कोई विचार नही होता। इससे यह स्पष्ट है कि विचार और वाणी एक नही हैं। वाटसन ने विचार को वाणी इसलिए नही कहा कि उसने किसी प्रयोग के आवार पर ऐसा निष्कर्ष निकाला था वरन् उसने विचार को वाणी कहकर अपने हठ की पूर्ति की थी। यह हठ था प्रत्येक प्रत्यय को पुद्गल मे परिवर्तित करना। वाटसन कहता था वह अध्यात्मशास्त्र मे रुचि नही रखता था किन्तु अध्यात्म-शास्त्रीय पद का उसने हठपूर्वक प्रयोग किया।

वाटसन मूलप्रवृत्तियो को अस्वीकार करता है और वातावरण पर अत्यधिक वल देता है किन्तु वातावरण और व्यवहार-वाद मे कोई तार्किक सम्वन्व नही दिखाई पडता। इस सम्वन्ध मे वाटसन प्रदत्तो एव प्रयोगो के निष्कर्षों से वहुत आगे वढ जाता है और विना किसी प्रमाण के कहने लगता है कि वह किसी वालक को वकील, डाक्टर, इंजीनियर आदि वना सकता है। अपनी इस भूल को वाटसन भी स्वीकार करता है और वह यह मानता है कि वातावरण के विपय मे उसके कथन प्रयोगो के निष्कर्षों से आगे वढ गये हैं। दूसरे शब्दो मे, वह भी कल्पना का आश्रय ले लेता है। तब यदि सरचनावादी या सकार्यवादी अथवा परम्परागत मनोवैज्ञानिक ऐसा करते हैं तो वाटसन को कोई आपत्ति नही होनी चाहिए।

व्यवहारवादी कहता है कि वह मनोविज्ञान को भौतिकी के समान वस्तुनिष्ठ बनाना चाहता है किन्तु ऐसा करने मे वह वह भौतिकी के मूल नियम का ही उल्लंघन करता है। भौतिकशास्त्री के लिए ज्ञान का स्रोत महत्वहीन है। भौतिकी की विषयवस्तु के मूलस्रोत पर वैज्ञानिक विचार नही करता वह तो वैज्ञानिक विधि का विकास करता जाता है। यदि वैज्ञानिक देखता है कि एक विधि से उसके निष्कर्ष सही नही निकलते तो वह दूसरी विधि का विकास करता है। उदाहरणार्थ, भौतिकी का मूल-स्रोत भौतिक जगत् है। भौतिक जगत् को वैज्ञानिक पहले यान्त्रिक मॉडल के द्वारा समझने का प्रयत्न करता था किन्तु इस विधि से जब उसने प्रदत्तो को एकत्र कर लिया तो बाद मे उन्ही प्रदत्तो के अनुकूल गणित के सूत्रो का उसने विकास कर लिया। ध्यान रखना है कि उसने प्रदत्तो को समाप्त नही कर दिया, वरन् एक नयी विधि का विकास कर लिया। वाटसन ने मनोविज्ञान के अध्ययन मे देखा कि मानसिक प्रत्ययो की इस शास्त्र मे भरमार है। किन्तु इससे हानि क्या है ? मनोविज्ञान तो मानसिक प्रत्ययो के अध्ययन का ही विज्ञान है। वाटसन ने वतमान मानसिक प्रत्ययो के रूप मे प्रदत्तो को समझने के लिए किसी नयी विधि का अन्वेषण नही किया। भौतिकी मे नयी विधि का विकास हुआ है किन्तु वाटसन ने मानसिक प्रत्ययो को ही समाप्त करने की चेष्टा की। भौतिकी के नियम का यह सरासर उल्लघन है।

वाटसन ने सवेग और चिन्तन को शारीरिक प्रतिक्रिया माना है। फिर भी इनका बाह्य निरीक्षण सम्भव नही है। ये अन्तर्भूत व्यवहार के अन्तर्गत आते हैं। तो वाटसन को यह पता कैसे लगा कि सवेग या चिन्तन का अस्तित्व है ? वह बाहर से इन्हे देख नही सकता था; अन्तर्दर्शन से ही सम्भवत. उसने इनका पता लगाया हो। परन्तु प्रकट रूप मे वह अन्तर्दर्शन की पद्धति को नही मानता। वह अन्तर्दर्शन का कडा विरोध करता है और यह निश्चित है कि अपने व्यवहारवादी पदो के निर्माण मे उसने बहुत कुछ अन्तर्दर्शन का प्रयोग किया होगा।

व्यवहारवादी ने अन्तर्दर्शन की अवहेलना करके वस्तुनिष्ठ पद्धति को ही मनोविज्ञान की एकमात्र विधि माना। किन्तु व्यवहारवाद के प्रभाव के होते हुए भी अन्तर्दर्शन की पद्धति का मनोविज्ञान से पूर्ण बहिष्कार नही हो सका है। व्यवहारवादी भी "शब्दनिष्ठ विवरण (Verbal Report) के रूप मे अन्तर्दर्शन को स्वीकार करता है। आज अन्तर्दर्शन को केवल व्यक्तिनिष्ठ पद्धति ही नही माना जाता है।

अनेक दोषो के होते हुए भी व्यवहारवाद ने मनोविज्ञान को विज्ञान बनाने मे बड़ा योगदान दिया है। मनोविज्ञान को परम्पराओ की दासता से मुक्त करने का बहुत कुछ श्रेय व्यवहारवाद को ही है। चेतना के अमूर्त प्रत्यय के आकाश से व्यवहार के धरातल पर मनोविज्ञान को उतारने मे व्यवहारवाद ने पहल की है।

परम्परागत मनोविज्ञान मे मानसिक प्रत्ययो का बडे अस्पष्ट अर्थो मे व्यवहार होता था। व्यवहारवाद ने मनोभावो के स्थान पर मानसिक क्रियाओ का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार व्यवहारवाद ने बहुत-से जटिल मानसिक प्रत्ययो को सरल बना दिया।

व्यवहारवाद ने मनोविज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान की भाँति वस्तुनिष्ठ बनाने मे बडा जोर लगाया। व्यवहारवादी का विश्वास है कि वस्तुनिष्ठ निरीक्षण के द्वारा व्यवहार का अध्ययन करके बालको के सही विकास मे मनोविज्ञान बडी सहायता कर सकता है। बालक के विकास मे आने वाले विकारो को बिना मनोविश्लेषण के ही दूर किया जा सकेगा क्योकि प्रयोगात्मक पद्धति से व्यवहार के अध्ययन से व्यवहार पर पूरा नियन्त्रण रखा जा सकता है।

वाटसन का साहस प्रशंसनीय है। जिस निष्ठा से वाटसन ने मनोविज्ञान मे वस्तुनिष्ठ पद्धतियो के आगमन के लिये

रास्ता साफ किया। उस निष्ठा मे कोई कसर नही थी। इस दृष्टि से व्यवहारवाद मे कुछ नवीनता अवश्य दिखाई पड़ती है किन्तु ऐसी बात नही है कि मनोविज्ञान मे वस्तुनिष्ठ पद्धति का प्रयोग केवल व्यवहारवाद के कारण ही हुआ हो। इसके पूर्व भी वस्तुनिष्ठ पद्धति का प्रयोग प्रचलित था। वाटसन के विद्यार्थी-जीवन मे भी पशुओ और बालकों पर अनेक प्रयोग चल रहे थे। हाँ, इस पद्धति को व्यवहारवाद ने नया बल अवश्य प्रदान किया।

५

प्रेरकीय मनोविज्ञान

एक बड़ा स्पष्ट तथ्य यह है कि मनुष्य किसी प्रयोजन से कार्य करता है। ससार मे जिधर निगाह उठाइये प्रयोजन ही प्रयोजन दिखाई पडता है। हमारा उठना, बैठना, खेलना, कालेज जाना, लिखना-पढना सभी कार्य अर्थपूर्ण एव प्रयोजनपूर्ण होते है। निरुद्देश्य तो कोई कार्य दिखाई नही पडता। सरचनावादी ने सवेदना को मनोविज्ञान का मूलतत्व स्वीकार किया है, व्यवहारवादी ने दैहिक क्रियाओ को तथा पूर्णाकारवादी ने पूर्णाकार के प्रत्यक्षीकरण को महत्व प्रदान किया किन्तु प्रयोजन की ओर किसी का इतना ध्यान ही नही गया। इस ओर ध्यान न देने मे भी उन मनोवैज्ञानिको का अपना प्रयोजन था। तो सभी के मूल मे प्रयोजन स्थित होता है और उस प्रयोजन से ही प्रेरित होकर मनुष्य कार्य करता है। लक्ष्य को प्राप्त करने का ही प्रयास किया जाता है। कुछ व्यक्तियो ने लक्ष्य-प्राप्ति के इस प्रयास का अध्ययन करना ही मनोविज्ञान का कार्य

बताया। इन मनोवैज्ञानिको के मत को प्रेरकीय[1] मत कहा जाता है।

फ्रायड, एडलर और युग ने भी प्रयोजन के अस्तित्व को स्वीकार किया किन्तु विलियम मैकडूगल[2] का तो समूचा मनोविज्ञान ही प्रयोजन या प्रयास पर आधारित है। विलियम मैकडूगल प्रेरकीय मनोविज्ञान का जनक था। मैकडूगल की शिक्षा-दीक्षा उसकी जन्मभूमि इगलेण्ड मे ही हुई। प्रारम्भ मे उसकी रुचि जीव-विज्ञान और चिकित्सा-विज्ञान मे थी किन्तु बाद मे वह मनोविज्ञान की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। मैकडूगल के समय मे चेतना का विज्ञान बड़ा प्रभावशाली था। मैकडूगल ने देखा कि सरचनावाद मे बौद्धिक पक्ष का ही अधिक विश्लेषण किया जाता है और व्यक्ति का आचरण पक्ष उपेक्षित हो जाता है। मैकडूगल ने ही मनोविज्ञान के इतिहास मे सर्वप्रथम यह कहा था कि मनोविज्ञान को आचरण का विज्ञान बनना है किन्तु व्यवहारवादियो की भाँति वह व्यवहार को निरुद्देश्य नही मानता था। व्यवहारवादियो की भाँति मैकडूगल भी पशु-मनोविज्ञान मे बड़ी रुचि लेता था और उसने पशुओ पर कई प्रयोग भी किये। किन्तु व्यवहारवादियो ने उसके कार्य को संशय की दृष्टि से देखा। वाटसन तो कहता था कि 'उद्देश्य निश्चित रूप से पुराने सड़े-गले मनोविज्ञान का अवशिष्ट रूप है। श्री कूओ ने कहा कि मानव-मशीन उद्दीपक के कारण एक विशेष प्रकार का व्यवहार करती है न कि किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए। व्यवहारवादियो की दृष्टि मे अर्थ, मूल्य, प्रयोजन, लक्ष्य आदि का कोई स्थान नही और उनकी समझ मे मनोविज्ञान को विज्ञान बनाने के लिए इन प्रत्ययो को मनोविज्ञान के क्षेत्र से हटा देना चाहिए। यही नही टिचनर जैसे सरचनावादी ने भी प्रयोजन को कोई स्थान नही दिया। किन्तु वे स्वय भी तो ऐसे कार्य मे प्रवत्त थे जो सप्रयोजन था।

1 Hormic School
2 William McDougall (1871-1938)

मैकडूगल ने व्यवहार का विश्लेषण करके यह सिद्ध किया कि व्यवहार सदा प्रयोजनपूर्ण होता है। व्यवहार है क्या? जीवित प्राणी बाह्य परिस्थिति के प्रति जो क्रिया करता है वही तो व्यवहार है। निर्जीव पदार्थ व्यवहार नही करता। उसमे एक स्थान से दूसरे स्थान मे आने-जाने की क्षमता नही होती। निर्जीव वस्तु मे गति लाने के लिए किसी बाहरी शक्ति की जरूरत पड़ती है। उदाहरणार्थ मेरे सामने मेज पर दावात रखी हुई है। मेज और दावात दोनो गतिहीन निर्जीव पदार्थ है। इनमे गति तब आ सकती है जब कोई व्यक्ति इन्हे एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाए या कोई अन्य बाहरी दबाव पडे। लोग प्राय कह बैठते हैं अमुक कवि या अमुक लेखक की लेखनी बड़ी सशक्त है। वस्तुत. लेखनी मे तो किसी प्रकार का व्यवहार करने की शक्ति है ही नही। मैं जिस कलम से लिख रहा हूँ वह बिल्कुल नया और बड़ा मजबूत है किन्तु इसे मै अशक्त ही समझता हूँ। इसका कारण यह है कि लेखनी मे व्यवहार करने की शक्ति ही नही है। व्यवहार तो जीवित प्राणी करते है। जीवित प्राणी मे सोचने विचारने की शक्ति होती है। वह व्यवहार का लक्ष्य देख लेता है और व्यवहार के परिणाम की कल्पना कर लेता है। लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ही वह व्यवहार करता है। उसका व्यवहार लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास ही है। इस प्रयास के तत्व को व्यवहार से बहिष्कृत नही किया जा सकता क्योकि व्यवहार कोई निर्जीव, गतिहीन क्रिया नही है। व्यवहारवादी यह आपत्ति उठाता है कि व्यवहार मे तो व्यवहार ही दिखाई पड़ता है किसी लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास तो दिखाई नही पडता अत. व्यवहारवादी कहता है कि सम्पूर्ण व्यवहार किसी उद्दीपक के प्रति प्रतिक्रिया है और कुछ नही। मैकडूगल अनेक प्रमाण देकर इस आक्षेप का उत्तर देता है। मैकडूगल क्रिया के चार मुख्य लक्षण बताता है। वह कहता है कि क्रिया देर तक ठहर सकती है। यदि व्यवहार उत्तेजना-प्रतिक्रिया का ही खेल है तब तो उत्तेजना या उद्दीपक के हटते ही क्रिया को समाप्त हो जाना चाहिए किन्तु ऐसा होता नही है। उद्दीपक से कोई प्रतिक्रिया प्रारम्भ होकर उद्दीपक की अनुपस्थिति पर भी चलती रह सकती है। ऐसा क्यो होता है?

स्पष्ट है कि प्राणी लक्ष्य की सिद्धि के लिए आगे भी प्रयत्न करता रहता है। दूसरी बात यह है कि क्रिया मे कभी-कभी परिवर्तन हो जाता है किन्तु लक्ष्य वही रहता है। क्रिया का तीसरा लक्षण यह है कि लक्ष्य प्राप्त हो जाने पर क्रिया समाप्त हो जाती है। अन्त मे मैकडूगल कहता है कि आवृत्ति से क्रिया मे सुधार भी हो जाता है। लक्ष्य प्राप्ति मे साधक सोपान सुदृढ हो जाते है किन्तु निरर्थक सोपान विलीन हो जाते हैं। क्रिया के ये चार लक्षण वस्तुनिष्ठ है और इनका वाह्य निरीक्षण किया जा सकता है। ये लक्षण पशुओ की क्रियाओ में भी वर्तमान रहते है।

मैकडूगल व्यवहार के इस विश्लेषण से इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि व्यवहार सदा सप्रयोजन होता है। प्राणी सदा लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है। इस प्रकार उसने प्रेरकीय मनोविज्ञान का सूत्रपात किया। प्रेरकीय मनोविज्ञान मे प्रेरक की उपयोगिता, प्रयोजन का महत्व, लक्ष्य का गौरव एव अर्थ तथा मूल्य का स्थान स्वीकार किया जाता है। प्रयोजन या उद्देश्य व्यवहार को प्रेरित करता है इसीलिये कुछ लोग प्रयोजन, प्रयास और प्रेरणा को समानार्थक मानते हैं और प्रेरकीय मनोविज्ञान को सप्रयोजनवाद या प्रेरणात्मक मनोविज्ञान कहते है।

मैकडूगल ने सामाजिक मनोविज्ञान से अपना कार्य प्रारम्भ किया। उसने सन् १९०८ ई० मे "समाज-मनोविज्ञान-परिचय"[1] नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक की बडी प्रशसा हुई। समाज-विज्ञान के क्षेत्र मे कार्य करने वाल विद्वान किसी ऐसे सिद्धान्त की खोज मे लगे हुये थे जिससे वे समाज के व्यवहार को भली प्रकार समझा सकते। मैकडूगल ने सामाजिक व्यवहार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके उन विद्वानो की जिज्ञासा को शान्त किया। समाज-विज्ञान के पण्डितो ने मैकडूगल की उपर्युक्त पुस्तक का हृदय से स्वागत किया और उसके निष्कर्षों को सामाजिक विज्ञान मे व्यवहृत करने मे वे जुट गये।

[1] *Introduction to Social Psychology*

मैकडूगल ने व्यवहार का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करके व्यवहार के जिन चार लक्षणों का उल्लेख किया है उन लक्षणों को व्यवहारवादी भी तिरस्कृत न कर सके। सन् १९१२ ई० मे मैकडूगल ने इन लक्षणो को सर्वप्रथम विश्लेपित किया था और उपर्युक्त पुस्तक के पाँचवें सस्करण मे इनका उल्लेख किया। इस विश्लेपण का प्रभाव व्यवहारवादियो पर भी पडा और टॉलमन जैसे प्रसिद्ध व्यवहारवादी ने भी व्यवहार मे उद्देश्य को स्वीकार किया। मैकडूगल के अनुसार कोई भी कार्य विना प्रयोजन के नही हो सकता। प्रयोजन के दो तत्व होते हैं। प्रयोजन का पहला तत्व तो यह है कि इसमे किसी कार्य के परिणाम की सूझ रहती है। प्राणी पहले से ही कार्य के परिणाम को समझ जाता है और तदनुसार अपने प्रयास मे सुधार कर लेता है। प्रयोजन का दूसरा तत्व है लक्ष्य तक या परिणाम तक पहुँचने की इच्छा। यह आवश्यक नही कि प्रयोजन के उपयुक्त दोनो तत्व एक साथ रहे। कभी-कभी क्रिया के परिणाम की सूझ तो रहती है किन्तु इच्छा नही होती। किसी-किसी को लम्बी कूद या ऊँची कूद की सूझ तो रहती है किन्तु इच्छा नही रहती, किसी-किसी को इसकी इच्छा रहती है किन्तु सूझ नही होती।

मैकडूगल ने जिस समय (सन् १९०८) प्रेरकीय मनोविज्ञान की नीव रखी उस समय मनोविज्ञान-जगत् मे वुण्ट का सर्वाधिक प्रभाव था। मनोविज्ञान मे बौद्धिक प्रक्रियाओ को ही प्रमुखता थी और लोग इन्ही के विश्लपण मे जुटे हुये ये। सवेदना, स्मृति, कल्पना आदि वौद्धिक विषयो का अध्ययन ही मनोविज्ञान समझा जाता था। मैकडूगल ने मनोविज्ञान मे आचरण के अध्ययन पर वल दिया। वौद्धिक विपयो से लोगो का ध्यान हटाकर व्यवहार पक्ष की ओर केन्द्रित करने का श्रेय मैकडूगल को ही है। मैकडूगल ने देखा कि व्यवहार किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होता है। अव प्रश्न यह था कि कोई व्यवहार किसी लक्ष्य-विशेष की ओर कैसे प्ररित होता है? मैकडूगल ने इस प्रश्न को मनोविज्ञान के लिए एक चुनौती समझा और इस प्रश्न के उत्तर ढूँढने का प्रयास किया। वुण्ट के अनुयायी यह मानते हैं कि मनुष्य का व्यवहार परिणाम की सूझ पर आधारित है और उसमे तर्क-वितक की प्रधानता है इसीलिए मन के वौद्धिक पक्ष को

अत्यधिक महत्व दिया गया था। किन्तु मनुष्य व्यवहार के सभी प्रकार के परिणाम को श्रेष्ठ नही समझता। किसी व्यवहार के परिणाम को तो वह वांछनीय समझ कर उसे पाने के प्रयास मे जुट जाता है और किसी अन्य व्यवहार के अन्य परिणाम की ओर वह उदासीन रहता है जबकि किसी अन्य परिणाम को वह अनिष्टकारक समझता है। इससे यह स्पष्ट है कि व्यवहार के परिणाम की जानकारी ही व्यवहार को प्रेरित नही करती वरन् व्यक्ति की इच्छाओ और प्रेरणाओं का, व्यवहार की दिशा निश्चित करने मे, सर्वाधिक हाथ रहता है।

मैकडूगल ने मनुष्य के व्यवहार के अभिप्रेरणो का अध्ययन किया और वह निष्कर्ष पर पहुँचा कि मानव व्यवहार के पीछे अनेक प्रेरणाएँ विद्यमान है। इन प्रेरणाओ मे कुछ तो मौलिक प्रेरणाएँ होती है और कुछ गौण। मौलिक प्रेरणाएँ शिशु को जन्म से ही मिल जाती है और गौण प्रेरणाएँ इन्ही मौलिक प्रेरणाओ से बाद मे प्रस्फुटित होती है। शिक्षा एवं वातावरण का प्रभाव केवल गौण प्रेरणाओ पर ही पडता है। मौलिक प्रेरणाएँ तो प्रकृतिदत्त होती हैं। हाँ, इन मौलिक प्रेरणाओ के प्रकाशन की शैली पर वातावरण व शिक्षण का प्रभाव अवश्य पड़ता है। मौलिक प्रेरणाएँ एक साथ प्रकट नही होती वरन् समय आने पर विकास के किसी विशेष सोपान मे वे प्रकट हो जाती हैं। इन मौलिक प्रेरणाओ से ही प्रेरित होकर व्यक्ति अनेकानेक कार्य मे जुट जाता है। इस प्रकार व्यक्ति का कार्य निरुद्देश्य न होकर सप्रयोजन होता है।

मैकडूगल ने उपर्युक्त मौलिक प्रेरणाओ को मूल-प्रवृत्तियाँ कहा है। मैकडूगल ने मूल प्रवृत्ति का इतना जोरदार समर्थन किया है कि मूलप्रवृत्ति का नाम लेते ही सदा मैकडूगल की याद आ जाती है। मूलप्रवृत्तियो का गहन अध्ययन करने के पश्चात् मैकडूगल ने बताया कि ये प्रवृत्तियाँ प्रकृतिदत्त और जन्मजात हैं तथा एक जाति के सभी प्राणियो मे ये समान रूप से पायी जाती है। वातावरण व शिक्षा के प्रभाव से इनके प्रकाशन की शैली मे परिवर्तन हो जाता है और इनका परिवर्तित रूप आदत अभिवृत्ति और स्थायी भाव के रूप मे सामने आ जाता है। प्रत्येक मूलप्रवृत्ति के साथ

एक संवेग ज्यों का त्यों बना रहता है और इसमे परिवर्तन नही होता। मैकडूगल ने प्रमुख मूल प्रवृत्तियो एवं उनके सम्बद्ध सवेगो की सूची का निर्माण किया है। उसके अनुसार निम्नलिखित मूलवृत्तियाँ बडी महत्वपूर्ण हैं :

मूल प्रवृत्ति [1]	सम्बद्ध सवेग[2]
१. भोजन ढूंढना	भूख
२. पलायन	भय
३ युयुत्सा	क्रोध
४. उत्सुकता	आश्चर्य
५. रचना	रचनात्मक आनन्द
६. आत्म गौरव	प्रफुल्लता
७. दीनता	आत्महीनता
८. काम	कामुकता
९ सन्तान रक्षा	स्नेह
१०. सग्रह	सग्रहात्मक आनन्द
११. जुगुप्सा	घृणा
१२. प्रार्थना	करुणा
१३. सामुदायिकता	एकाकीपन
१४. हँसना	आमोद

[1] Instinct	[2] Related Emotion
1 Food seeking	Hunger
2 Flight	Fear
3 Pugnacity	Anger
4. Curiosity	Wonder
5. Construction	Joy of Creation
6. Self-assertion	Elation
7. Self-abasement	Negative self-feeling
8. Mating	Lust
9. Parental Instinct	Tenderness
10. Collection	Joy of Collection
11. Repulsion	Hatred
12. Appeal	Distress
13 Gregariousness	Loneliness
14 Laughter	Amusement

इन प्रवृत्तियो को मैकडूगल जन्मजात मानता है। बच्चे मे जन्म लेते ही पलायन, युयुत्सा आदि की प्रवृत्तियाँ आ जाती है। इनका उदय उपयुक्त समय पर होता है। इन प्रवृत्तियो के ऊपरी रूप मे कुछ परिवर्तन दिखाई पडता है किन्तु मूल प्रवृत्तियाँ मूल रूप मे सदा एक सी ही रहती हैं। उदाहरण के रूप मे पलायन को ही ले लीजिए। शिशु मे जन्म से ही अज्ञात के प्रति भय का सवेग विद्यमान रहता है। भय की उपस्थिति मे शिशु भागना चाहता है। जब शिशु उठने-बैठने लायक नही रहता तब भी वह पलायन तो करता ही है। माता के हृदय से चिपक जाना या बिस्तर के अन्दर दुबक जाना भी पलायन ही है। बाद मे चलना सीख जाने पर वह भाग कर किसी सुरक्षित स्थान मे चला जाता है। कभी-कभी व्यक्ति ससार के कटु यथार्थ से कल्पना के लोक को पलायन कर जाता है। प्रौढ़ होने पर व्यक्ति यह सीख लेता है कि कब और किससे भय करना चाहिए। बच्चा छिपकली को देखकर भागता है, प्रौढ उससे भयभीत नही होता। भय कहाँ करे कहाँ न करे यह तो सीखने के परिणाम-स्वरूप आता है किन्तु भय की स्थिति मे पलायन होता है इसमे कोई सन्देह नही है। भय की स्थिति मे पलायन को मैकडूगल सीखने का परिणाम नही मानता।

शिशु और प्रौढ मे यही अन्तर है कि एक मे मूल-प्रवृत्तियाँ अपने नग्न रूप मे रहती हैं, दूसरे मे मूलवृत्तियाँ सशोधित एव परिमार्जित रूप मे रहती है। व्यक्ति का प्रारम्भिक जीवन मूलप्रवृत्तियो द्वारा प्रेरित होता है किन्तु प्रौढ मानसिक जीवन के विषय मे यह बात लागू नही होती। प्रौढो का जीवन अधिकतर स्थायी भावो से प्रेरित होता है जिनका निर्माण बाल्यकाल से ही प्रारम्भ हो जाता है। जब एक से अधिक सवेग किसी पदार्थ के चारो ओर व्यवस्थित हो जाते हैं तो इस व्यवस्थित प्रणाली को स्थायी भाव कहते हैं। कवियो एवं उपन्यासकारो ने प्रेम को सवेग माना है। सवेग क्षणिक होता है किन्तु प्रेम क्षणिक नही होता है। प्रेम वस्तुत. स्थायीभाव है जिससे कई प्रकार के सवेग जाग्रत हो उठते हैं। प्रेम का विकास धीरे धीरे होता है। कवि कभी-कभी कह बैठता है कि अमुक नायक और अमुक नायिका मे प्रथम दर्शन में ही प्रेम हो गया। मनोविज्ञान इस बात को नही

मानता। प्रेम धीरे-धीरे अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित होता है। यह किसी एक प्रवृत्ति पर निर्भर नही होता। मैकडूगल ने कहा है कि व्यक्ति का व्यवहार स्थायीभावो से प्रेरित होता है।

मैकडूगल के प्रेरकीय मनोविज्ञान का पहले तो बडा स्वागत हुआ किन्तु बाद मे इसकी बडी आलोचना की गई। पहले तो समाजशास्त्रियो ने मैकडूगल के सिद्धान्तो को अपने लिए वरदान समझा और मनोविज्ञान मे भी उसके मत को बहुत सराहा गया। किन्तु बाद मे बहुत से मनोवैज्ञानिको ने 'मूल प्रवृत्ति', 'प्रेरणा', 'प्रयोजन', प्रयास, आदि पदो का तिरस्कार किया। आलोचको ने मैकडूगल द्वारा प्रयुक्त पदो मे 'मानसिक शक्ति' का अवशेष देखा और इन पदो को पुराना और अमान्य घोषित किया।

आधुनिक मनोविज्ञान व्यवहारवाद की ओर अधिक झुका हुआ है। व्यवहारवादी केवल वर्णनात्मक एव निश्चयात्मक दृष्टि-कोण को ही अच्छा समझता है। उसके अनुसार मनोविज्ञान को एक प्राकृतिक विज्ञान होना चाहिए। इसीलिए वह मैकडूगल के प्रेरकीय मनोविज्ञान की कटु आलोचना करता है। प्रारम्भ मे मैकडूगल एक नये युग को ले आता दिखाई पड रहा था किन्तु अब उसकी लोकप्रियता बहुत कम हो गई है। मैकडूगल की मूलप्रवृत्ति को अब उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। फिर भी प्रेरकीय मनोविज्ञान ने कुछ ऐसे तथ्यो की ओर ध्यान दिलाया है जिनकी उपेक्षा नही की जा सकती।

૯

મનોવિશ્લેષણ

अब तक जिन सम्प्रदायों का चर्चा की गई है वे सब मनोविज्ञान के शास्त्रीय रूप से सम्बद्ध हैं। सभी मे पुस्तकीय विद्या की प्रधानता है। इन सब वादो मे व्याख्यानो, कक्षाओ, पाठ्य-पुस्तको, डाक्टरेट की उपाधियो एव प्रयोगशालाओ का वातावरण बना हुआ है। किन्तु मनोविश्लेषण के विषय मे यह बात लागू नही होती। मनोविश्लेषण का आविर्भाव चिकित्सा-विज्ञान से हुआ और यह अभी भी एक प्रकार से मानसिक चिकित्सा का ही एक भाग बना हुआ है।

मनोविश्लेषण के जनक हैं सिगमण्ड फ्रायड।[1] फ्रायड का जन्म सन् १८५६ ई० मे हुआ था और उसकी मृत्यु सन् १९३९ मे हुई। यद्यपि वह चेकोस्लोवाकिया मे पैदा हुआ था किन्तु उसके जीवन का अधिकाश भाग वियना मे बीता। वियना मे ही उसकी शिक्षा-दीक्षा भी हुई। प्रारम्भ मे वह चिकित्सा-विज्ञान का छात्र था। इसी समय उसकी रुचि शरीर-विज्ञान मे भी हो गई। शिक्षा

[1] Sigmund Freud

समाप्त करने के पश्चात वह डाक्टरी का व्यवसाय करने लगा। अपने व्यावसायिक जीवन के प्रारम्भ मे ही उसने एक वृद्ध चिकित्सक डाक्टर जोजेफ ब्रायर[1] की संगति की। सन् १८८५ ई० मे फ्रायड पेरिस गया और वहाँ उसने शार्को[2] के चरणो मे बैठकर शिक्षा ग्रहण की। उस समय समस्त यूरोप मे मनोविक्षेप की चिकित्सा मे शार्को की बड़ी धाक थी। शार्को हिस्टीरिया[3] के रोगियो का इलाज करने मे बडा पटु था और उसकी विधि का फ्रायड पर बडा प्रभाव पडा। शार्को का विश्वास था कि हिस्टीरिया और सम्मोहन[4] अन्योयाश्रित हैं। इसीलिए हिस्टीरिया के इलाज मे उसने सम्मोहन का विशेष उपयोग किया। शार्को के एक भाषण से फ्रायड को कुछ-कुछ यह आभास होने लगा कि मानसिक रोगो की तह मे कामवासना रहती है। पेरिस जाने से पूर्व भी वह एक प्रकार से इस विचार को ताड गया था। जब वह ब्रायर के साथ कार्य कर रहा था तो उसने ब्रायर के एक रोगी की ओर विशेष ध्यान दिया था। ब्रायर के पास एक सुन्दर युवती हिस्टीरिया के रोग से ग्रस्त होकर आयी। युवती की हिस्टीरिया का कारण उसके जीवन की एक घटना थी। जब उस युवती का उपचार किया जाने लगा तो उससे अर्द्धसुषुप्त अवस्था मे अपने सवेगो को मुक्त करने को कहा गया और उससे अपने जीवन की पूर्व घटनाओ को याद करने को कहा गया। युवती ने सम्मोहनावस्था मे धीरे-धीरे उस घटना को याद कर लिया जिसने उसके सवेगात्मक जीवन को अस्तव्यस्त कर दिया था और जिसे वह अपने चेतनापूर्ण जीवन मे भूल चुकी थी। फ्रायड और ब्रायर ने यह निष्कर्ष निकाला कि सवेग के प्राकृतिक मार्ग की अवरुद्धता के कारण सवेग ने कृत्रिम मार्ग से रोग के लक्षणो के रूप मे अपना प्रकाशन किया था। इस प्रक्रिया को फ्रायड ने परिवर्तन-प्रक्रिया[5] कहा। परिवर्तन-प्रक्रिया मे मूल प्रभाव के स्थान

1 Josef Breur
2 Charcot
३ Hysteria
4 Hypnosis
५ Conversion

पर रोग के लक्षणों के रूप में कृत्रिम प्रभाव का आगमन हो जाता है। इस घटना से फ्रायड इस निष्कर्ष पर पहुँच गया था कि अचेतन मन निष्क्रिय न होकर गतिशील होता है।

फ्रायड ने ब्रायर से इस विधि के विषय में चर्चा की किन्तु फ्रायड अभी भी सन्तुष्ट नहीं हुआ था। उधर शार्को ने सम्मोहन की विधि पर बड़ा जोर दिया था किन्तु सम्मोहन की विधि सभी प्रकार के मानसिक रोगों के उपचार में सफल नहीं सिद्ध हुई थी। फ्रायड देख रहा था कि मनोचिकित्सा में केवल सम्मोहन-विधि का प्रयोग किया जाता था और यह विधि बड़ी अपूर्ण थी। फ्रायड ने निष्कर्ष निकाला कि असली मनोविश्लेषण तो तभी प्रारम्भ हो सकता है जब सम्मोहन को पूर्ण रूपेण तिरस्कृत कर दिया जाय। जब फ्रायड वियना गया तो उसने शार्को से मनोचिकित्सा की शिक्षा प्राप्त की और वह पुनः वहाँ से लौटकर ब्रायर के साथ ही काम करने लगा। अब उसने सम्मोहन के साथ-साथ रेचन-क्रिया[1] का भी प्रयोग किया। फिर भी इस विधि से उसे सन्तोष नहीं हुआ। इस विधि से कुछ लक्षणों का उपचार तो हो जाता था किन्तु रोग जड़ से नहीं जाता था। कई रोगी एक बार अच्छे होकर चले जाते थे और दुबारा वे रोग-ग्रस्त हो जाते थे। फ्रायड ने देखा कि सम्मोहन से रोगी पूर्ण रूपेण अच्छा नहीं हो पाता। अतः फ्रायड और ब्रायर दोनों ही सम्मोहन के साथ-साथ एक नई विधि का विकास करने में प्रयत्नशील थे। ब्रायर ने रोगी को प्रोत्साहित किया कि वह चिकित्सक से अपनी सभी बात निस्संकोच होकर स्वतन्त्रतापूर्वक बताए। इस विधि को ब्रायर कभी-कभी वार्तालाप-विधि[2] कहा करता था। कुछ समय बाद यही वार्तालाप-विधि मनोविश्लेषण के रूप में विकसित हुई। इस विधि को फ्रायड ने मुक्त साहचर्य[3] विधि कहा। रेचन को बाद में भी एक प्रविधि के रूप में स्वीकार किया गया किन्तु सम्मोहन को तिलाञ्जलि दे दी गई।

[1] Catharsis
[2] Talking method
[3] Free Association

जैसा कि पहले कहा जा चुका है सम्मोहन की विधि का प्रबलतम समर्थक शार्को था। शार्को के पहले भी सम्मोहन का प्रयोग किया जाता था किन्तु शार्को ने सम्मोहन को वैज्ञानिक विधि बनाने का प्रयत्न किया था। अठारहवी शताब्दी तक सम्मोहन केवल जादूगरी की विधि मानी जाती थी। उन्नीसवी शताब्दी में पेरिस मे सम्मोहन का वैज्ञानिक ढग से विकास किया गया था। किन्तु शार्को हिस्टीरिया के रोगियो के लिए ही सम्मोहन की विधि को उपयुक्त बताता था। उसने हिस्टीरिया के रोगियो का सम्मोहन विधि द्वारा इलाज किया था। शार्को की इस धारणा का विरोध किया गया कि हिस्टीरिया और सम्मोहन अन्योन्याश्रित हैं। इस विरोध मे नेसी-मत[1] सबसे आगे था। नेसी-मत वाले कहते थे कि सम्मोहन का प्रभाव केवल हिस्टीरिया के रोगियो पर ही नही वरन् सामान्य लोगो पर भी पड़ता है। बोस्टन मे प्रिंस महोदय ने कई मानसिक कठिनाइयो को सम्मोहन-विधि द्वारा दूर किया था। पेरिस मे जैने[2] महोदय ने भी सम्मोहन की विधि से चिकित्सा की थी। फ्रायड ने भी इसी विधि से चिकित्सा प्रारम्भ की थी किन्तु बाद मे इस विधि को अनुपयोगी समझकर इसका परित्याग करना ही उसने उचित समझा।

सम्मोहन का प्रयोग करते-करते फ्रायड ने देखा कि सम्मोहनावस्था मे यदि रोगी को स्वतन्त्र रूप से अपनी सभी बातें कहने दी जायँ तो रोगी को इससे बडा लाभ पहुँचता था। यदि रोगी अपने जीवन की गन्दी से गन्दी और छोटी से छोटी बात को बिना किसी सकोच के व्यक्त कर सकता तो उसका जी हल्का हो जाता था। फ्रायड को यह विधि बडी उपयोगी जँची थी और मुक्त साहचर्य्य की इस विधि को उसने अधिक विश्वसनीय विधि कहा। फ्रायड ने देखा कि मुक्त साहचर्य्य की विधि से रोग का इलाज आसानी से हो जाता है और रोगियो की दशा मे पर्याप्त सुधार हो जाता है।

अब मनोविश्लेषण प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ। किन्तु इसके मार्ग मे कुछ बाधाएँ भी आई। दो बाधाओ का फ्रायड ने

[1] Nancy School [2] Janet

विशेष रूप से उल्लेख किया है। ये दो बाधाएँ निम्नलिखित हैं :

(१) स्थान-परिवर्तन-प्रक्रिया[1]

(२) अवरोध[2]

स्थान-परिवर्तन मे रोगी अपनी भावनाओ को मनोविश्लेषक पर आरोपित कर देता है। रोगी स्त्री चिकित्सक से हर तरह की बात करती है। उसके रोग के मूल मे काम-वासना रहती ही है। काम-वासना सम्बन्धी किसी घटना के कारण ही उसके मन मे प्राय: विकार आ जाता है। फ्रायड मुक्त-साहचर्य्य की विधि मे रोगी को अपनी भावनाओ को प्रकट करने की स्वतन्त्रता देता है। रुग्ण स्त्री धीरे-धीरे अपनी सभी बातें चिकित्सक से कहती है। इस वार्ता मे गुप्ततम बातें उभर आती हैं तभी तो रेचन सम्भव होता है। किन्तु इस प्रक्रिया मे स्त्री चिकित्सक से प्रेम करने लगती है। अपने प्रेम को वह पूर्व स्थान से परिवर्तित करके नवीन स्थान (चिकित्सक) पर आरोपित कर देती है। ब्रायर को ऐसी ही कठिनाई का सामना करना पड़ा था। उसने एक स्त्री की चिकित्सा की और वह स्त्री ब्रायर के प्रति दिवानी हो गई। उस स्त्री ने कहा कि वह किसी भी हालत मे ब्रायर से बिछुड नही सकती। इस घटना का ब्रायर पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसने मनोविश्लेषण का कार्य ही छोड दिया। उसने देखा कि इस कार्य मे व्यावसायिक दृष्टि से रोगी से विरक्त रहना मुश्किल हो जायगा। प्रारम्भ मे ब्रायर और फ्रायड ने कन्धे से कन्धा मिलाकर मनोविश्लेषण को जन्म दिया किन्तु बाद मे दोनो की लाइनें अलग हो गईं। फ्रायड इस बाधा से घबड़ाया नही। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि रोगी चिकित्सक के प्रति बडा उद्दण्डतापूर्ण भाव अपना लेता था। यह स्थान-परिवर्तन-प्रक्रिया का दूसरा पहलू था। फ्रायड ने दोनो ही स्थितियो में काम-वासना का ही विकार समझा। ब्रायर को फ्रायड की यह बात पसन्द नही आई। हर बात मे काम-वासना घुसेडना उसे अच्छा न लगा इसलिए भी उसने मनोविश्लेषण-विधि से अपना सम्बन्ध-

[1] Transference

[2] Resistance

विच्छेद कर लिया। फ्रायड ने स्थान-परिवर्तन-प्रक्रिया को सम्पूर्ण मनोविश्लेषण का एक भाग ही माना और उसने कहा यदि मनोविश्लेषक गहनतम भावनाओ को उद्बुद्ध करेगा तो वह कभी-कभी उन भावनाओ का आरोपण स्थल भी बन जायगा। किन्तु इससे घबड़ाने की बात नही है। चतुर मनोविश्लेषक इस वार्तालाप मे तटस्थ रहकर धीरे-धीरे अपने ऊपर आरोपित भावो को किसी दूसरी दिशा की ओर मोड़ देगा जिससे रोगी को सुख मिल सके।

दूसरी बाधा अवरोध की है। रोगी चिकित्सक से बात करते-करते एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाता है जहाँ पर उसका भाव-प्रकाशन अवरुद्ध हो जाता है। किसी विशेष घटना से ही वह विक्षिप्त हो उठता है। जब बातें करते-करते उस घटना तक आता है तो उसका मन आगे बात करने से इन्कार कर देता है इसका कारण यह होता है कि वह घटना बडी उत्तेजनापूर्ण एव दुखद होती है इसीलिए उस तक रोगी पहुँचना नही चाहता। वह मुक्त-साहचर्य्य विधि से बात करते हुए उस बिन्दु पर बिलकुल रुक जाता है। इस अवरोध के दो रूप होते हैं। एक तो यह कि रोगी आगे बताने की अनिच्छा प्रकट करता है और दूसरे यह कि वह आगे बताने मे असमर्थ होता है। दूसरा रूप अधिक बाधक होता है। फ्रायड इस बाधा से भी नही घबडाया और उसने कहा कि अवरोध तो यह जाहिर करता है कि मनोविश्लेषण सही दिशा मे हो रहा है। फ्रायड कहता है कि शनै. शनै: चिकित्सक को सहानुभूतिपूर्ण ढग से उस अवरोध को दूर करना चाहिए। कुछ लोगो ने फ्रायड से कहा कि ऐसे समय मे क्यो न सम्मोहन का उपयोग कर लिया जाय किन्तु फ्रायड ने साफ मना कर दिया और कहा कि अवरोध के ऊपर भी बिना सम्मोहन के विजय पाना चाहिए।

अवरोध के सिद्धान्त ने एक और तथ्य का उद्घाटन कर दिया। अवरोध क्यो होता है ? इस प्रश्न का उत्तर ढूँढते हुए फ्रायड ने 'दमन'[1] का तथ्य खोज निकाला। किसी घटना या इच्छा

[1] Repression

या विचार का आना कभी-कभी बडा दुखदायी होता है। जब कभी ऐसे विचार मन मे आते है तो प्राणी इनसे छुटकारा पाना चाहता है। छुटकारा पाने के दो साधन हैं। एक तो यह कि इस विचार पर विवेकपूर्वक विचार करके इसे मस्तिष्क मे गौण बना दिया जाय। यह कार्य विवेक से होता है। दूसरा साधन यह है कि इसे बलपूर्वक दबा दिया जाय। यह कार्य अविवेक एव बल से होता है। दूसरे को ही दमन समझना चाहिए। इसी दूसरी प्रक्रिया से ही मनोविकार की सम्भावना रहती है, पहली से नही। जब कोई विचार या घटना बलपूर्वक दमित कर दी जाती है तो इसका याद करना मुश्किल हो जाता है। इसे पुन: स्मृति मे बुलाना बडा दुखदायी होता है। रोगी इसीलिए इस विचार को बताने से इन्कार करता है। अवरोध का यही स्पष्टीकरण है जिसे फ्रायड ने सर्वोत्तम स्पष्टीकरण माना है। यह दमित बात मन मे समाप्त नही होती। एक बार आया हुआ दुर्विचार मन से बाहर नही किया जा सकता। ये दमित इच्छाएँ मृत होकर मस्तिष्क मे नही पडी रहती अपितु ये जीवित रहती है। ये दमित विचार निष्क्रिय न होकर सक्रिय रहते हैं किन्तु अपने असली रूप मे चेतन मन मे आने से घबडाते हैं और प्रतीकात्मक वेश मे ही चेतन मन मे आ सकते हैं। दमन को जानना और उसके द्वारा अवरोध पर विजय पाना तथा फिर उस दमित घटना को चेतन मन मे लाकर उसका विश्लेषण करना ही मनोविश्लेषण का कार्य है। इस प्रकार मनोविश्लेषण मे दमन का तथ्य बडा महत्वपूर्ण है। फ्रायड ने इसे मनोविश्लेषण की आधार-शिला कहा है।

अब प्रश्न यह उठता है कि दमित इच्छाएँ मन मे किस प्रकार रहती हैं। इस प्रश्न पर विचार करते हुये फ्रायड ने अचेतन मन[1] के तथ्य को ढूँढ निकाला। अचेतन मन का सिद्धान्त मनोविश्लेषण के आदि सिद्धान्तो मे से है। फ्रायड ने सरचना की दृष्टि से मन को तीन भागो मे बाँटा है। वस्तुत. ये मन के भाग न होकर मन के तीन स्तर है। पहला स्तर है चेतन मन। चेतन मन हमारे

[1] Unconscious mind

चेतन जीवन का नियन्त्रण करता है। मैं मनोविश्लेषण पर यह लेख लिख रहा हूँ। लिखने का मेरा यह कार्य चेतन मन का कार्य है। जाग्रत अवस्था मे हमारा ज्ञात कार्य बहुत-कुछ इसी चेतन मन के पथ-प्रदर्शन मे होता है। मन का दूसरा स्तर प्राक्-चेतन या चेतनोन्मुख मन का है। इस स्तर मे कुछ गुण तो अचेतन अवस्था के होते हैं और कुछ चेतन के, किन्तु फ्रायड कहता है कि चेतनोन्मुख की जाति चेतन-मन की ही है और इसकी अधिकांश विशेपताएँ चेतन मन से ही मिलती जुलती है। मन का तीसरा स्तर अचेतन मन का है। अचेतन मन का सिद्धान्त मनोविश्लेपण का सर्वप्रथम सिद्धान्त है। अचेतन मन मे फ्रायड का विश्वास बहुत पहले-से ही था। अचेतन मन पर जितना अधिक विश्वास फ्रायड का था उतना अधिक विश्वास शायद ही किसी अन्य मनोविश्लेपक का रहा हो।

फ्रायड के पहले भी अचेतन मन के विषय में दर्शन मे विचार हुआ था। लाइबनिज ने अचेतन मन से मिलती-जुलती बात कही थी। शापनहावर के दर्शन मे अचेतन मन का प्रत्यय साफ दिखाई पड़ता है और नीत्शे ने तो अचेतन मन के विषय में इतनी गम्भीरता से लिखा कि उसका प्रभाव फ्रायड पर भी पड़े बिना न रह सका।

हम अनेक बातो को भूल जाते हैं और उनको याद करने का प्रयत्न करने पर भी नही याद कर पाते किन्तु अचानक कभी-कभी वह बात अपने आप याद आ जाती है। हमारे अनेक अनुभव अज्ञात रूप से मन मे पड़े रहते हैं। इनसे अचेतन मन का अस्तित्व सिद्ध होता है। इसी स्तर को फ्रायड ने अचेतन मन कहा है। चेतन मन की बातो की हमे तात्कालिक एव प्रत्यक्ष जानकारी रहती है, प्राक्चेतन मन की बातो को हम शीघ्र याद कर लेते है किन्तु अचेतन मन मे स्थित बातो का याद करना कठिन है। अचेतन मन मे वे अनुभव आते है जिन्हे चेतन मन से निकाल दिया जाता है। इससे यह भी प्रकट है कि अचेतन मन मे स्थित अनुभव किसी न किसी समय चेतन मन मे अवश्य रहे होगे। ब्रायर के साथ काम करते हुये फ्रायड ने देखा कि अचेतन मन कितना शक्तिशाली है। प्रयोगो द्वारा तथा सम्मोहन की विधि से अचेतन मन की क्षमता का फ्रायड

को अनुमान लग गया था इसीलिये उसका अचेतन मन पर अटूट विश्वास हो गया था।

अचेतन शब्द मे नकार (अ) पहले ही है किन्तु इससे यह नही समझना चाहिए कि अचेतन मन कोई क्रिया नही कर सकता। वस्तुत: अचेतन मन सक्रिय एव सजीव रहता है। यह बात दूसरी है कि प्रत्यक्ष रूप मे अहम् के डर से वह आचरण को नियन्त्रित नही करता। अचेतन मन का गुप्ततम स्तर है। यह चेतन मन मे कई गुना बडा है। किसी ने अचेतन मन की तुलना एक बिना पेंदी की बोतल से दी है जिसकी गहराई का कोई अनुमान ही नही लगाया जा सकता है। चेतन मन का भाग बडा छोटा और महत्वहीन होता है। मनोविश्लेषण मे अचेतन मन का महत्व चेतन मन से अधिक है। प्राक्चेतन या चेतनोन्मुख उभयनिष्ठ होता है और इसकी स्थिति चेतन तथा अचेतन मन के बीच मे होती है। 'सेंसर' का निवास प्राक्चेतन मन मे ही माना गया है। फ्रायड ने पूरे मन को गत्यात्मक माना है जिसमे इच्छा होती रहती है। अचेतन और चेतन दोनो मे ही इच्छा एव प्रयत्न की क्रियाएँ होती रहती है। चेतन मन प्रकट रूप मे कार्य करता है, अचेतन लुक-छिप कर। अचेतन मन आचरण को अज्ञात रूप मे प्रभावित करता रहता है।

अचेतन मन आचरण को प्रेरित करता है, इस सिद्धान्त तक पहुँचने के पीछे फ्रायड का एक दार्शनिक विश्वास था। प्राचीन काल मे पश्चिम के विचारक ज्ञान-मीमासा की दृष्टि से मन के बोधात्मक पक्ष को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानते थे। उनकी दृष्टि मे सृष्टि के मूलतत्व के रूप मे बोध या चिद् को स्थान देना अनिवार्य था। निस्सन्देह चिद् की उपेक्षा नही की जा सकती किन्तु चिद् या बोध के प्रत्यय के साथ अचिद् या अबोध के प्रत्यय की ओर भी अपने आप ही ध्यान चला जाता है। इसीलिए दर्शन मे द्वैतवाद, समानान्तरवाद या अन्त क्रियावाद आदि विचारधाराओ की ओर लोग झुके। इस कठिनाई से बचने के लिए कुछ विचारको ने चरम सत्ता का पद छोडकर ज्ञानमीमासा की शरण ली। यहाँ भी वही झंझट था। ज्ञान की बोधात्मक शक्ति की ही तूती बोल रही थी। कान्ट ने विचारको का

ध्यान बोध से हटाकर क्रिया की ओर फेर दिया। शापनहावर ने मन के कारण के रूप मे भाव को महत्वपूर्ण बताया। नीत्शे ने मानसिक कारण का पद सकल्प को दिया। यदि व्यक्ति के आचरण का कारण है तो सभी प्रकार के आचरण का कारण ढूँढना पडेगा। कार्य-कारण की परम्परा मे किसी कार्य को उपेक्षित नही कर सकते। अपने-अपने विश्वास के अनुसार कुछ लोगो ने सभी प्रकार के आचरण का कारण बोध, क्रिया, भाव या सकल्प मे ढूँढने की कोशिश की। फ्रायड ने इस दृष्टि से भाव और सकल्प को चुना। फ्रायड भी यह विश्वास करता था कि सभी घटनाओ का कारण है और इसलिये प्रत्येक प्रकार के आचरण का कारण होना चाहिए। यह कारण इच्छा, प्रेरणा आदि के रूप मे ही होगा। किन्तु कभी-कभी हम ऐसा व्यवहार कर जाते हैं कि उसका हमे आभास तक नही होता। इस प्रकार के आचरण का कारण चेतन मन मे ढूँढना असम्भव है। इसीलिए फ्रायड ने इन कारणो को अचेतन मन मे ढूँढा। अचेतन मन मे उसे ये कारण अतृप्त इच्छाओ, अवदमित वासनाओ, अर्धतृप्त कामनाओ, कुण्ठित लालसाओ तथा भग्न आकांक्षाओ के रूप मे मिल गये। उसने "साइकोपैथालॉजी आव एवरी डे लाइफ" नामक पुस्तक लिखकर इस बात पर विस्तार से चर्चा की कि किस प्रकार हमारी छोटी-छोटी बातो का अचेतन मन से सम्बन्ध है। उसने दिखलाया कि हमारा प्रत्येक मनोवैज्ञानिक आचरण सकारण एव सार्थक होता है। फ्रायड ने दैनिक जीवन से अनेक उदाहरण दिये हैं। हम अपने प्रतिदिन के जीवन मे छोटी-छोटी भूलें कर जाते है। पहले इन भूलो को सयोगवश मान लिया जाता था। फ्रायड के लिये कोई बात सयोगवश है ही नही, सभी घटनाएँ कारण-कार्य की शृखला से आवद्ध होती है। हम कभी-कभी नाम तथा तिथियाँ भूल जाते है और प्राय. यह कहते हुये सुने जाते है कि "सुनीता की शादी कब हो गई मुझे मालूम नही" या कभी-कभी हम यह जानते हुये भी कि कुमारी सुनीता अब श्रीमती सुनीता हो गई है उसे कुमारी ही कहने की भूल कर बैठते हैं। इन सबके पीछे कोई न कोई कारण है। फ्रायड के अनुसार इसका कारण यह होगा कि हमने सुनीता की शादी के समय और उसकी शादी के बाद के परिवर्तित नाम का दमन

कर दिया है। यह दमन इस अर्द्धविकसित इच्छा के कारण किया कि शायद कुमारी कहने से या उसकी शादी का समय भूल जाने से अभी भी उसके साथ शादी करने की अतृप्त इच्छा को तृप्त किया जा सके। यथार्थ जीवन मे इस इच्छा की पूर्ति नही हो सकती इसलिये मन के अचेतन भाग के एक कोने मे इस इच्छा का स्थान रिजर्व कर दिया जाता है। इसी प्रकार कुछ लोग कहना चाहते हैं कुछ और कह जाते हैं कुछ। अभी कल ही लेखक को एक सभा मे सम्मिलित होने का अवसर मिला। एक विद्यार्थी-वक्ता ने भाषण प्रारम्भ करते हुये कहा "आदरणीय अध्यक्ष महोदय और मेरे प्यारे छात्रो !" वास्तव मे वह कहना चाहता था "... मेरे प्यारे साथियो !" कभी कभी हम लिखने मे भा भूल कर जाते हैं। हम अपने दैनिक जोवन मे ऐसे अनेक उदाहरण पाते हैं। फ्रायड ने अपने देश मे की जाने वाली कई भूलो का जिक्र किया है। उसकी पूरी पुस्तक इस प्रकार के उदाहरणो से भरी पडी है और सभी घटनाओ के कारणो को उसने ढूँढने की कोशिश की है।

फ्रायड ने स्वप्न[1] के विश्लेषण मे भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। स्वप्न को फ्रायड ने मतिविभ्रम[2] माना है। भ्रम और मतिविभ्रम मे अन्तर है। भ्रम मे हम प्रस्तुत उत्तेजना का गलत अर्थ लगाते हैं; मतिविभ्रम मे किसी मानसिक प्रतिमा को ही वाह्य जगत् की उत्तेजना समझ लेते हैं। भ्रम मे उत्तेजना सामने उपस्थित रहती है, मतिविभ्रम मे उत्तेजना पूर्णतः अनुपस्थित होती है। सामने के पेड की कन्दरा को देखकर लगूर समझ बैठना भ्रम है, ऊसर मे अचानक किसी साँड़ को जाता हुआ देखना (जबकि कही कुछ न हो) मतिविभ्रम है। स्वप्न भी एक प्रकार का मतिविभ्रम ही है। हम स्वप्न मे न जाने क्या-क्या देखते हैं। कभी किसी के सामने प० जवाहरलाल नेहरू तेल मालिश करते दिखाई पडते है तो किसी को स्वप्न मे गाधी जो शादी करते हुए दिखाई पड सकते हैं। कभी कोई देखता है कि बुद्धू मियाँ राजा बन गये तो कोई देखता है कि एक राजा बूट पालिश

1 Dreams   2 Hallucinations

कर रहा है। ये सब बातें यथार्थ जगत मे उत्तेजना के रूप मे प्रस्तुत नही होती। मानसिक सस्कार के कारण ही ऐसा होता है। फ्रायड के अनुसार स्वप्न मे अचेतन मन की क्रिया रहती है अतः अचेतन मन को समझने के लिये स्वप्न का विश्लेषण बहुत जरूरी है। पहले लोग स्वप्न को उपेक्षणीय एवं महत्वहीन समझते थे। फ्रायड ने स्वप्न को बहुत महत्वपूर्ण बताया। उसने कहा जो बाते व्यक्ति जाग्रत अवस्था मे नही कर सकता उसे वह स्वप्न मे कर डालता है। जिस इच्छा की पूर्ति यथार्थ जीवन मे व्यक्ति नही कर पाता उसकी पूर्ति वह स्वप्न मे करने मे स्वतन्त्र होता है। स्वप्न का सम्बन्ध जाग्रत अवस्था से है। जाग्रत अवस्था मे की गई इच्छा यदि अतृप्त रहती है तो वह प्रतीकात्मक वेश मे स्वप्न मे पूरी की जाती है। फ्रायड के अनुसार स्वप्न अकारण एव निरर्थक न होकर प्रत्येक आचरण की भाँति सकारण एव सार्थक होता है। कायर व्यक्ति स्वप्न मे वीरता का कार्य करते हुए अपने को देखता है। गरीब व्यक्ति स्वप्न मे धनी बन जाता है। यथार्थ जीवन मे यदि व्यक्ति कोई कार्य करने मे असमर्थ होता है तो उसे वह स्वप्न मे करता हुआ देखता है। किशोर किसी किशोरी से यौन-सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। किशोरावस्था मे यौन-विकास की पहली बाढ मे लगभग सभी किशोर और सभी किशोरियाँ भिन्न-लिंगीय व्यक्ति मे अधिकाधिक रुचि प्रदर्शित करते है। यथार्थ जीवन मे कोई किशोर किसी भद्र किशोरी से यौन-सम्बन्ध स्थापित नही कर सकता है। यथार्थ जीवन की इस अतृप्त इच्छा को वह स्वप्न मे किसी प्रतीकात्मक ढग से पूरी कर लेता है। कभी-कभी तो उसकी इस इच्छा-पूर्ति की प्रक्रिया का स्वप्नदोष के रूप मे शरीर पर भी प्रभाव पड जाता है। स्वप्न की विषय-वस्तु दो प्रकार की होती है प्रकट[1] एव गुप्त[2]। प्रकट विषय वाले स्वप्न मे व्यक्ति सब बातो को उन्ही रूपो मे देखता है जिन रूपो मे उसे ये बातें याद रहती है और जिन रूपो मे वह जाग्रत अवस्था मे इन बातो के सम्पर्क मे आता है। गुप्त विषय वाले स्वप्न मे प्रकट विषय वेश बदल कर आता है।

[1] Manifest [2] Latent

उदाहरण के रूप मे यदि कोई विवाहित युवक अपनी पत्नी से घृणा करता है तो वह स्वप्न मे यह देख सकता है कि वह अपनी पत्नी को डाट रहा है, या वह यह देख सकता है कि उसकी पत्नी किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम कर रही है। पहला स्वप्न प्रकट रूप मे है, दूसरा स्वप्न गुप्त है। कुछ स्वप्नो मे प्रकट एव गुप्त दोनो प्रकार के विषय रहते हैं। जहाँ तक प्रतीको का प्रश्न है मन अनेक प्रकार के प्रतीको का उपयोग करता है। किन्तु अचेतन मन के इन प्रतीको का विश्लेषण करके फ्रायड ने कुछ सामान्य निष्कर्ष भी निकाले हैं। फ्रायड का कहना है कि कुछ प्रतीको का तो सामान्य रूप से एक ही सा अर्थ निकलता है। स्वप्न मे दीवाल मनुष्य का प्रतीक हो सकती है तो मेज स्त्री की प्रतीक। इसी प्रकार स्त्री के सिर पर हैट देखना पुरुष के लिंग से सम्बन्ध रख सकता है। गले की टाई भी लिंग का ही प्रतीक है। पुरुष को सर्पों के रूप मे भी देख सकते हैं। इस प्रकार स्वप्न मे अचेतन मन प्रतीको का सहारा लेता है। सहभोज देखना मैथुन का प्रतीक हो सकता है। भोग शब्द श्लेषार्थक है ही। अग्नि को देखना स्त्री के गुप्ताग से सम्बन्ध रख सकता है क्योकि काम-वासना की ज्वाला भाषा मे भी प्रचलित है। प्रतीको का सहारा लेकर अतृप्त इच्छाएँ स्वप्न मे विचरण करती है। जहाँ तक प्रकट विषय युक्त स्वप्न का प्रश्न है इसमे तात्कालिक घटना या महत्वपूर्ण विचार का स्थान सर्वाधिक होता है।

फ्रायड ने शैशवकालीन यौन-कामनाओ[1] पर बड़ा जोर दिया है। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति के आचरण के अभिप्रेरण के रूप मे यौन-इच्छाओ का सबसे बडा हाथ रहता है। उसने स्पष्ट रूप से घोषित किया कि मनोस्नायुविकार का कारण काम-सम्बन्धी कुसमजन है। व्यक्ति का जीवन कामवासना पर ही आधारित होता है। कामुकता के विषय में पहले लोगो की धारणा थी कि यह कैशोर्य मे प्रस्फुटित होती है और उसके पूर्व व्यक्ति मे इसका अनस्तित्व रहता है। इस दृष्टि से बालको को काम-सम्बन्धी बातो से निर्लिप्त समझा

[1] Infantile Sexuality

जाता था। फ्रायड ने कहा कि यौन-जीवन का प्रारम्भ कैशोर्य से न होकर शैशव काल से ही होता है। व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन यौन-इच्छा के ही इर्दगिर्द घूमता है। साधारण व्यक्ति के जीवन में शैशव काल की काम-तृप्ति का बडा प्रभाव पडता है। यौन-क्रियाओ की विधि मे अवस्था के अनुसार अन्तर आता जाता है किन्तु इस बात मे तो दो राय हो ही नही सकती कि शैशव मे भी काम प्रवृत्ति वर्तमान रहती है। फ्रायड के अनुसार बच्चे की अनेक क्रियाएं काम-प्रवृत्ति की सतुष्टि के लिए ही होती हैं। प्रौढ व्यक्ति अपनी काम वासना की सतुष्टि शारीरिक ससर्ग से करता है और भिन्नलिंगी के साथ मैथुन के रूप मे ही काम पिपासा की शान्ति होती है किन्तु प्रारम्भ मे काम बुभुक्षा की शान्ति का ढग भिन्न होता है। फ्रायड के अनुसार बच्चे का पेशाब करना, शौच-क्रिया, अंगूठा चूसना, माँ के अङ्क मे चिपटना सभी कुछ कामुकता की तृप्ति ही है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि फ्रायड काम, लैंगिकता या सेक्स शब्द का प्रयोग संकुचित अर्थ मे नही करता है। उसके लिए 'सेक्स' एक जीवनदायिनी शक्ति के रूप मे है और इसका अर्थ बड़ा व्यापक है। फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व का निर्माण बाल्यकाल मे ही हो जाता है। बाल्यकाल के महत्व को जितना अधिक फ्रायड ने पहचाना इतना अधिक किसी भी अन्य मनोवैज्ञानिक ने नही पहचाना। फ्रायड का कहना है कि शैशव मे व्यक्ति अपनी यौन-इच्छाओ को दमित करता रहता है। इन यौन इच्छाओ से व्यक्ति किस प्रकार समजन करता है, इसी बात पर उसका व्यक्तित्व निर्भर करता है। शैशव काल की दमित यौन इच्छाओ की तृप्ति स्वप्न मे होती है। यदि सामान्य जीवन मे इस इच्छा की पूर्ति न हो सकी तो ये दमित इच्छाएँ अचेतन मन मे पडी रहकर षड्यन्त्र रचती रहती हैं और अपने प्रकाशन के लिए चेतन की आँखे बचाकर अन्य उपाय करती रहती है। विभिन्न प्रकार की मानसिक रचनाएँ[1] इसी प्रयत्न के परिणामस्वरूप अस्तित्व मे आ जाती है। स्थान परिवर्तन[2] प्रतिगमन[3] पूर्ति[4],

1 Mechanisms
2 Regression
3 Transference
4 Compensation

युक्तयाभास[1], विस्थापन[2], प्रक्षेपण[3], आत्मीकरण[4], प्रतिक्रिया-रचना[5] आदि इसी प्रकार की मानसिक रचनाएँ हैं। यदि इन मानसिक रचनाओ से भी समजन न हो सका तो व्यक्ति मे असाधारण मानसिक अवस्था आ जाती है और वह मनोस्नायुविकृति या विक्षिप्तता का शिकार हो जाता है। असामान्य मानसिक अवस्था का भी कारण, अर्थ एव प्रयत्नलाघव रहता है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि फ्रायड कार्य-कारण की व्यापकता पर अटूट विश्वास रखता है। उसके अनुसार मनोस्नायुविकृति, विक्षिप्तता एव मानसिक रचनाओ का कारण शैशव काल की दमित यौन इच्छाएँ ही है। फ्रायड के इस सिद्धान्त ने ससार मे तहलका मचा दिया है। कवियो, लेखको, उपन्यासकारो, कहानी-कारो एव नाटककारो मे से कुछ फ्रायड के चेले वन चुके हैं। मनोविज्ञान मे उसके योगदान की भूरि भूरि प्रशसा हो रही है। दार्शनिको ने भी उसके सिद्धान्त पर ध्यान दिया है। इन सवके वावजूद भी लोगो की दृष्टि मे फ्रायड के प्रति अभी भी सन्देह वना हुआ है। जिन वातो के कारण फ्रायड के ऊपर सन्देह किया जाता है उनमे शैशवकालीन यौन इच्छाएँ भी है। कुछ लोगो ने फ्रायड के इस सिद्धान्त को नैतिकता के लिए अभिशाप समझा है। उनकी दृष्टि मे फ्रायड ने ससार का हित करने की अपेक्षा हानि अधिक की है। इन आलोचनाओ मे अतिवाद का आश्रय लिया गया है। एक विशुद्ध वैज्ञानिक की दृष्टि से फ्रायड को जो कुछ कहना था उसने कह दिया। उसके सिद्धान्तो मे से सार-अंश को ग्रहण करना सभी का कर्त्तव्य है।

शैशव काल की यौन-इच्छाओ का अध्ययन करते हुए फ्रायड ने पितृ विरोधी ग्रन्थि[6] के रहस्य का भी उद्घाटन किया। इस ग्रन्थि को अंग्रेजी मे 'ईडिपस कम्पलेक्स' कहते हैं। इसके नामकरण का कारण एक यूनानी पौराणिक कथा है। कहते हैं एक राजा के

1 Rationalization
2 Displacemnte
3 Projection
4 Identification
5 Reaction formation
6 Oedipus Complex

एक पुत्र हुआ जिसका नाम ईडिपस रखा गया। ज्योतिषी ने भविष्य वाणी की कि यह बालक अपने पिता की हत्या कर देगा और अपनी माता से शादी करेगा। ऐसे भ्रष्ट बालक को रखने से कोई लाभ नही था अतः पिता ने उसे बाहर फिकवा दिया। उस शिशु का लालन-पालन एक गडरिए ने किया और बाद मे एक पडोसी राजा ने उसे गोद ले लिया। ईडिपस युवक बना। उस युवक ईडिपस को भी एक अन्य ज्योतिषी ने बताया कि वह अपनी माता से ही विवाह करेगा और पिता को मार डालेगा। ईडिपस को इससे बडी ग्लानि हुई और इस परिस्थिति से बचने के लिए वह अपने घर से भाग गया। वह नही जानता था कि उसके सच्चे पिता-माता कौन थे। भ्रमण की स्थिति मे उसने अपने वास्तविक पिता पर आक्रमण कर दिया और उसे मार डाला। विधवा रानी से उसने शादी भी कर ली। चार बच्चो के पैदा होने के बाद ईडिपस को यह मालूम हुआ कि उसकी पत्नी वस्तुत. उसकी माता है। पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए उसने अपनी दोनो आँखे निकाल ली और कष्टमय जीवन यापन किया। इस गाथा पर फ्रायड ने ध्यान दिया और कहा यह स्थिति किसी न किसी रूप मे हर परिवार मे होती है। पुत्र अपनी माता से अधिक प्रेम करता है। यौन इच्छा के कारण ही उसका माता के प्रति स्वाभाविक आकर्षण रहता है। वह अपनी माता की आज्ञा अधिक मानता है और माता के प्रेम का भूखा होता है। वह देखता है कि उसके और माता के बीच मे पिता सदा बाधा के रूप मे उपस्थित रहता है। माता उसके पिता की ओर ध्यान देती है और कभी-कभी पुत्र को उपेक्षित कर देती है। पुत्र के मन मे इसीलिए पिता के प्रति एक प्रकार की ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है। किन्तु वह सदा नैतिकता के उपदेश भी सुनता रहता है। उसे सदा यह कहा जाता है कि माता-पिता के प्रति श्रद्धा एव भक्ति रखनी चाहिए। इस स्थिति से मानसिक सघर्ष उत्पन्न होता है और बालक के मन मे पितृ विरोधी ग्रन्थि का निर्माण हो जाता है। जो हाल पुत्र और पिता के बीच होता है वही हाल माता और पुत्री के बीच मे। पुत्री पिता की ओर अधिक आकर्षित होती है और माता को अपने और पिता के बीच की बाधा समझ उससे ईर्ष्या करने लगती है। बालक आगे चलकर माता-

पिता की आज्ञा का उल्लंघन करते हैं। इसकी जड में यही ग्रन्थि है। इस ग्रन्थि के कारण बालक माता-पिता के अधिकार को चुनौती देते हैं और उद्दण्डतापूर्ण व्यवहार कर बैठते हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ब्राउन का कहना है कि फ्रायड 'ईडिपस कम्पलेक्स' के रहस्य तक इसलिए पहुँच सका क्योंकि वह स्वय इस ग्रन्थि का शिकार था। फ्रायड का पिता वृद्ध था और माता जवान थी। निश्चित है कि फ्रायड को पितृ-विरोधी ग्रन्थि की परिस्थितियो का सामना करना पडा होगा।

फ्रायड के प्रारम्भिक लेखो मे केवल काम-प्रवृत्ति का ही प्रवृत्ति के रूप मे जिक्र मिलता है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि फ्रायड ने प्रवृत्ति शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ मे किया है। इसमे मैकडगल की मूल प्रवृत्ति और व्यवहारवादियो की ईहा दोनो का भाव निहित है। इसीलिए फ्रायड को मूलप्रवृत्तिवादी कहना ठीक नही है। प्रारम्भ मे फ्रायड ने केवल एक ही प्रवृत्ति का उल्लेख किया और इसका नाम उसने काम-प्रवृत्ति[1] रखा। काम-प्रवृत्ति को उसने बडे व्यापक अर्थ मे लिया है। इसे उसने जीवन-प्रवृत्ति माना है। यौन-आचरण का आधार यही प्रवृत्ति है। काम-प्रवृत्ति मे एक शक्ति होती है जो व्यक्तियो के शारीरिक सम्पर्क के समय प्रकट होती है। इस शक्ति को फ्रायड ने लिबिडो[2] कहा है। लिबिडो काम प्रवृत्ति का एक भाग है या यो कहिए कि उसकी शक्तियो मे से एक शक्ति है। काम-प्रवृत्ति या जीवन-प्रवृत्ति की एक शक्ति लिबिडो शारीरिक सम्पर्क के रूप मे प्रकट होती है तो अन्य शक्तियाँ सरक्षण, निर्माण, रचना, सर्जन, भवन-निर्माण, भोजन करना आदि के रूप मे प्रकट होती हैं। आत्म-रक्षा एव जाति-वृद्धि इन दो अभिप्रेरणो को ही प्रारम्भ मे फ्रायड ने माना था। आत्म-रक्षा बुभुक्षा, पिपासा, भय, आत्म-सम्मान आदि के रूप मे प्रकट होती है और इसे उसने अहम्[3] की सज्ञा दी थी। दूसरा अभिप्रेरण भोग के रूप मे प्रकट होता है और इसे उसने लिबिडो कहा। अहम् यथार्थ जगत् से सम्बन्ध रखता है, लिबिडो भोग

[1] *Eros*, Sex or Life-instinct [2] Libido
[3] Ego

से। अहम् मे यथार्थता का सिद्धान्त[1] है और यह सदा वातावरण से सम्पर्क बनाए रखता है जबकि लिबिडो अचेतन से अधिक सम्बन्ध रखता है और इसमे सुख का सिद्धान्त[2] निहित रहता है। बाद मे फ्रायड ने इस सम्बन्ध मे अपना विचार बदल दिया। फ्रायड ने बाद मे मूल-प्रवृत्ति के रूप मे केवल काम-प्रवृत्ति या जीवन-प्रवृत्ति को ही न मानकर जीवन-प्रवृत्ति[3] एव मरण-प्रवृत्ति[4] दो को माना। उसने सन् १९१९ के बाद मे अपने अन्वेषणो मे देखा कि व्यक्ति केवल निर्माण ही नही करता वरन् विध्वस भी करता है। उसने देखा कि व्यक्ति मे रचना की प्रवृत्ति के साथ-साथ विनाश की भी प्रवृत्ति रहती है। उद्दण्डता, आत्महत्या, विनाशकारी प्रवृत्ति का ही परिणाम है। इन दोनो प्रवृत्तियो को परस्पर विरोधी समझना ठीक नही है। एक ही प्रकार के आचरण मे दोनो का हाथ हो सकता है। युवक अपनी प्रेमिका से जीवन-प्रवृत्ति के कारण ही प्रेम करता है किन्तु सच्चे प्रेम मे ईर्ष्या आदि भी निहित रहती है। प्रेम के साथ-साथ घृणा भी वर्तमान रहती है।

कभी-कभी व्यक्ति का लिबिडो किसी अन्य पदार्थ से सम्बद्ध न होकर अपने 'स्व' से ही सम्बद्ध हो जाता है। ऐसी स्थिति मे व्यक्ति अपनी आँख, कान, नाक, दाँत, गौरवर्ण, चेहरा, काले घुघराले बाल आदि से प्रेम करने लगता है। अपने से ही प्रेम करना आत्म-प्रेम[5] कहलाता है। फ्रायड ने बाद की रचनाओ मे आत्म-प्रेम पर विस्तृत रूप मे विचार किया है और इसे अनेक प्रकार के मनोविकारो का कारण माना है। भारतीय वाङ्मय मे रामायण मे 'नारदमोह' का एक कथानक आता है। स्वयवर मे बन्दर का रूप धारण किए नारद विष्णु की माया से रचित सुन्दरी के जयमाल की

[1] Reality Principle

[2] Life Instinct

[3] Pleasure Principle

[4] Death Instinct *or Thanatos*

[5] Narcissism

प्रतीक्षा करते समय आत्म-प्रेम के शिकार हो गये थे। सीजोफ्रेनिया के रोगी प्राय. आत्म-प्रेम मे ही डूबे रहते है।

फ्रायड ने गत्यात्मक[1] मन के तीन भागो का प्रतिभापूर्ण विवेचन किया है। पहला भाग तद् या इदम् का जिसे फ्रायड ने 'इड'[2] कहा है। हम इसे 'इदम्' कहेंगे। इदम् मे सुख का साम्राज्य रहता है और इससे अनेक प्रकार की इच्छाएँ एव वासनाएँ उत्पन्न होती हैं। दूसरा भाग है अहम्[3] जो यथार्थता से सम्बन्ध रखता है। अहम् मे 'स्व' की चेतना रहती है। गत्यात्मक मन का तीसरा भाग है परम-अहम्[4]। परम अहम् नैतिक आचरण से सम्बन्धित होता है। प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता है कि उसके अन्दर एक आत्मा का निवास है। जब वह 'मैं' कहता है तो इसे 'मैं' से उसी 'स्व' का बोध होता है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त यह 'मैं' का बोध अपरिवर्तित रहता है। सामान्य व्यक्ति के मन के या 'स्व' के अथवा मैं' के उपर्युक्त तीन भाग हैं। हमारी मनोजैविक शक्ति का अक्षय स्रोत इदम् है। इदम् मे ही जीवन तथा मरण की प्रवृत्तियाँ रहती है। इदम् सदा सुख की खोज मे रहता है और इसका सम्बन्ध यथार्थता से बिलकुल नही होता। प्रेम एव घृणा के प्रयत्नो मे इदम् का हाथ रहता है। इदम् सदा सवेग के स्तर पर ही रहता है अत इसमे सस्कृति एव सभ्यता का रग नही चढता है। बच्चो में इदम् प्रधान 'स्व' रहता है। अहम् का तात्पर्य चेतन बुद्धि से है। भौतिक जगत से अहम् का ही सम्बन्ध होता है। सामाजिक एवं व्यावहारिक यथार्थता से समजन करना एव तदनुसार आचरण को नियन्त्रित करना अहम् का ही कार्य है। इदम् की इच्छाओ एवं वास्तविकता के बीच मे सन्तुलन बनाने का कार्य अहम् ही करता है। परम-अहम् का विकास कुछ बाद मे होता है। इसका सम्बन्ध नैतिक मर्यादाओ से होता है। व्यक्ति के सामाजीकरण में इसी का हाथ है। परम-अहम् का विकास समाज की नैतिक परम्पराओ के द्वारा होता है।

[1] Dynamic
[2] Id
[3] Ego
[4] Super Ego

वह व्यक्ति की नैतिक चेतना है और आदर्शों एवं मूल्यों की चेतना इसी के द्वारा व्यक्ति के मन में बनी रहती है। इदम् तथा परम-अहम् में सदा संघर्ष चला करता है। इदम् व्यक्ति को असभ्य एवं असंस्कृत सुख की ओर खींचता है; परम-अहम् सांस्कृतिक उन्नयन की ओर। इन दोनो मे अहम् ही सन्तुलन स्थापित करता है।

फ्रायड के सिद्धान्तो से मानसिक रोगो की चिकित्सा मे अभूतपूर्व सफलता मिली है किन्तु मनोविश्लेषण जिस पद्धति को अपनाता है वह वैज्ञानिक पद्धति से भिन्न है। वैज्ञानिक पद्धति मे तथ्यों एव प्रमाणो के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाता है। फ्रायड ने भी प्रमाण प्रस्तुत किए हैं किन्तु उसके सिद्धान्तो एव तथ्यो मे ऐसा मिश्रण है कि यह पता लगाना कठिन है कि कौन सा भाग तथ्यो पर आधारित है और कौन-सा भाग सिद्धान्त मात्र है। फ्रायड के सिद्धान्तो को हम वैज्ञानिक विधि से प्रमाणित नही कर सकते किन्तु उसके सिद्धान्तो को वैज्ञानिक विधि से अप्रमाणित भी नही किया जा सकता। फ्रायड ने जितना अधिक काम-प्रवृत्ति पर बल दिया है वह भी विचारणीय है। उसके इस पक्ष पर तो उसके सहकारी एडलर[1] ने भी आपत्ति की। एडलर ने अपने मत को वैयक्तिक मनोविज्ञान[2] कहा और उसने हीन भाव को सबसे अधिक महत्वपूर्ण बताया। इसी हीनभाव से आत्म-प्रकाशन की प्रवृत्ति का उदय होता है जो जीवन की प्रमुख प्रेरणा है। व्यक्ति कुण्ठा एव नैराश्य के कारण कई प्रकार की मानसिक रचनाएँ अपनाता है। इन सब से उसकी जीवन शैली[3] बनती है। जीवन-शैली का निर्माण बाल्यावस्था मे ही होने लगता है। व्यक्ति-जीवन के तीन क्षेत्र है, केवल एक 'सेक्स' ही नही। ये तीन क्षेत्र हैं सामाजिक, व्यावसायिक और प्रेम सम्बन्धी। इन तीनो क्षेत्रो मे व्यक्ति की जीवन-शैली प्रकाशित होती है। व्यक्ति के अध्ययन एवं उसकी चिकित्सा के लिए उसकी जीवन-शैली का पता लगाना चाहिए।

[1] Alfred Adler [2] Individual Psychology
[3] Style of life

परिवार मे व्यक्ति का क्या स्थान था, इसका पूज्य कौन था, उसकी रुचि क्या है आदि बातो से जीवन-शैली का परिचय मिलता है। युग[1] ने भी फ्रायड से अलग होकर विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान[2] को जन्म दिया। मनोविकार के कारण के रूप मे उसने वर्तमान कुसमजन को ही मुख्य माना न कि शैशवकालीन काम सम्बन्धी कुसमजन को। बाल-व्यवहार तो प्रौढ व्यक्ति प्रतिगमन के कारण अपना लेता है किन्तु ऐसा वह नयी परिस्थितियो का सामना करने के लिए ही करता है। युग ने लिबिडो के यौन-रूप को सामान्य व्यापक रूप मे परिवर्तित कर दिया। उसने व्यक्तित्व के प्रकारो का प्रतिपादन किया और जातीय अचेतन[3] के प्रत्यय को जन्म दिया। इतनी भिन्नता होते हुये भी एडलर और युग दोनो ही ने मनोविश्लेषण की पद्धति को अपनाया।

फ्रायड के सिद्धान्तो एव उससे सम्बद्ध सिद्धान्तो की विवेचना के लिए एक पृथक् पुस्तक की आवश्यकता है। यहाँ पर उसके सभी सिद्धान्तो एव उसके अनुयायियो के मतो का विशद् विवेचन सम्भव नही है। यहाँ पर तो सक्षेप मे मनोविश्लेषण की भूमिका का ही वर्णन किया गया है। फ्रायड के मुख्य सिद्धान्तो को विहङ्गम दृष्टि से एक बार फिर देख लेना उचित होगा।

(१) व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यवहार अभिप्रेरित होता है।
(२) व्यवहार का कारण वासनाओ की तृप्ति है।
(३) मानसिक घटनाओ मे कार्यकारण का नियम व्याप्त है।
(४) ये कारण विगत अनुभव मे पाए जाते हैं।
(५) मनोस्नायुविकार इच्छाओ के दमन से उत्पन्न होते हैं।
(६) प्रत्येक व्यवहार सार्थक होता है।
(७) सभी व्यवहार प्रयत्नलाघव के नियम पर आधारित हैं।
(८) मनोस्नायुविकारो से दमित इच्छाओ की तुष्टि होती है।
(९) दमित इच्छाओ की तुष्टि मनोरचनाओ से भी होती है।

[1] Jung [2] Analytical Psychology
[3] Racial Unconscious

(१०) कोई भी सस्कार कभी मिटता नही।

(११) बाल्यावस्था की इच्छाएँ सदा जीवित रहती है।

(१२) ये इच्छाएँ मुख्यत. काम-प्रवृत्ति से सम्बन्धित होती हैं।

(१३) काम-प्रवृत्ति केवल कैशोर्य की विशेषता नही है। यह शैशव मे भी भिन्न रूप मे रहती है।

(१४) बालक को पितृविरोधी ग्रन्थि का शिकार होना पड़ता है।

(१५) सरचना की दृष्टि से मन मुख्यत चेतन और अचेतन दो प्रकार का होता है। दोनो के बीच मे प्राक्-चेतन भी होता है।

(१६) अचेतन मन को समझना अति आवश्यक है।

(१७) मुक्त साहचर्य, रेचन, स्वप्नविश्लेपण आदि मुख्य प्रविधियाँ है।

(१८) गत्यात्मक मन के तीन भाग है इदम्, अहम् और परम अहम्।

(१९) एडलर ने हीनभाव को मुख्य माना है। उसका मनोविज्ञान फ्रायड से कुछ भिन्न है। वह जीवन-शैली पर जोर देता है और जीवन के तीन क्षेत्र मानता है समाज, व्यवसाय और प्रेम।

(२०) युङ्ग वतमान समजन का समर्थक है। उसने जातीय अचेतन की वात कही है। उसने विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान की नीव डाली।

(२१) फ्रायड के सिद्धान्तो का अन्य मनोविश्लेषको की अपेक्षा अधिक प्रभाव पडा है।

BIBLIOGRAPHY

1. *Adler, A.* : **Problems of Neurosis,** New York : Cosmopolitan Book Co , 1930

2. *Angell, J. R.* The Province of functional psychology. **Psychol. Rev.,** 1907, 14, pp 61-91.

3. *Boring, E. G.*: **A History of Experimental Psychology,** New York Century Co., 1929.

4. *Brown, J F* . **Psychodynamics of Abnormal Behavior,** New York McGraw-Hill Book Co , 1940

5. *Carr, H* Functionalism In C Murchison, **Psychologies of 1930** , Worcester, Mass Clark Univ Press, 1930, pp. 59-78

6. *Charcot, J. M.* **Lectures on the Diseases of the Nervous System,** London . New Sydenham Society, 1877.

7. *Dunlop, K.* . Are there any Instincts ? **J Abn. Psychol** , 1919, 14, pp 307-311.

8. *Ebbinghaus, H* **Memory,** Translated by H. A Ruger and C.E Bussenius, New York Teachers College, Columbia University, 1913.

9. *Freud, S* . **Interpretation of Dreams** New York The Macmillan Co , 1913, (Eng Ed)

10. *Freud, S.* **Psychopathology of Everyday Life** New York The Macmillan Co , 1915. (Eng. Ed)

11. *Freud, S.* : **The History of the Psychoanalytic Movement,** New York : Nervous & Mental Disease Publishing Co , 1917. (Eng. Ed).

12. *Freud, S.* . **Beyond the Pleasure Principle,** New York Albert Charles Boni, 1922 (Eng. Ed)

13. *Freud, S* . **The Ego and the Id,** London : Hogarth Press, 1927 (Eng. Ed.).

14. *Freud, S.* **The Problem of Lay Analyses,** New York Brentanaos, 1927 (Eng. Ed.).

15. *Freud, S.* **New Introductory Lectures on Psychoanalysis,** New York W. W. Norton & Co , 1933. (Eng. Ed).

16 *Fromm, E* **Escape from Freedom,** New York : Farrar & Rinehart, 1947.

17. *Heidbreder, E.* **Seven Psychologies,** New York . Century Co , 1933.

18. *Hull, C. L.* **Principles of Behavior, Introduction to Behavior Theory.** New York ; D. Appleton Century Co , 1948.

19. *Hunter, W. S.* **Human Behavior,** Chicago University of Chicago Press , 1923.

20. *Hunter, W. S* **The Psychological Study of Behavior, Psychol. Rev.** 1932, 39, pp 1-24.

21. *Jacobi, J.* : **The Psychology of Jung,** Translated by K. W. Bash, New Haren . Yale Univ. Press, 1943

22. *James, W.* . **Principles of Psychology,** 2 Volumes, New York : Henry Holt & Co., 1890.

23. *Jung, C. G.* **Contributions to Analytical Psychology**, Translated by H. G. & C F. Boynes, New York Harcourt, Brace & Co , 1928.

24 *Koffka, K* . **Principles of Gestalt Psychology**, New York Harcourt, Brace & Co , 1935.

25. *Kohler, W.* **The Mentality of Apes**, New York Harcourt, Brace & Co , 1926

26. *Kohler, W.* **Gestalt Psychology**, New York . Liveright Publishing Co , 1929

27. *Lashley, K. S.* **Brain Mechanisms & Intelligence**, Chicago University of Chicago Press, 1929

28 *Lewin, K.* **A Dynamic Theory of Personality**, Translated by D K Adams and K E. Zener , New York . McGraw-Hill Book Co , 1935

29. *Lewin, K.* **Principles of Topological Psychology**, Translated by F. Heider and G M Heider, New York McGraw-Hill Book Co , 1936.

30 *Locke, J* · **An Essay Concerning Human Understanding**, London T Basset, 1690.

31. *McDougall, W* **Introduction to Social Phychology**, London Methuen & Co. Ltd , 5th Ed 1912.

32. *McDougall, W* **Outline of Psychology**, New York : Charles Scribner's Sons , 1923.

33. *Meninnger, K A* **Man Against Himself**, New York : 134, Harcourt, Brace & Co , 1938

34. *Skinner, B. F.* . **The Behavior of Organisms, An Experimental Analysis**, New York : D. Appleton Century Co , 1938.

35. *Titchener, E. B.* **A Textbook of Psychology**, New York · .The Macmillan Co , 1909-10.

36. *Titchener, E. B* · **A Beginner's Psychology**, New York The Macmillan & Co., 1915.

37. *Tolman, E. C* **Purposive Behavior in Animals and Men**, New York Century Co., 1932.

38. *Tolman, E. C.* **Drives toward War**, New York : · D. Appleton Century Co , 1942

39. *Warren, H C.* **A History of the Association Psychology**, New York Charles Scribner's Sons, 1921.

40. *Watson, J. B* **Behavior . An Introduction to Comparative Psychology**, New York : Henry Holt & Co , 1914.

41. *Watson, J B.* **Psychology from the Standpoint of a Behaviorist**, Philadelphia J. B. Lippincott & Co , 1919

42. *Watson, J. B.* : **Behaviorism**, New York People's Institute Publishing Company, 1924-25. Revised Edition from New York : W. W. Norton & Co., 1930

43. *Wertheimer, M* **Productive Thinking**, New York . Harper and Brothers, 1945.

44. *Woodworth, R S* **Experimental Psychology**, New York Henry Holt & Co , 1938.

45. *Woodworth, R. S.* **Contemporary Schools of Psychology**, Bombay . Asian Publishing House, First Asian Edition, 1961, First published in Great Britain in 1931.

૨. સહસાત્કારદોષ—સામાયિકમાં સાહસથી અવિચારપૂર્વક વાક્ય બોલવું તે 'સહસાત્કારદોષ.'

૩. અસદારોપણદોષ—બીજાને ખોટો બોધ આપે, તે 'અસદારોપણદોષ.'

૪. નિરપેક્ષદોષ—સામાયિકમાં શાસ્ત્રની દરકાર વિના વાક્ય બોલે તે 'નિરપેક્ષદોષ.'

૫. સંક્ષેપદોષ—સૂત્રના પાઠ ઈત્યાદિક ટુંકામાં બોલી નાખે; અને યથાર્થ ઉચ્ચાર કરે નહીં તે 'સંક્ષેપદોષ.'

૬. ક્લેશદોષ—કોઇથી કંકાશ કરે તે 'ક્લેશદોષ.'

૭. વિકથાદોષ—ચાર પ્રકારની વિકથા માંડી બેસે તે 'વિકથાદોષ.'

૮. હાસ્યદોષ—સામાયિકમાં કોઈની હાંસી, મશ્કરી કરે તે 'હાસ્યદોષ.'

૯. અશુદ્ધદોષ—સામાયિકમાં સૂત્રપાઠ ન્યૂનાધિક અને અશુદ્ધ બોલે તે 'અશુદ્ધદોષ.'

૧૦. મુણમુણદોષ—ગડબડગોટાથી સામાયિકમાં સૂત્રપાઠ બોલે જે પોતે પણ પૂરું માંડ સમજી શકે તે 'મુણમુણદોષ.'

એ વચનના દશ દોષ કહ્યા; હવે કાયાના બાર દોષ કહું છું.

૧. અયોગ્યઆસનદોષ—સામાયિકમાં પગપર પગ ચઢાવી બેસે એ ગુર્વાદિકનું અવિનયરૂપ આસન માટે એ પહેલો 'અયોગ્યઆસનદોષ.'

૨. ચલાસનદોષ—ડગડગતે આસને બેસી સામાયિક કરે, અથવા વારંવાર જ્યાંથી ઉઠવું પડે તેવે આસને બેસે તે 'ચલાસનદોષ.'

૩. ચલદ્રષ્ટિદોષ—કાર્યોત્સર્ગમાં આંખો ચંચળ રાખે એ 'ચલદ્દષ્ટિદોષ.'

૪. સાવદ્યક્રિયાદોષ—સામાયિકમાં કંઇ પાપ ક્રિયા કે તેની સંજ્ઞા કરે તે 'સાવદ્યક્રિયાદોષ.'

૫. આલંબનદોષ—ભીંતાદિકે ઓઠીંગણ દઇ બેસે એથી ત્યાં બેઠેલા જંતુ આદિકનો નાશ થાય અને પોતાને પ્રમાદ થાય, તે 'આલંબનદોષ.'

૬. આકુંચનપ્રસારણદોષ—હાથ પગ સંકોચે, લાંબા કરે એ આદિ તે 'આકુંચનપ્રસારણદોષ.'

૭. આલસદોષ—અંગ મરડે, ટચાકા વગાડે એ આદિ તે 'આલસદોષ.'

૮. મોટનદોષ—આંગળી વગેરે વાંકી કરે, ટચાકા વગાડે તે મોટનદોષ.

૯. મલદોષ—ઘરડાઘરડ કરી સામાયિકમાં ચળ કરી મેલ ખંખેરે તે 'મલદોષ.'

૧૦. વિમાસણદોષ—ગળામાં હાથ નાખી બેસે ઇ૦ તે 'વિમાસણદોષ.'

૧૧. નિદ્રાદોષ—સામાયિકમાં ઉંઘ આવવી તે 'નિદ્રાદોષ.'

૧૨. વસ્ત્રસંકોચન—સામાયિકમાં ટાઢ પ્રમુખની ભીતિથી વસ્ત્રથી શરીર સંકોચે તે 'વસ્ત્રસંકોચનદોષ.'

એ બત્રીશ દૂષણરહિત સામાયિક કરવી; પાંચ અતિચાર ટાળવા.

શિક્ષાપાઠ ૩૯. સામાયિકવિચાર ભાગ ૩—

એકાગ્રતા અને સાવધાની વિના એ બત્રીશ દોષમાંના અમુક દોષ પણ આવી જાય છે. વિજ્ઞાનવેત્તાઓએ સામાયિકનું જઘન્ય પ્રમાણ બે ઘડીનું બાંધ્યું છે. એ વ્રત સાવધાની પૂર્વક કરવાથી પરમશાંતિ આપે છે. કેટલાકનો એ બે ઘડીનો કાળ જ્યારે જતો નથી ત્યારે તેઓ બહુ કંટાળે છે. સામાયિકમાં નવરાશ લઇને બેસવાથી કાળ જાય પણ ક્યાંથી? આધુનિક કાળમાં સાવધાનીથી સામાયિક કરનારા બહુ જ થોડા છે. પ્રતિક્રમણ સામાયિકની સાથે કરવાનું હોય છે ત્યારે તો વખત જવો સુગમ પડે છે. જો કે એવા પામરો પ્રતિક્રમણ લક્ષ પૂર્વક કરી શકતા નથી, તોપણ કેવળ નવરાશ કરતાં એમાં જરૂર કંઇક ફેર પડે છે. સામાયિક પણ પૂરૂં જેઓને આવડતું નથી તેઓ બિચારા સામાયિકમાં પછી બહુ મુંઝાય છે. કેટલાક ભારે કર્મીઓ એ અવસરમાં વ્યવહારના પ્રપંચો પણ ઘડી રાખે છે. આથી સામાયિક બહુ દોષિત થાય છે.

વિધિપૂર્વક સામાયિક ન થાય એ બહુ ખેદકારક અને કર્મની બાહુલ્યતા છે. સાઠ ઘડીના અહોરાત્ર વ્યર્થ ચાલ્યા જાય છે. અસંખ્યાતા દિવસથી ભરેલાં અનંતા કાળચક્ર વ્યતીત કરતાં પણ જે સાર્થક ન થયું તે બે ઘડીની વિશુદ્ધ

સામાયિક સાર્થક કરે છે. લક્ષપૂર્વક સામાયિક થવા માટે સામાયિકમાં પ્રવેશ કર્યા પછી ચાર લોગસ્સથી વધારે લોગસ્સનો કાયોત્સર્ગ કરી ચિત્તની કંઇક સ્વસ્થતા આણવી. પછી સૂત્રપાઠ કે ઉત્તમ ગ્રંથનું મનન કરવું. વૈરાગ્યનાં ઉત્તમ કાવ્યો બોલવાં, પાછળનું અધ્યયન કરેલું સ્મરણ કરી જવું, નૂતન અભ્યાસ થાય તો કરવો. કોઈને શાસ્ત્રાધારથી બોધ આપવો; એમ સામાયિકીકાળ વ્યતીત કરવો. મુનિરાજનો જો સમાગમ હોય તો આગમવાણી સાંભળવી અને તે મનન કરવી, તેમ ન હોય અને શાસ્ત્રપરિચય ન હોય તો વિચક્ષણ અભ્યાસી પાસેથી વૈરાગ્યબોધક કથન શ્રવણ કરવું; કિંવા કંઇ અભ્યાસ કરવો. એ સઘળી યોગવાઇ ન હોય તો કેટલોક ભાગ લક્ષપૂર્વક કાયોત્સર્ગમાં રોકવો; અને કેટલોક ભાગ મહાપુરુષોનાં ચરિત્રકથામાં ઉપયોગપૂર્વક રોકવો; પરંતુ જેમ બને તેમ વિવેકથી અને ઉત્સાહથી સામાયિકી કાળ વ્યતીત કરવો. કંઈ સાહિત્ય ન હોય તો પંચ પરમેષ્ઠીમંત્રનો જાપ જ ઉત્સાહપૂર્વક કરવો. પણ વ્યર્થ કાળ કાઢી નાખવો નહીં. ધીરજથી, શાંતિથી અને યત્નાથી સામાયિક કરવું. જેમ બને તેમ સામાયિકમાં શાસ્ત્રપરિચય વધારવો.

સાઠ ઘડીના વખતમાંથી બે ઘડી અવશ્ય બચાવી સામાયિક તો સદ્‌ભાવથી કરવું.



શિક્ષાપાઠ ૪૦. પ્રતિક્રમણ વિચાર—

પ્રતિક્રમણ એટલે સામું જવું—સ્મરણ કરી જવું—ફરીથી જોઇ જવું—એમ એનો અર્થ થઈ શકે છે. [૧] જે દિવસે જે વખતે પ્રતિક્રમણ કરવા બેઠા તે વખતની અગાઉ તે દિવસે જે જે દોષ થયા છે તે એક પછી એક જોઇ જવા અને તેનો પશ્ચાત્તાપ કરવો કે દોષનું સ્મરણ કરી જવું વિગેરે સામાન્ય અર્થ પણ છે.

ઉત્તમ મુનિઓ અને ભાવિક શ્રાવકો સંધ્યાકાળે અને રાત્રિના પાછળના ભાગમાં દિવસે અને રાત્રે એમ અનુક્રમે થયેલા દોષનો પશ્ચાત્તાપ કે ક્ષમાપના ઇચ્છે છે એનું નામ અહીં આગળ પ્રતિક્રમણ છે. એ પ્રતિક્રમણ આપણે પણ અવશ્ય કરવું; કારણ આત્મા મન, વચન અને કાયાના યોગથી અનેક પ્રકારનાં કર્મ બાંધે છે. પ્રતિક્રમણસૂત્રમાં એનું દોહન કરેલું છે; જેથી દિવસરાત્રમાં થયેલાં પાપનો પશ્ચાત્તાપ તે વડે થઈ શકે છે. શુદ્ધભાવ વડે કરી પશ્ચાત્તાપ કરવાથી લેશ પાપ થતાં પરલોકભય અને અનુકંપા છૂટે છે; આત્મા કોમળ થાય છે. ત્યાગવા યોગ્ય વસ્તુનો વિવેક આવતો જાય છે. ભગવાન સાક્ષીએ અજ્ઞાન ઇ૦ જે જે દોષ વિસ્મરણ થયા હોય તેનો પશ્ચાત્તાપ પણ થઇ શકે છે આમ એ નિર્જરા કરવાનું ઉત્તમ સાધન છે.

એનું 'આવશ્યક' એવું પણ નામ છે. આવશ્યક એટલે

---

૧. દ્વિ૦ આ૦ પાઠાં૦—ભાવની અપેક્ષાએ જે દિવસે જે વખતે પ્રતિક્રમણ કરવાનું થાય.' તે વખતની અગાઉ અથવા તે દિવસે જે જે દોષ થયા હોય તે એક પછી એક અંતરાત્મભાવે જોઇ જવા અને તેનો પશ્ચાત્તાપ કરી દોષથી પાછું વળવું તે પ્રતિક્રમણ.

અવશ્ય કરીને કરવા યોગ્ય; એ સત્ય છે. તે વડે આત્માની મલિનતા ખસે છે, માટે અવશ્ય કરવા યોગ્ય જ છે.

સાયંકાળે જે પ્રતિક્રમણ કરવામાં આવે છે તેનું નામ દેવસીય પડિક્કમણું એટલે દિવસસંબંધી પાપનો પશ્ચાત્તાપ; અને રાત્રિના પાછલા ભાગમાં જે પ્રતિક્રમણ કરવામાં આવે છે તે રાઇ પડિક્કમણું કહેવાય છે. દેવસીય અને રાઇ એ પ્રાકૃત ભાષાના શબ્દો છે. પખવાડીએ કરવાનું પ્રતિક્રમણ તે પાક્ષિક અને સંવત્સરે કરવાનું તે સાંવત્સરિક કહેવાય છે. સત્પુરૂષોએ યોજનાથી બાંધેલો એ સુંદર નિયમ છે.

કેટલાક સામાન્ય બુદ્ધિમાનો એમ કહે છે કે દિવસ અને રાત્રિનું સવારે પ્રાયશ્ચિત્તરૂપ પ્રતિક્રમણું કર્યું હોય તો કંઇ ખોટું નથી, પરંતુ એ કહેવું પ્રમાણિક નથી. રાત્રિએ અકસ્માત અમુક કારણ કે કાળધર્મ થઇ પડે તો દિવસ સંબંધી પણ રહી જાય.

પ્રતિક્રમણસૂત્રની યોજના બહુ સુંદર છે. એનાં મૂળતત્ત્વ બહુ ઉત્તમ છે. જેમ બને તેમ પ્રતિક્રમણ ધીરજથી, સમજાય એવી ભાષાથી, શાંતિથી, મનની એકાગ્રતાથી અને યત્નાપૂર્વક કરવું.

શિક્ષાપાઠ ૪૧. ભિખારીનો ખેદ, ભાગ ૧.—

એક પામર ભિખારી જંગલમાં ભટકતો હતો. ત્યાં તેને ભૂખ લાગી એટલે તે બિચારો લડથડીઆં ખાતો ખાતો

એક નગરમાં એક સામાન્ય મનુષ્યને ઘેર પહોંચ્યો. ત્યાં જઇને તેણે અનેક પ્રકારની આજીજી કરી; તેના કાલાવાલાથી કરુણા પામીને તે ગૃહસ્થની સ્ત્રીએ તેને ઘરમાંથી જમતાં વધેલું મિષ્ટાન્ન ભોજન આણી આપ્યું. ભોજન મળવાથી ભિખારી બહુ આનંદ પામતો પામતો નગરની બહાર આવ્યો; આવીને એક ઝાડ તળે બેઠો; ત્યાં જરા સ્વચ્છ કરીને એક બાજુએ અતિ જૂનો થયેલો પોતાનો જળનો ઘડો મૂકયો. એક બાજુએ પોતાની ફાટીતૂટી મલિન ગોદડી મૂકી અને એક બાજુએ પોતે તે ભોજન લઇને બેઠો. રાજી રાજી થતાં એણે તે ભોજન ખાઇને પૂરું કર્યું. ઓશિકે પછી એક પથ્થર મૂકીને તે સૂતો. ભોજનના મદથી જરા-વારમાં તેની આંખો મિંચાઈ ગઈ. નિદ્રાવશ થયો એટલે તેને એક સ્વપ્નું આવ્યું; પોતે જાણે મહા રાજરિદ્ધિને પામ્યો છે; સુંદર વસ્ત્રાભૂષણ ધારણ કર્યાં છે, દેશ આખામાં પોતાના વિજયનો ડંકો વાગી ગયો છે; સમીપમાં તેની આજ્ઞા અવલંબન કરવા અનુચરો ઉભા થઇ રહ્યા છે; આજુ-બાજુ છડીદારો ખમા ખમા પોકારે છે; એક રમણીય મહેલમાં સુંદર પલંગપર તેણે શયન કર્યું છે; દેવાંગના જેવી સ્ત્રીઓ તેના પગ ચાંપે છે; પંખાથી એક બાજુએથી પંખાનો મંદ મંદ પવન ઢોળાય છે; એવા સ્વપ્નામાં તેનો આત્મા ચઢી ગયો. તે સ્વપ્નાના ભોગ લેતાં તેનાં રોમ ઉલ્લસી ગયાં. એવામાં મેઘ મહારાજા ચઢી આવ્યા, વીજળીના ઝબકારા થવા લાગ્યા; સૂર્ય દેવ વાદળાંથી ઢંકાઇ ગયો; સર્વત્ર અંધકાર પથરાઇ ગયો; મુશલધાર વર્ષાદ થશે એવું જણાયું અને એટલામાં ગાજવીજથી એક પ્રબળ કડાકો થયો. કડાકાના અવાજથી ભય પામીને

તે પામર ભિખારી બિચારો જાગી ગયો.

શિક્ષાપાઠ ૪૨. ભિખારીનો ખેદ, ભાગ ૨.—

જુએ છે તો જે સ્થળે પાણીનો ખોખરો ઘડો પડયો હતો તે સ્થળે તે ઘડો પડયો છે; જ્યાં ફાટીતૂટી ગોદડી પડી હતી ત્યાં જ તે પડી છે. પોતે જેવાં મલિન અને ગોખ-જાળીવાળાં કપડાં ધારણ કર્યાં હતાં તેવાં ને તેવાં શરીર ઉપર તે વસ્ત્રો બિરાજે છે. નથી તલભાર વધ્યું કે નથી જવભાર ઘટયું. નથી તે દેશ કે નથી તે નગરી, નથી તે મહેલ કે નથી તે પલંગ; નથી તે ચામરછત્ર ધરનારા કે નથી તે છડીદારો; નથી તે સ્ત્રીઓ કે નથી તે વસ્ત્રાલંકારો; નથી તે પંખા કે નથી તે પવન; નથી તે અનુચરો કે નથી તે આજ્ઞા; નથી તે સુખ વિલાસ કે નથી તે મદોન્મત્તતા, ભાઈ તો પોતે જેવા હતા તેવાને તેવા દેખાયા. એથી તે દેખાવ જોઈને તે ખેદ પાંમ્યો. સ્વપ્નામાં મેં મિથ્યા આડંબર દીઠો. તેથી આનંદ માન્યો; એમાંનું તો અહીં કશુંએ નથી; સ્વપ્નાના ભોગ ભોગવ્યા નહીં; અને તેનું પરિણામ જે ખેદ તે હું ભોગવું છું. એમ એ પામર જીવ પશ્ચાત્તાપમાં પડી ગયો.

અહો ભવ્યો ! ભિખારીનાં સ્વપ્ના જેવાં સંસારનાં સુખ અનિત્ય છે. સ્વપ્નામાં જેમ તે ભિખારીએ સુખ સમુદાય દીઠા અને આનંદ માન્યો તેમ પામર પ્રાણીઓ સંસારસ્વપ્નના સુખ સમુદાયમાં આનંદ માને છે. જેમ તે સુખ સમુદાય જાગૃતિમાં મિથ્યા જણાયા તેમ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થતાં સંસારનાં સુખ તેવાં જણાય છે. સ્વપ્નાના ભોગ ન ભોગવ્યા છતાં જેમ

ભિખારીને ખેદની પ્રાપ્તિ થઈ, તેમ મોહાંધ પ્રાણીઓ સંસારમાં સુખ માની બેસે છે; અને ભોગવ્યા સમ ગણે છે; પરંતુ પરિણામે ખેદ, દુર્ગતિ અને પશ્ચાત્તાપ લે છે. તે ચપળ અને વિનાશી છતાં સ્વપ્નના ખેદ જેવું તેનું પરિણામ રહ્યું છે. એ ઉપરથી બુદ્ધિમાન પુરુષો આત્મહિતને શોધે છે. સંસારની અનિત્યતા પર એક કાવ્ય છે કેઃ—

ઉપજાતિ.

વિદ્યુત્ લક્ષ્મી પ્રભુતા પતંગ, આયુષ્ય તે તો જળના તરંગ;
પુરંદરી ચાપ અનંગરંગ, શું રાચિયે ત્યાં ક્ષણનો પ્રસંગ ?

વિશેષાર્થઃ—લક્ષ્મી વીજળી જેવી છે. વીજળીનો ઝબકારો જેમ થઈને ઓલવાઈ જાય છે, તેમ લક્ષ્મી આવીને ચાલી જાય છે. અધિકાર પતંગના રંગ જેવો છે. પતંગનો રંગ જેમ ચાર દિવસની ચટકી છે; તેમ અધિકાર માત્ર થોડો કાળ રહી હાથમાંથી જતો રહે છે. આયુષ્ય પાણીનાં મોજાં જેવું છે. પાણીનો હિલોળો આવ્યો કે ગયો તેમ જન્મ પામ્યા, અને એક દેહમાં રહ્યા કે ન રહ્યા ત્યાં બીજા દેહમાં પડવું પડે છે. કામભોગ આકાશમાં ઉત્પન્ન થતા ઇંદ્રના ધનુષ્ય જેવા છે; જેમ ઇંદ્રિધનુષ્ય વર્ષાકાળમાં થઈને ક્ષણવારમાં લય થઈ જાય છે; તેમ યૌવનમાં કામના વિકાર ફળીભૂત થઈ જરા વયમાં જતા રહે છે; ટુંકામાં હે જીવ ! એ સઘળી વસ્તુઓનો સંબંધ ક્ષણભર છે. એમાં પ્રેમબંધનની સાંકળે બંધાઈને શું રાચવું ? તાત્પર્ય એ સઘળાં ચપળ અને વિનાશી છે, તું અખંડ અને અવિનાશી છે; માટે તારા જેવી નિત્ય વસ્તુને પ્રાપ્ત કર ! એ બોધ યથાર્થ છે.

શિક્ષાપાઠ ૪૩. અનુપમ ક્ષમા.—

ક્ષમા એ અંતર્શત્રુ જીતવામાં ખડ્ગ છે. પવિત્ર આચારની રક્ષા કરવામાં બખ્તર છે. શુદ્ધભાવે અસહ્ય દુઃખમાં સમપરિણામથી ક્ષમા રાખનાર મનુષ્ય ભવસાગર તરી જાય છે.

કૃષ્ણ વાસુદેવના ગજસુકુમાર નામના નાના ભાઈ મહાસુરૂપવાન, સુકુમાર માત્ર બાર વર્ષની વયે ભગવાન નેમિનાથની પાસેથી સંસારત્યાગી થઇ સ્મશાનમાં ઉગ્ર ધ્યાનમાં રહ્યા હતા; ત્યારે તેઓ એક અદ્‌ભુત ક્ષમામય ચરિત્રથી મહાસિદ્ધિને પામી ગયા, તે અહીં કહું છું.

સોમલ નામના બ્રાહ્મણની સુરૂપવર્ણસંપન્ન પુત્રી વેરે ગજસુકુમારનું સગપણ કર્યું હતું. પરંતુ લગ્ન થયા પહેલાં ગજસુકુમાર તો સંસાર ત્યાગી ગયા. આથી પોતાની પુત્રીનું સુખ જવાના દ્વેષથી તે સોમલ બ્રાહ્મણને ભયંકર ક્રોધ વ્યાપ્યો. ગજસુકુમારનો શોધ કરતો કરતો એ સ્મશાનમાં જ્યાં મહામુનિ ગજસુકુમાર એકાગ્ર વિશુદ્ધભાવથી કાયોત્સર્ગમાં છે, ત્યાં આવી પહોંચ્યો. કોમળ ગજસુકુમારના માથાપર ચીકણી માટીની વાડ કરી; અને અંદર ધખધખતા અંગારા ભર્યા, ઈંધન પૂર્યું એટલે મહાતાપ થયો. એથી ગજસુકુમારનો કોમળ દેહ બળવા માંડયો એટલે તે સોમલ જતો રહ્યો. એ વેળા ગજસુકુમારના અસહ્ય દુઃખમાં કહેવું પણ શું હોય ? પરંતુ ત્યારે તે સમભાવ પરિણામમાં રહ્યા. કિંચિત્ ક્રોધ કે દ્વેષ એના હૃદયમાં જન્મ પામ્યો નહીં. પોતાના આત્માને સ્થિતિસ્થાપક કરીને બોધ દીધો કે જો ! તું એની પુત્રીને પરણ્યો હોત તો એ કન્યાદાનમાં તને પાઘડી આપત. એ પાઘડી થોડા વખતમાં ફાટી જાય તેવી

અને પરિણામે દુઃખદાયક થાત. આ એનો બહુ ઉપકાર થયો કે એ પાઘડી બદલ એણે મોક્ષની પાઘડી બંધાવી. એવા વિશુદ્ધ પરિણામથી અડગ રહી સમભાવથી તે અસહ્ય વેદના સહીને સર્વજ્ઞ સર્વદર્શી થઇ અનંત જીવન સુખને પામ્યા. કેવી અનુપમ ક્ષમા અને કેવું તેનું સુંદર પરિણામ ! તત્વજ્ઞાનીઓનાં વચન છે કે, આત્મા માત્ર સ્વસદ્‌ભાવમાં આવવો જોઇએ; અને તે આવ્યો તો મોક્ષ હથેળીમાં જ છે. ગજસુકુમારની નામાંકિત ક્ષમા કેવો વિશુદ્ધ બોધ કરે છે !

શિક્ષાપાઠ ૪૪. રાગ.—

શ્રમણ ભગવાન મહાવીરના અગ્રેસર ગણધર ગૌતમનું નામ તમે બહુવાર વાંચ્યું છે. ગૌતમસ્વામીના બોધેલા કેટલાક શિષ્યો કેવળજ્ઞાન પામ્યા છતાં ગૌતમ પોતે કેવળજ્ઞાન પામતા નહોતા, કારણ ભગવાન મહાવીરનાં અંગોપાંગ, વર્ણ, વાણી, રૂપ ઇત્યાદિક પર હજુ ગૌતમને મોહિની હતી. નિર્ગ્રંથ પ્રવચનનો નિષ્પક્ષપાતી ન્યાય એવો છે કે, ગમે તે વસ્તુપરનો રાગ દુઃખદાયક છે. રાગ એ મોહિની અને મોહિની એ સંસાર જ છે. ગૌતમના હૃદયથી એ રાગ જ્યાંસુધી ખસ્યો નહીં ત્યાંસુધી તેઓ કેવળજ્ઞાન પામ્યા નહીં. પછી શ્રમણ ભગવાન જ્ઞાતપુત્ર જ્યારે અનુપમેય સિદ્ધિને પામ્યા, ત્યારે ગૌતમ નગરમાંથી આવતા હતા. ભગવાનના નિર્વાણ સમાચાર સાંભળીને તેઓ ખેદ પામ્યા. વિરહથી તેઓ અનુરાગ વચનથી બોલ્યાઃ “ હે મહાવીર ! તમે મને સાથે

તો ન લીધો, પરંતુ સંભાર્યોયે નહીં. મારી પ્રીતિ સામી તમે દૃષ્ટિ પણ કરી નહીં! આમ તમને છાજતું નહોતું." એવા તરંગો કરતાં કરતાં તેનું લક્ષ ફર્યું ને તે નિરાગ શ્રેણિએ ચઢયા; "હું બહુ મૂર્ખતા કરું છું. એ વીતરાગ, નિર્વિકારી અને નિરાગી તે મારામાં કેમ મોહિની રાખે? એની શત્રુ અને મિત્રપર કેવળ સમાન દૃષ્ટિ હતી; હું એ નિરાગીનો મિથ્યા મોહ રાખું છું. મોહ સંસારનું પ્રબળ કારણ છે;" એમ વિચારતાં વિચારતાં તેઓ શોક તજીને નિરાગી થયા. એટલે અનંતજ્ઞાન પ્રકાશિત થયું; અને પ્રાંતે નિર્વાણ પધાર્યા.

ગૌતમમુનિનો રાગ આપણને બહુ સૂક્ષ્મ બોધ આપે છે. ભગવાન પરનો મોહ ગૌતમ જેવા ગણધરને દુઃખદાયક થયો, તોપછી સંસારનો, તે વળી પામર આત્માઓનો મોહ કેવું અનંત દુઃખ આપતો હશે! સંસારરૂપી ગાડીને રાગ દ્વેષ એ બે રૂપી બળદ છે. એ ન હોય તો સંસારનું અટકન છે. જ્યાં રાગ નથી ત્યાં દ્વેષ નથી; આ માન્ય સિદ્ધાંત છે. રાગ તીવ્ર કર્મબંધનનું કારણ છે; એના ક્ષયથી આત્મસિદ્ધિ છે.

શિક્ષાપાઠ ૪૫. સામાન્ય મનોરથ.—

સવૈયા.

મોહિનીભાવ વિચાર અધીન થઈ, ના નીરખું નયને પરનારી;
પત્થરતુલ્ય ગણું પરવૈભવ, નિર્મળ તાત્વિક લોભ સમારી!
દ્વાદશ વ્રત અને દીનતા ધરી, સાત્વિક થાઉં સ્વરૂપ વિચારી;
એ મુજ નેમ સદા શુભ ક્ષેમક, નિત્ય અખંડ રહો ભવહારી. ૧
તે ત્રિશલાતનયે મન ચિંતવી, જ્ઞાન, વિવેક, વિચાર વધારું;

નિત્ય વિશોધ કરી નવ તત્ત્વનો, ઉત્તમ બોધ અનેક ઉચ્ચારું.
સંશયબીજ ઉગે નહીં અંદર, જે જિનનાં કથનો અવધારું;
રાજ્ય, સદા મુજ એજ મનોરથ, ધાર, થશે અપવર્ગ–ઉતારું. ૨

શિક્ષાપાઠ ૪૬. કપિલમુનિ, ભાગ ૧.—

કૌશાંબી નામની એક નગરી હતી. ત્યાંના રાજદરબારમાં રાજ્યનાં આભૂષણરૂપ કાશ્યપ નામનો એક શાસ્ત્રી રહેતો હતો. એની સ્ત્રીનું નામ શ્રીદેવી હતું. તેના ઉદરથી કપિલ નામનો એક પુત્ર જન્મ્યો હતો. તે પંદર વર્ષનો થયો ત્યારે તેના પિતા પરધામ ગયા. કપિલ લાડપાલમાં ઉછરેલો હોવાથી કંઈ વિશેષ વિદ્વતા પામ્યો નહતો, તેથી એના પિતાની જગો કોઇ બીજા વિદ્વાનને મળી. કાશ્યપશાસ્ત્રી જે પુંજી કમાઇ ગયા હતા તે કમાવામાં અશક્ત એવા કપિલે ખાઈને પૂરી કરી. શ્રીદેવી એક દિવસ ઘરના બારણામાં ઉભી હતી; ત્યાં બે ચાર નોકરો સહિત પોતાના પતિની શાસ્ત્રિપદવી પામેલો વિદ્વાન જતો તેના જોવામાં આવ્યો. ઘણા માનથી જતા આ શાસ્ત્રીને જોઇને શ્રીદેવીને પોતાની પૂર્વ સ્થિતિનું સ્મરણ થઇ આવ્યું. જ્યારે મારા પતિ આ પદવીપર હતા ત્યારે હું કેવું સુખ ભોગવતી હતી! એ મારું સુખ તો ગયું પરંતુ મારો પુત્ર પણ પૂરું ભણ્યોએ નહીં. એમ વિચારમાં ડોલતાં ડોલતાં તેની આંખમાંથી દડ દડ આંસુ ખરવા મંડયાં. એવામાં ફરતો ફરતો કપિલ ત્યાં આવી પહોંચ્યો; શ્રીદેવીને રડતી જોઇ તેનું કારણ પૂછ્યું. કપિલના બહુ આગ્રહથી શ્રીદેવીએ જે હતું તે કહી બતાવ્યું. પછી કપિલ બોલ્યો "જો મા! હું બુદ્ધિશાળી છું,

પરંતુ મારી બુદ્ધિનો ઉપયોગ જેવો જોઈએ તેવો થઇ શક્યો નથી. એટલે વિદ્યા વગર હું એ પદવી પામ્યો નહીં. તું કહે ત્યાં જઈને હવે હું મારાથી બનતી વિદ્યા સાધ્ય કરું." શ્રીદેવીએ ખેદ સાથે કહ્યું: "એ તારાથી બની શકે નહીં, નહીં તો આર્યાવર્તની મર્યાદા પર આવેલી શ્રાવસ્તી નગરીમાં ઇંદ્રદત્ત નામનો તારા પિતાનો મિત્ર રહે છે, તે અનેક વિદ્યાર્થીઓને વિદ્યાદાન દે છે; જો તારાથી ત્યાં જવાય તો ધારેલી સિદ્ધિ થાય ખરી." એક બે દિવસ રોકાઈ સજ્જ થઇ, અસ્તુ કહી કપિલજી પંથે પળ્યા.

અવધ વીતતાં કપિલ શ્રાવસ્તીએ શાસ્ત્રીજીને ઘેર આવી પહોંચ્યા. પ્રણામ કરીને પોતાનો ઇતિહાસ કહી બતાવ્યો. શાસ્ત્રીજીએ મિત્રપુત્રને વિદ્યાદાન દેવાને માટે બહુ આનંદ દેખાડ્યો. પણ કપિલ આગળ કંઇ પુંજી નહોતી કે તેમાંથી ખાય, અને અભ્યાસ કરી શકે; એથી કરીને તેને નગરમાં યાચવા જવું પડતું હતું. યાચતાં યાચતાં બપોર થઇ જતા હતા, પછી રસોઈ કરે, અને જમે ત્યાં સાંજનો થોડો ભાગ રહેતો હતો; એટલે કંઈ અભ્યાસ કરી શકતો નહોતો, પંડિતે તેનું કારણ પૂછ્યું ત્યારે કપિલે તે કહી બતાવ્યું પંડિત તેને એક ગૃહસ્થ પાસે તેડી ગયા. એને હંમેશાં ભોજન મળે એવી ગોઠવણ એક વિધવા બ્રાહ્મણીને ત્યાં તે ગૃહસ્થે કપિલની અનુકંપા ખાતર કરી દીધી. જેથી કપિલને તે એક ચિંતા ઓછી થઈ.

શિક્ષાપાઠ ૪૭. કપિલમુનિ ભાગ ૨.—

એ નાની ચિંતા ઓછી થઈ, ત્યાં બીજી મોટી જંજાળ ઉભી થઇ. ભદ્રિક કપિલ હવે યુવાન થયો હતો; અને જેને ત્યાં તે જમવા જતો તે વિધવા બાઇ પણ યુવાન હતી. તેની સાથે તેના ઘરમાં બીજું કોઈ માણસ નહોતું. હમેશનો પરસ્પરનો વાતચિતનો સંબંધ વધ્યો. વધીને હાસ્ય વિનોદરૂપે થયો; એમ કરતાં કરતાં બન્નેને પ્રીતિ બંધાઇ. કપિલ તેનાથી લુબ્ધાયો! એકાંત બહુ અનિષ્ટ ચીજ છે!!

વિદ્યા પ્રાપ્ત કરવાનું છે ભૂલી ગયો. ગૃહસ્થ તરફથી મળતાં સીધાંથી બન્નેનું માંડ પૂરૂં થતું હતું; પણ લૂગડાંલત્તાંના વાંધા થયા. ગૃહસ્થાશ્રમ માંડી બેઠા જેવું કપિલે કરી મૂક્યું. ગમે તેવો છતાં હળુકર્મી જીવ હોવાથી સંસારની વિશેષ લોતાળની તેને માહિતી પણ નહોતી. એથી પૈસા કેમ પેદા કરવા તે બિચારો તે જાણતો પણ નહોતો. ચંચળ સ્ત્રીએ તેને રસ્તો બતાવ્યો કે, મુંઝાવામાં કંઇ વળવાનું નથી; પરંતુ ઉપાયથી સિદ્ધિ છે. આ ગામના રાજાનો એવો નિયમ છે કે, સવારમાં પહેલો જઈ જે બ્રાહ્મણ આશીર્વાદ આપે તેને તે બે માસા સોનું આપે છે. ત્યાં જો જઇ શકો અને પ્રથમ આશીર્વાદ આપી શકો, તો તે બે માસા સોનું મળે. કપિલે એ વાતની હા કહી. આઠ દિવસ સુધી આંટા ખાધા પણ વખત વીત્યા પછી જાય એટલે કંઇ વળે નહીં. એથી તેણે એક દિવસ નિશ્ચય કર્યો કે, જો હું ચોકમાં સુઉં તો ચીવટ રાખીને ઉઠાશે. પછી તે ચોકમાં સુતો. અધરાત ભાગતાં ચંદ્રનો ઉદય થયો. કપિલે પ્રભાત

સમીપ જાણીને મુઠીઓ વાળીને આશીર્વાદ દેવા માટે દોડતાં ત્યા માંડયું. રક્ષપાળે ચોર જાણીને તેને પકડી રાખ્યો. એક કરતાં બીજું થઇ પડયું. પ્રભાત થયો એટલે રક્ષપાળે તેને લઈ જઇને રાજાની સમક્ષ ઉભો રાખ્યો. કપિલ બેભાન જેવો ઉભો રહ્યો; રાજાને તેનાં ચોરનાં લક્ષણ ભાસ્યાં નહીં. એથી તેને સઘળું વૃત્તાંત પૂછયું. ચંદ્રના પ્રકાશને સૂર્ય સમાન ગણનારની ભદ્રિકતાપર રાજાને દયા આવી. તેની દરિદ્રતા ટાળવા રાજાની ઇચ્છા થઇ. એથી કપિલને કહ્યું. આશીર્વાદને માટે થઇ તારે જો એટલી બધી તરખડ થઇ પડી છે, તો હવે તારી ઇચ્છા પૂરતું તું માગી લે; હું તને આપીશ. કપિલ થોડીવાર મૂઢ જેવો રહ્યો. એથી રાજાએ કહ્યું, કેમ વિપ્ર કંઇ માગતા નથી ? કપિલે ઉત્તર આપ્યો; મારૂં મન હજુ સ્થિર થયું નથી; એટલે શું માગવું તે સૂઝતું નથી. રાજાએ સામેના બાગમાં જઇ ત્યાં બેસીને સ્વસ્થતા પૂર્વક વિચાર કરી કપિલને માગવાનું કહ્યું. એટલે કપિલ તે બાગમાં જઇને વિચાર કરવા બેઠો.

શિક્ષાપાઠ ૪૮. કપિલમુનિ, ભાગ ૩.—

બે માસા સોનું લેવાની જેની ઇચ્છા હતી તે કપિલ હવે તૃષ્ણાતરંગમાં ઘસડાયો. પાંચ મહોર માગવાની ઇચ્છા કરી, તો ત્યાં વિચાર આવ્યો કે પાંચથી કાંઇ પૂરૂં થનાર નથી માટે પંચવીશ મહોર માગવી. એ વિચાર પણ ફર્યો. પંચવીશ મહોરથી કંઇ આખું વર્ષ ઉતરાય નહીં માટે સો મહોર માગવી ત્યાં વળી વિચાર ફર્યો. સો મહોરે બે વર્ષ ઉતરી,

વૈભવ ભોગવી, પાછાં દુઃખનાં દુઃખ માટે એક હજાર મહોરની યાચના કરવી ઠીક છે; પણ એક હજાર મહોરે છોકરાં છૈયાંનાં બે ચાર ખર્ચ આવે કે એવું થાય તો પૂરૂં પણ શું થાય ? માટે દશ હજાર મહોર માગવી કે જેથી જીંદગી પર્યંત પણ ચિંતા નહિ. ત્યાં વળી ઇચ્છા ફરી. દશ હજાર મહોર ખવાઈ જાય એટલે પછી મુડી વગરના થઇ રહેવું પડે. માટે એક લાખ મહોરની માગણી કરૂં કે જેના વ્યાજમાં બધા વૈભવ ભોગવું; પણ જીવ ! લક્ષાધિપતિ તો ઘણાય છે. એમાં આપણે નામાંકિત ક્યાંથી થવાના ? માટે કરોડ મહોર માગવી કે જેથી મહાન શ્રીમંતતા કહેવાય. વળી પાછો રંગ ફર્યો. મહાન શ્રીમંતતાથી પણ ઘેર અમલ કહેવાય નહીં માટે રાજાનું અર્ધું રાજ્ય માગવું; પણ જો અર્ધું રાજ્ય માગીશ તોય રાજા મારા તુલ્ય ગણાશે; અને વળી હું એનો યાચક પણ ગણાઇશ. માટે માગવું તો આખું રાજ્ય માગવું. એમ એ તૃષ્ણામાં ડૂબ્યો; પરંતુ તુચ્છ સંસારી એટલે પાછો વળ્યો. ભલા જીવ ! આપણે એવી કૃતઘ્નતા શા માટે કરવી પડે કે જે આપણને ઇચ્છા પ્રમાણે આપવા તત્પર થયો તેનું જ રાજ્ય લઇ લેવું; અને તેને જ ભ્રષ્ટ કરવો ? ખરૂં જોતાં તો એમાં આપણી જ ભ્રષ્ટતા છે. માટે અર્ધું રાજ્ય માગવું; પરંતુ એ ઉપાધિયે મારે નથી જોઈતી. ત્યારે નાણાંની ઉપાધિ પણ ક્યાં ઓછી છે ? માટે કરોડ લાખ મૂકીને સો બસેં મહોર જ માગી લેવી. જીવ, સો બસેં મહોર હમણાં આવશે તો પછી વિષયવૈભવમાં જ વખત ચાલ્યો જશે; અને વિદ્યાભ્યાસ પણ ધર્યો રહેશે; માટે પાંચ મહોર હમણાં તો લઈ જવી પછીની વાત પછી. અરે ! પાંચ મહોરનીએ હમણાં કંઇ જરૂર નથી; માત્ર

બે માસા સોનું લેવા આવ્યો હતો તે જ માગી લેવું. આ તો જીવ બહુ થઈ. તૃષ્ણા સમુદ્રમાં તેં બહુ ગળકાં ખાધાં. આખું રાજ્ય માગતાં પણ તૃષ્ણા છીપતી નહોતી, માત્ર સંતોષ અને વિવેકથી તે ઘટાડી તો ઘટી. એ રાજા જો ચક્રવર્તી હોત તો પછી હું એથી વિશેષ શું માગી શકત? અને વિશેષ જ્યાંસુધી ન મળત ત્યાંસુધી મારી તૃષ્ણા સમાત પણ નહીં; જ્યાંસુધી તૃષ્ણા સમાત નહિ ત્યાંસુધી હું સુખી પણ ન હોત. એટલેથી એ મારી તૃષ્ણા ટળે નહીં તો પછી બે માસાથી કરીને ક્યાંથી ટળે? એનો આત્મા સવળીએ આવ્યો અને તે બોલ્યો, હવે મારે એ બે માસાનું પણ કંઇ કામ નથી. બે માસાથી વધીને હું કેટલે સુધી પહોંચ્યો! સુખ તો સંતોષમાં જ છે. તૃષ્ણા એ સંસાર વૃક્ષનું બીજ છે. એનો હે જીવ, તારે શું ખપ છે? વિદ્યા લેતાં તું વિષયમાં પડી ગયો; વિષયમાં પડવાથી આ ઉપાધિમાં પડ્યો; ઉપાધિ વડે કરીને અનંત તૃષ્ણા સમુદ્રના તરંગમાં તું પડ્યો. એક ઉપાધિમાંથી આ સંસારમાં એમ અનંત ઉપાધિ વેઠવી પડે છે. એથી એનો ત્યાગ કરવો ઉચિત છે. સત્ય સંતોષ જેવું નિરુપાધિ સુખ એકકે નથી. એમ વિચારતાં વિચારતાં, તૃષ્ણા શમાવવાથી તે કપિલનાં અનેક આવરણ ક્ષય થયાં. તેનું અંતઃકરણ પ્રફુલ્લિત અને બહુ વિવેકશીલ થયું. વિવેકમાં ને વિવેકમાં ઉત્તમ જ્ઞાનવડે તે સ્વાત્મનો વિચાર કરી શક્યો. અપૂર્વશ્રેણિએ ચઢી તે કૈવલ્યજ્ઞાનને પામ્યો કહેવાય છે.

તૃષ્ણા કેવી કનિષ્ટ વસ્તુ છે! જ્ઞાનીઓ એમ કહે છે કે તૃષ્ણા આકાશના જેવી અનંત છે; નિરંતર તે નવ-

યૌવન રહે છે. કંઇક ચાહના જેટલું મળ્યું એટલે ચાહનાને વધારી દે છે. સંતોષ એ જ કલ્પવૃક્ષ છે; અને એ જ માત્ર મનોવાંછિતતા પૂર્ણ કરે છે.

શિક્ષાપાઠ. ૪૯. તૃષ્ણાની વિચિત્રતા.—

(મનહર છંદ)

(એક ગરીબની વધતી ગયેલી તૃષ્ણા.)

હતી દીનતાઇ ત્યારે તાકી પટેલાઈ અને,
મળી પટેલાઈ ત્યારે તાકી છે શેઠાઈને;
સાંપડી શેઠાઇ ત્યારે તાકી મંત્રિતાઇ અને,
આવી મંત્રિતાઈ ત્યારે તાકી નૃપતાઇને.
મળી નૃપતાઈ ત્યારે તાકી દેવતાઇ અને,
દીઠી દેવતાઇ ત્યારે તાકી શંકરાઇને;
અહો ! રાજ્યચંદ્ર માનો માનો શંકરાઇ મળી;
વધે તૃષ્ણાઈ તોય જાય ન મરાઇને.

(૨)

કરોચલી પડી દાઢી ડાચાંતણો દાટ વળ્યો,
કાળી કેશપટી વિષે, શ્વેતતા છવાઈ ગઈ;
સૂંઘવું, સાંભળવું ને, દેખવું તે માંડી વાળ્યું,
તેમ દાંત આવલી તે, ખરી કે ખવાઇ ગઇ
વળી કેડ વાંકી, હાડ ગયાં, અંગરંગ ગયો,

ઉઠવાની આય જતાં લાકડી લેવાઇ ગઇ;
અરે! રાજચંદ્ર એમ, યુવાની હરાઇ પણ,
મનથી ન તોય ય રાંડ, મમતા મરાઇ ગઇ.

(૩)

કરોડોના કરજના, શિરપર ડંકા વાગે,
રોગથી રુંધાઇ ગયું, શરીર સૂકાઇને;
પુરપતિ પણ માથે, પીડવાને તાકી રહ્યો,
પેટ તણી વેઠ પણ, શકે ન પૂરાઇને.
પિતૃ અને પરણી તે, મચાવે અનેક ધંધ,
પુત્ર, પુત્રી ભાખે ખાઉં ખાઉં દુઃખદાઇને,
અરે! રાજચંદ્ર તોય જીવ ઝાંઝા દાવા કરે,
જંજાળ છંડાય નહીં, તજી તૃષનાઇને. ૩

(૪)

થઇ ક્ષીણ નાડી અવાચક જેવો રહ્યો પડી,
જીવન દીપક પામ્યો કેવળ ઝંખાઇને;
છેલ્લી ઇસે પડ્યો ભાળી ભાઇએ ત્યાં એમ ભાખ્યું,
હવે ટાઢી માટી થાય તો તો ઠીક ભાઇને.
હાથને હલાવી ત્યાં તો ખીજી બુઢ્ઢે સૂચવ્યું એ,
બોલ્યા વિના બેસ બાળ તારી ચતુરાઇને!
અરે! રાજચંદ્ર દેખો દેખો આશાપાશ કેવો?
જતાં ગઇ નહીં ડોશે મમતા મરાઇને! ૪

શિક્ષાપાઠ ૫૦. પ્રમાદ.—

ધર્મની અનાદરતા, ઉન્માદ, આળસ, કષાય એ સઘળાં પ્રમાદનાં લક્ષણ છે.

ભગવાને ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં ગૌતમને કહ્યું કે, હે ગૌતમ ! મનુષ્યનું આયુષ્ય ડાભની અણીપર પડેલા જળના બિંદુ જેવું છે. જેમ તે બિંદુને પડતાં વાર લાગતી નથી તેમ આ મનુષ્યાયુ જતાં વાર લાગતી નથી. એ બોધના કાવ્યમાં ચોથી કડી સ્મરણમાં અવશ્ય રાખવા જેવી છે. 'समयं गोयम मा पमाए'—એ પવિત્ર વાક્યના બે અર્થ થાય છે. એક તો હે ! ગૌતમ, સમય એટલે અવસર પામીને પ્રમાદ ન કરવો અને બીજો એ કે મેષાનુમેષમાં ચાલ્યા જતા અસંખ્યાતમા ભાગનો જે સમય કહેવાય છે તેટલો વખત પણ પ્રમાદ ન કરવો. કારણ દેહ ક્ષણભંગુર છે; કાળશિકારી માથે ધનુષ્યબાણ ચઢાવીને ઉભો છે. લીધો કે લેશે એમ જંજાળ થઈ રહી છે; ત્યાં પ્રમાદથી ધર્મ કર્ત્તવ્ય કરવું રહી જશે.

અતિ વિચક્ષણ પુરુષો સંસારની સર્વોપાધિ ત્યાગીને અહોરાત્ર ધર્મમાં સાવધાન થાય છે; પળનો પણ પ્રમાદ કરતા નથી. વિચક્ષણ પુરુષો અહોરાત્રના થોડાભાગને પણ નિરંતર ધર્મકર્ત્તવ્યમાં ગાળે છે, અને અવસરે અવસરે ધર્મ-કર્ત્તવ્ય કરતા રહે છે. પણ મૂઢ પુરુષો નિદ્રા, આહાર મોજશોખ અને વિકથા તેમજ રંગરાગમાં આયુ વ્યતીત કરી નાખે છે. એનું પરિણામ તેઓ અધોગતિરૂપ પામે છે.

જેમ બને તેમ યત્ના અને ઉપયોગથી ધર્મને સાધ્ય કરવો યોગ્ય છે. સાઠ ઘડીના અહોરાત્રમાં વીશ ઘડી તો

નિદ્રામાં ગાળીએ છીએ. બાકીની ચાળીશ ઘડી ઉપાધિ, ટેલટપ્પા અને રઝળવામાં ગાળીએ છીએ. એ કરતાં એ સાઠ ઘડીના વખતમાંથી બે ચાર ઘડી વિશુદ્ધ ધર્મકર્ત્તવ્યને માટે ઉપયોગમાં લઇએ તો બની શકે એવું છે. એનું પરિણામ પણ કેવું સુંદર થાય ?

પળ એ અમૂલ્ય ચીજ છે. ચક્રવર્તી પણ એક પળ પામવા આખી રિદ્ધિ આપે તો પણ તે પામનાર નથી. એક પળ વ્યર્થ ખોવાથી એક ભવ હારી જવા જેવું છે. એમ તત્ત્વની દૃષ્ટિએ સિદ્ધ છે !



શિક્ષાપાઠ ૫૧. વિવેક એટલે શું ?—

લઘુ શિષ્યો—ભગવન્ ! આપ અમને સ્થળે સ્થળે કહેતા આવો છો કે વિવેક એ મહાન્ શ્રેયસ્કર છે. વિવેક એ અંધારામાં પડેલા આત્માને ઓળખવાનો દીવો છે. વિવેક વડે કરીને ધર્મ ટકે છે. વિવેક નથી ત્યાં ધર્મ નથી તો વિવેક એટલે શું ? તે અમને કહો.

ગુરુ—આયુષ્યમનો ! સત્યાસત્યને તેને સ્વરૂપે કરીને સમજવાં તેનું નામ વિવેક.

લઘુ શિષ્યો—સત્યને સત્ય અને અસત્યને અસત્ય કહેવાનું તો બધાય સમજે છે. ત્યારે મહારાજ ! એઓ ધર્મનું મૂળ પામ્યા કહેવાય ?

ગુરુ—તમે જે વાત કહો છો તેનું એક દૃષ્ટાંત આપો જોઇએ.

લઘુ શિષ્યો—અમે પોતે કડવાને કડવું જ કહીએ છીએ, મધુરાને મધુરું કહીએ કહીએ છીએ, ઝેરને ઝેર ને અમૃતને અમૃત કહીએ છીએ.

ગુરુ—આયુષ્યમનો! એ બધાં દ્રવ્ય પદાર્થ છે; પરંતુ આત્માને કયિ કડવાશ. કયિ મધુરાશ, કયું ઝેર અને કયું અમૃત છે એ ભાવપદાર્થોની એથી કંઈ પરીક્ષા થઇ શકે?

લઘુ શિષ્યો—ભગવન્! એ સંબંધી તો અમારું લક્ષ પણ નથી.

ગુરુ—ત્યારે એ જ સમજવાનું છે કે જ્ઞાન-દર્શનરૂપ આત્માના સત્ય ભાવ પદાર્થને અજ્ઞાન અને અદર્શન-રૂપ અસત્ વસ્તુએ ઘેરી લીધા છે. એમાં એટલી બધી મિશ્રતા થઈ ગઇ છે કે પરીક્ષા કરવી અતિ અતિ દુર્લભ છે. સંસારનાં સુખો અનંતીવાર આત્માએ ભોગવ્યાં છતાં તેમાંથી હજુ પણ મોહિની ટળી નહીં, અને તેને અમૃત જેવો ગણ્યો એ અવિવેક છે; કારણ સંસાર કડવો છે; કડવા વિપાકને આપે છે; તેમજ વૈરાગ્ય જે એ કડવા-વિપાકનું ઔષધ છે, તેને કડવો ગણ્યો; આ પણ અવિવેક છે. જ્ઞાન દર્શનાદિ ગુણો અજ્ઞાન, અદર્શને ઘેરી લઇ જે મિશ્રતા કરી નાંખી છે તે ઓળખી ભાવ અમૃતમાં આવવું, એનું નામ વિવેક છે. કહો ત્યારે હવે વિવેક એ કેવી વસ્તુ ઠરી!

લઘુ શિષ્યો—અહો! વિવેક એ જ ધર્મનું મૂળ અને ધર્મ રક્ષક કહેવાય છે, તે સત્ય છે. આત્મસ્વરૂપને વિવેક વિના ઓળખી શકાય નહીં એ પણ સત્ય છે. જ્ઞાન, શીલ, ધર્મ, તત્ત્વ અને તપ એ સઘળાં વિવેક વિના ઉદય પામે

નહીં એ આપનું કહેવું યથાર્થ છે. જે વિવેકી નથી તે અજ્ઞાની અને મંદ છે. તે જ પુરુષ મતભેદ અને મિથ્યા-દર્શનમાં લપટાઈ રહે છે. આપની વિવેક સંબંધીની શિક્ષા અમે નિરંતર મનન કરીશું.

શિક્ષાપાઠ ૫૨. જ્ઞાનીઓએ વૈરાગ્ય શા માટે બોધ્યો?

સંસારના સ્વરૂપ સંબંધી આગળ કેટલુંક કહેવામાં આવ્યું છે. તે તમને લક્ષમાં હશે.

જ્ઞાનીઓએ એને અનંત ખેદમય, અનંત દુઃખમય, અવ્યવસ્થિત, ચળવિચળ અને અનિત્ય કહ્યો છે. આ વિશેષણો લગાડવા પહેલાં એમણે સંસાર સંબંધી સંપૂર્ણ વિચાર કરેલો જણાય છે. અનંત ભવનું પર્યટન, અનંતકાળનું અજ્ઞાન, અનંત જીવનનો વ્યાઘાત, અનંત મરણ, અનંત શોક એ વડે કરીને સંસારચક્રમાં આત્મા ભમ્યા કરે છે. સંસારની દેખાતી ઇંદ્રવારણા જેવી સુંદર મોહિનીએ આત્માને તટસ્થ લીન કરી નાંખ્યો છે. એ જેવું સુખ આત્માને ક્યાંય ભાસતું નથી. મોહિનીથી સત્યસુખ અને એનું સ્વરૂપ જોવાની એણે આકાંક્ષા પણ કરી નથી. પતંગની જેમ દીપક પ્રત્યે મોહિની છે તેમ આત્માની સંસાર સંબંધે મોહિની છે. જ્ઞાનીઓ એ સંસારને ક્ષણભર પણ સુખરૂપ કહેતા નથી. તલ જેટલી જગ્યા પણ એ સંસારની ઝેર વિના રહી નથી. એક ભુંડથી કરીને એક ચક્રવર્તી સુધી ભાવે કરીને સરખાપણું રહ્યું છે;

એટલે ચક્રવર્તીની સંસાર સંબંધમાં જેટલી મોહિની છે, તેટલી જ બલકે તેથી વિશેષ ભુંડને છે. ચક્રવર્તી જેમ સમગ્ર પ્રજાપર અધિકાર ભોગવે છે, તેમ તેની ઉપાધિ પણ ભોગવે છે. ભુંડને એમાંનું કશુંયે ભોગવવું પડતું નથી. અધિકાર કરતાં ઉલટી ઉપાધિ વિશેષ છે. ચક્રવર્તીનો પોતાની પત્ની પ્રત્યેનો પ્રેમ જેટલો છે, તેટલો જ બલકે તેથી વિશેષ ભુંડનો પોતાની ભુંડણી પ્રત્યે પ્રેમ રહ્યો છે. ચક્રવર્તી ભોગથી જેટલો રસ લે છે, તેટલો જ રસ ભુંડ પણ માની બેઠું છે. ચક્રવર્તીની જેટલી વૈભવની બહોળતા છે, તેટલીજ ઉપાધિ છે. ભુંડને એના વૈભવના પ્રમાણમાં છે. બન્ને જન્મ્યાં છે અને બન્ને મરવાનાં છે. આમ અતિ સૂક્ષ્મ વિચારે ક્ષણિકતાથી, રોગથી, જરાથી બન્ને ગ્રાહિત છે. દ્રવ્યે ચક્રવર્તી સમર્થ છે. મહા પુણ્યશાળી છે. શાતાવેદની ભોગવે છે, અને ભુંડ બિચારૂં અશાતાવેદની ભોગવી રહ્યું છે. બન્નેને અશાતા-શાતા પણ છે; પરંતુ ચક્રવર્તી મહા સમર્થ છે. પણ જો એ જીવન-પર્યંત મોહાંધ રહ્યો તો સઘળી બાજી હારી જવા જેવું કરે છે. ભુંડને પણ તેમજ છે. ચક્રવર્તી શ્લાઘાપુરુષ હોવાથી ભુંડથી એ રૂપે એની તુલના જ નથી; પરંતુ આ સ્વરૂપે છે. ભોગ ભોગવવામાં પણ બન્ને તુચ્છ છે; બન્નેનાં શરીર પરુ માંસાદિકનાં છે. સંસારની આ ઉત્તમોત્તમ પદવી આવી રહી ત્યાં આવું દુઃખ, ક્ષણિકતા, તુચ્છતા, અંધપણું એ રહ્યું છે તો પછી બીજે સુખ શા માટે ગણવું જોઈએ? એ સુખ નથી, છતાં સુખ ગણો તો જે સુખ ભયવાળાં અને ક્ષણિક છે તે દુઃખ જ છે. અનંત તાપ, અનંત શોક,

અનંત દુઃખ જોઇને જ્ઞાનીઓએ એ સંસારને પુઠ દીધી છે તે સત્ય છે. એ ભણી પાછું વાળી જોવા જેવું નથી, ત્યાં દુઃખ, દુઃખ ને દુઃખ જ છે. દુઃખનો એ સમુદ્ર છે.

વૈરાગ્ય એજ અનંત સુખમાં લઇ જનાર ઉત્કૃષ્ટ ભોમિયો છે.

શિક્ષાપાઠ ૫૩. મહાવીરશાસન.—

હમણાં જે શાસન પ્રવર્તમાન છે તે શ્રમણ ભગવંત મહાવીરનું પ્રણીત કરેલું છે. [1]ભગવાન મહાવીરને નિર્વાણ પધાર્યાં ૨૪૧૪ વર્ષ થઇ ગયાં. મગધ દેશના ક્ષત્રિયકુંડ નગરમાં ત્રિશલાદેવી ક્ષત્રિયાણીની કુખે સિદ્ધાર્થ રાજાથી ભગવાન મહાવીર જન્મ્યા. મહાવીર ભગવાનના મોટા ભાઈનું નામ નંદીવર્દ્ધમાન હતું. મહાવીર ભગવાનની સ્ત્રીનું નામ યશોદા હતું. ત્રીશ વર્ષ તેઓ ગૃહસ્થાશ્રમમાં રહ્યા. એકાંતિક વિહારે સાડાબાર વર્ષ એક પક્ષ તપાદિક સમ્યકાચારે, એમણે અશેષ ઘનઘાતી કર્મને બાળીને ભસ્મીભૂત કર્યાં; અને અનુપમેય કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શન ઋજુવાલિકા નદીને કિનારે પામ્યા. એકંદર બહોતેર વર્ષની લગભગ આયુ ભોગવી સર્વ કર્મ ભસ્મીભૂત કરી સિદ્ધસ્વરૂપને પામ્યાઃ વર્તમાન ચોવીશીના એ છેલ્લા જિનેશ્વર હતા.

એઓનું આ ધર્મતીર્થ પ્રવર્તે છે તે ૨૧,૦૦૦ વર્ષ એટલે પંચમકાળની પૂર્ણતા સુધી પ્રવર્તશે; એમ ભગવતીસૂત્રનાં પ્રવચન છે.

---

૧. મોક્ષમાળા પ્રથમાવૃત્તિ વીરસંવત ૨૪૧૪ એટલે વિ. સં. ૧૯૪૪ માં છપાઇ છે.

'આ કાળ દશ અપવાદથી યુક્ત હોવાથી એ ધર્મતીર્થ પર અનેક વિપત્તિઓ આવી ગઇ છે, આવે છે, અને પ્રવચન પ્રમાણે આવશે પણ ખરી.

જૈનસમુદાયમાં પરસ્પર મતભેદ બહુ પડી ગયા છે. પરસ્પર નિંદાગ્રંથોથી જંજાળ માંડી બેઠા છે. વિવેક વિચારે મધ્યસ્થ પુરુષો મતમતાંતરમાં નહીં પડતાં જૈન શિક્ષાનાં મૂળ તત્ત્વપર આવે છે; ઉત્તમ શીલવાન મુનિઓ પર ભાવિક રહે છે. સત્ય એકાગ્રતાથી પોતાના આત્માને દમે છે.

વખતે વખતે શાસન કંઈ સામાન્ય પ્રકાશમાં આવે છે; પણ કાળપ્રભાવને લીધે તે જોઈએ એવું પ્રફુલ્લિત ન થઈ શકે.'

'वंक जड्डाय पच्छिमा' એવું ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં વચન છે; એનો ભાવાર્થ એ છે કે છેલ્લા તીર્થંકર (મહાવીરસ્વામી) ના શિષ્યો વાંકા અને જડ થશે; અને તેમની સત્યતા વિષે કોઇને બોલવું રહે તેમ નથી. આપણે ક્યાં તત્ત્વનો વિચાર કરીએ છીએ? ક્યાં ઉત્તમ શીલનો વિચાર કરીએ છીએ? નિયમિત વખત ધર્મમાં ક્યાં વ્યતીત કરીએ છીએ? ધર્મ-તીર્થના ઉદયને માટે ક્યાં લક્ષ રાખીએ છીએ? ક્યાં દાઝવડે ધર્મતત્ત્વને શોધીએ છીએ? શ્રાવક કુળમાં જન્મ્યા એથી કરીને શ્રાવક, એ વાત આપણે ભાવે કરીને માન્ય કરવી જોઇતી નથી; એને માટે જોઈતા આચાર, જ્ઞાન, શોધ કે એમાંનાં કંઇ વિશેષ લક્ષણો હોય તેને શ્રાવક માનીએ તો તે યથાયોગ્ય છે. દ્રવ્યાદિક કેટલાક પ્રકારની સામાન્ય દયા શ્રાવકને ઘેર જન્મે છે અને તે પાળે છે, એ વાત વખાણવા

લાયક છે; પણ તત્ત્વને કોઇક જ જાણે છે; જાણ્યા કરતાં ઝાઝી શંકા કરનારા અર્ધદગ્ધો પણ છે; જાણીને અહંપદ કરનારા પણ છે; પરંતુ જાણીને તત્ત્વના કાંટામાં તોળનારા કોઈક વિરલા જ છે. 'પરમ્પર આમ્નાયથી કેવળ, મનઃપર્યવ અને પરમાવધિજ્ઞાન' વિચ્છેદ ગયાં. દૃષ્ટિવાદ વિચ્છેદ ગયું; સિદ્ધાંતનો ઘણો ભાગ વિચ્છેદ ગયો; માત્ર થોડા રહેલા ભાગપર સામાન્ય સમજણથી શંકા કરવી યોગ્ય નથી. જે શંકા થાય તે વિશેષ જાણનારને પૂછવી, ત્યાંથી મનમાનતો ઉત્તર ન મળે તોપણ જિનવચનની શ્રદ્ધા ચળવિચળ કરવી નહીં. અનેકાંત શૈલીના સ્વરૂપને વિરલા જાણે છે.

ભગવાનનાં કથનરૂપ મણિનાં ઘરમાં કેટલાક પામર પ્રાણીઓ દોષરૂપી કાણું શોધવાનું મથન કરી અધોગતિ-જન્ય કર્મ બાંધે છે. લીલોતરીને બદલે તેની સુકવણી કરી લેવાનું કોણે, કેવા વિચારથી શોધી કાઢયું હશે ?'

આ વિષય બહુ મોટો છે. એ સંબંધી અહીં આગળ કંઇ કહેવાની યોગ્યતા નથી. ટુંકામાં કહેવાનું કે આપણે આપણા આત્માના સાર્થક અર્થે મતભેદમાં પડવું નહીં.' ઉત્તમ અને શાંત મુનિનો સમાગમ, વિમળ આચાર, વિવેક, દયા, ક્ષમા એનું સેવન કરવું. મહાવીરતીર્થને અર્થે બને તો વિવેકી બોધ કારણ સહિત આપવો. તુચ્છ બુદ્ધિથી શંકિત થવું નહીં, એમાં આપણું પરમ મંગળ છે, એ વિસર્જન કરવું નહીં.

શિક્ષાપાઠ ૫૪. અશુચિ કોને કહેવી ?—

જિજ્ઞાસુ—મને જૈન મુનિઓના આચારની વાત બહુ રુચી છે. એઓના જેવો કોઇ દર્શનના સંતોમાં આચાર નથી. ગમે તેવા શિયાળાની ટાઢમાં અમુક વસ્ત્ર વડે તેઓને ચલાવવું પડે છે; ઉનાળામાં ગમે તેવા તાપમાં તપતા છતાં પગમાં તેઓને પગરખાં કે માથા પર છત્રી લેવાતી નથી. ઉની રેતીમાં આતાપના લેવી પડે છે. યાવજ્જીવ ઉનું પાણી પીએ છે. ગૃહસ્થને ઘેર તેઓ બેસી શકતા નથી. શુદ્ધ બ્રહ્મચર્ય પાળે છે. ફૂટી બદામ પણ પાસે રાખી શકતા નથી. અયોગ્ય વચન તેઓથી બોલી શકાતું નથી. વાહન તેઓ લઇ શકતા નથી. આવા પવિત્ર આચારો, ખરે ! મોક્ષદાયક છે. પરંતુ નવ વાડમાં ભગવાને સ્નાન કરવાની ના કહી છે એ વાત તો મને યથાર્થ બેસતી નથી.

સત્ય—શા માટે બેસતી નથી ?

જિજ્ઞાસુ—કારણ એથી અશુચિ વધે છે.

સત્ય—કઇ અશુચિ વધે છે ?

જિજ્ઞાસુ—શરીર મલિન રહે છે એ.

સત્ય—ભાઇ, શરીરની મલિનતાને અશુચિ કહેવી એ વાત કંઈ વિચાર પૂર્વક નથી. શરીર પોતે શાનું બન્યું છે એ તો વિચાર કરો. રક્ત, પિત્ત, મળ, મૂત્ર, શ્લેષ્મનો એ ભંડાર છે. તેપર માત્ર ત્વચા છે; છતાં એ પવિત્ર કેમ થાય ? વળી સાધુએ એવું કંઇ સંસારી કર્ત્તવ્ય કર્યું ન હોય કે જેથી તેઓને સ્નાન કરવાની આવશ્યકતા રહે.

જિજ્ઞાસુ—પણ સ્નાન કરવાથી તેઓને હાનિ શું છે?

સત્ય—એ તો સ્થૂળબુદ્ધિનું જ પ્રશ્ન છે. નહાવાથી અસંખ્યાતા જંતુનો વિનાશ, કામાગ્નિની પ્રદીપ્તતા; વ્રતનો ભંગ, પરિણામનું બદલવું, એ સઘળી અશુચિ ઉત્પન્ન થાય છે અને એથી આત્મા મહા મલિન થાય છે. પ્રથમ એનો વિચાર કરવો જોઈએ. શરીરની, જીવહિંસાયુક્ત જે મલિનતા છે તે અશુચિ છે. અન્ય મલિનતાથી તો આત્માની ઉજ્જવળતા થાય છે, એ તત્ત્વવિચારે સમજવાનું છે; નહાવાથી વ્રતભંગ થઈ આત્મા મલિન થાય છે; અને આત્માની મલિનતા એ જ અશુચિ છે.

જિજ્ઞાસુ—મને તમે બહુ સુંદર કારણ બતાવ્યું. સૂક્ષ્મ વિચાર કરતાં જિનેશ્વરનાં કથનથી બોધ અને અત્યાનંદ પ્રાપ્ત થાય છે. વારુ, ગૃહસ્થાશ્રમીઓને જીવહિંસા કે સંસાર કર્ત્તવ્યથી થયેલી શરીરની અશુચિ ટાળવી જોઈએ કે નહીં?

સત્ય—સમજણપૂર્વક અશુચિ ટાળવી જ જોઇએ. જૈન જેવું એકકે પવિત્ર દર્શન નથી; અને તે અપવિત્રતાનો બોધ કરતું નથી પરંતુ શૌચાશૌચનું સ્વરૂપ સમજવું જોઇએ.

શિક્ષાપાઠ ૫૫. સામાન્ય નિત્યનિયમ.—

પ્રભાત પહેલાં જાગૃત થઇ, નમસ્કાર મંત્રનું સ્મરણ કરી મન વિશુદ્ધ કરવું. પાપ વ્યાપારની વૃત્તિ રોકી રાત્રિ સંબંધી થયેલા દોષનું ઉપયોગપૂર્વક પ્રતિક્રમણ કરવું.

પ્રતિક્રમણ કર્યા પછી યથાવસર ભગવાનની ઉપાસના સ્તુતિ તથા સ્વાધ્યાયથી કરીને મનને ઉજ્વલ કરવું.

માતપિતાનો વિનય કરી, આત્મહિતનો લક્ષ ભૂલાય નહીં, તેમ યત્નાથી સંસારી કામમાં પ્રવર્તન કરવું.

પોતે ભોજન કરતાં પહેલાં સત્પાત્રે દાન દેવાની પરમ આતુરતા રાખી તેવો યોગ મળતાં યથોચિત પ્રવૃત્તિ કરવી.

આહાર, વિહારનો નિયમિત વખત રાખવો તેમજ સત્ શાસ્ત્રના અભ્યાસનો અને તાત્ત્વિક ગ્રંથના મનનનો પણ નિયમિત વખત રાખવો.

સાયંકાળે સંધ્યાવશ્યક ઉપયોગપૂર્વક કરવું.

ચોવિહાર પ્રત્યાખ્યાન કરવું.

નિયમિત નિદ્રા લેવી.

સૂતા પહેલાં અઢાર પાપસ્થાનક, દ્વાદશવ્રતદોષ અને સર્વ જીવને ક્ષમાવી, પંચપરમેષ્ઠી મંત્રનું સ્મરણ કરી, મહાશાંતિથી સમાધિભાવે શયન કરવું.

આ સામાન્ય નિયમો બહુ લાભદાયક થશે. એ તમને સંક્ષેપમાં કહ્યા છે. સૂક્ષ્મ વિચારથી અને તેમ પ્રવર્તવાથી એ વિશેષ મંગળદાયક થશે.



શિક્ષાપાઠ ૫૬. ક્ષમાપના.—

હે ભગવાન ! હું બહુ ભૂલી ગયો, મેં તમારાં અમૂલ્ય વચનને લક્ષમાં લીધાં નહીં. તમારાં કહેલાં અનુપમ તત્ત્વનો મેં વિચાર કર્યો નહીં. તમારાં પ્રણીત કરેલા ઉત્તમ શીલને સેવ્યું નહીં. તમારા કહેલાં દયા, શાંતિ, ક્ષમા અને પવિત્રતા મેં ઓળખ્યાં નહીં. હે ભગવન્ ! હું ભૂલ્યો, આથડયો, રઝળ્યો અને અનંત સંસારની વિટમ્બનામાં પડયો છું. હું પાપી છું. હું બહુ મદોન્મત્ત અને કર્મરજથી કરીને મલિન છું. હે પરમાત્મા ! તમારાં કહેલાં તત્ત્વ વિના મારો મોક્ષ નથી. હું નિરંતર પ્રપંચમાં પડયો છું. અજ્ઞાનથી અંધ થયો છું; મારામાં વિવેકશક્તિ નથી અને હું મૂઢ છું, હું નિરાશ્રિત છું, અનાથ છું. નિરાગી પરમાત્મા ! હું હવે તમારું, તમારા ધર્મનું અને તમારા મુનિનું શરણ ગ્રહું છું. મારા અપરાધ ક્ષય થઇ હું તે સર્વ પાપથી મુક્ત થઉં એ મારી અભિલાષા છે. આગળ કરેલાં પાપોનો હું હવે પશ્ચાત્તાપ કરું છું. જેમ જેમ હું સૂક્ષ્મ વિચારથી ઊંડો ઉતરું છું તેમ તેમ તમારા તત્ત્વના ચમત્કારો મારા સ્વરૂપનો પ્રકાશ કરે છે. તમે નિરાગી, નિર્વિકારી, સત્ચિદાનંદસ્વરૂપ, સહજાનંદી, અનંતજ્ઞાની, અનંતદર્શી અને ત્રૈલોક્યપ્રકાશક છો. હું માત્ર મારા હિતને અર્થે તમારી સાક્ષીએ ક્ષમા ચાહું છું. એક પળ પણ તમારાં કહેલાં તત્ત્વની શંકા ન થાય, તમારા કહેલા રસ્તામાં અહોરાત્ર હું રહું, એ જ મારી આકાંક્ષા અને વૃત્તિ થાઓ ! હે સર્વજ્ઞ ભગવાન ? તમને હું વિશેષ શું કહું ?

તમારાથી કંઇ અજાણ્યું નથી. માત્ર પશ્ચાત્તાપથી હું કર્મજન્ય પાપની ક્ષમા ઇચ્છું છું.—ૐ શાંતિઃ શાંતિઃ શાંતિઃ

શિક્ષાપાઠ ૫૭. વૈરાગ્ય એ ધર્મનું સ્વરૂપ છે.—

એક વસ્ત્ર લોહીથી કરીને રંગાયું. તેને જો લોહીથી ધોઈએ તો તે ધોઈ શકાનાર નથી; પરંતુ વિશેષ રંગાય છે. જો પાણીથી એ વસ્ત્રને ધોઇએ તો તે મલિનતા જવાનો સંભવ છે. એ દૃષ્ટાંત પરથી આત્મા પર વિચાર લઇએ. આત્મા અનાદિકાળથી સંસારરૂપી લોહીથી મલિન થયો છે. મલિનતા રોમ રોમ ઉતરી ગઇ છે! એ મલિનતા આપણે વિષય શૃંગારથી ટાળવા ધારીએ તો તે ટળી શકે નહીં. લોહીથી જેમ લોહી ધોવાતું નથી, તેમ શૃંગારથી કરીને વિષયજન્ય આત્મમલિનતા ટળનાર નથી એ જાણે નિશ્ચયરૂપ છે. અનેક ધર્મમતો આ જગતમાં ચાલે છે, તે સંબંધી અપક્ષપાતે વિચાર કરતાં આગળથી આટલું વિચારવું અવશ્યનું છે, કે જ્યાં સ્ત્રીઓ ભોગવવાનો ઉપદેશ કર્યો હોય, લક્ષ્મીલીલાની શિક્ષા આપી હોય, રંગ, રાગ, ગુલતાન અને એશઆરામ કરવાનું તત્ત્વ બતાવ્યું હોય ત્યાંથી આપણા આત્માની સત્ શાંતિ નથી. કારણ એ ધર્મમત ગણીએ તો આખો સંસાર ધર્મમતયુક્ત જ છે. પ્રત્યેક ગૃહસ્થનું ઘર એજ યોજનાથી ભરપૂર હોય છે. છોકરાં–છૈયાં, સ્ત્રી, રંગ, રાગ, તાન ત્યાં જામ્યું પડ્યું હોય છે. અને તે ઘર ધર્મમંદિર કહેવું, તો પછી અધર્મસ્થાનક કયું ?

અને જેમ વર્તીએ છીએ તેમ વર્તવાથી ખોટું પણ શું ? કોઇ એમ કહે કે પેલાં ધર્મમંદિરમાં તો પ્રભુની ભક્તિ થઇ શકે છે તો તેઓને માટે ખેદપૂર્વક આટલો જ ઉત્તર દેવાનો છે કે, તે પરમાત્મતત્ત્વ અને તેની વૈરાગ્યમય ભક્તિને જાણતા નથી. ગમે તેમ હો પણ આપણે આપણા મૂળ વિચાર પર આવવું જોઇએ. તત્ત્વજ્ઞાનની દૃષ્ટિએ આત્મા સંસારમાં વિષયાદિક મલિનતાથી પર્યટન કરે છે. તે મલિનતાનો ક્ષય વિશુદ્ધ ભાવ જળથી હોવો જોઇએ. અર્હંતનાં કહેલાં તત્ત્વરૂપ સાબુ અને વૈરાગ્યરૂપી જળથી ઉત્તમ આચારરૂપ પથ્થરપર રાખીને આત્મવસ્ત્રને ધોનાર નિર્ગ્રંથ ગુરુ છે. આમાં જો વૈરાગ્યજળ ન હોય તો બધાં સાહિત્યો કંઈ કરી શકતાં નથી; માટે વૈરાગ્યને ધર્મનું સ્વરૂપ કહી શકાય. યદિ અર્હંત પ્રણીત તત્ત્વ વૈરાગ્ય જ બોધે છે, તો તે જ ધર્મનું સ્વરૂપ એમ ગણવું.



શિક્ષાપાઠ ૫૮. ધર્મના મતભેદ. ભાગ ૧.—

આ જગતીતળ પર અનેક પ્રકારથી ધર્મના મત પડેલા છે. તેવા મતભેદ અનાદિકાળથી છે, એ ન્યાયસિદ્ધ છે. પણ એ મતભેદો કંઈ કંઈ રૂપાંતર પામ્યા જાય છે. એ સંબંધી કેટલોક વિચાર કરીએ.

કેટલાક પરસ્પર મળતા અને કેટલાક પરસ્પર વિરુદ્ધ

છે; કેટલાક કેવળ નાસ્તિકના પાથરેલા પણ છે. કેટલાક સામાન્ય નીતિને ધર્મ કહે છે. કેટલાક જ્ઞાનને જ ધર્મ કહે છે. કેટલાક અજ્ઞાન એ ધર્મમત કહે છે. કેટલાક ભક્તિને કહે છે; કેટલાક ક્રિયાને કહે છે; કેટલાક વિનયને કહે છે અને કેટલાક શરીર સાચવવું એને ધર્મમત કહે છે.

એ ધર્મમતસ્થાપકોએ એમ બોધ કર્યો જણાય છે કે, અમે જે કહીએ છીએ તે સર્વજ્ઞવાણીરૂપ અને સત્ય છે. બાકીના સઘળા મતો અસત્ય અને કુતર્કવાદી છે; પરસ્પર તેથી તે મતવાદીઓએ યોગ્ય કે અયોગ્ય ખંડન કર્યું છે. વેદાંતના ઉપદેશક આ જ બોધે છે; સાંખ્યનો પણ આ જ બોધ છે; બૌધનો પણ આ જ બોધ છે; ન્યાયમત-વાળાનો પણ આ જ બોધ છે; વૈશેષિકનો આ જ બોધ છે; શક્તિપંથીનો આ જ બોધ છે; વૈષ્ણવાદિકનો આ જ બોધ છે; ઇસ્લામીનો આ જ બોધ છે; અને ક્રાઇસ્ટનો આ જ બોધ છે કે આ અમારું કથન તમને સર્વસિદ્ધિ આપશે. ત્યારે આપણે હવે શું વિચાર કરવો ?

વાદી પ્રતિવાદી બન્ને સાચા હોતા નથી, તેમ બન્ને ખોટા હોતા નથી. બહુ તો વાદી કંઈક વધારે સાચો અને પ્રતિવાદી કંઈક ઓછો ખોટો હોય.* કેવળ બન્નેની વાત ખોટી હોવી ન જોઇએ. આમ વિચાર કરતાં તો એક ધર્મમત સાચો ઠરે; બાકીના ખોટા ઠરે.

*અથવા પ્રતિવાદી કંઈક વધારે સાચો અને વાદી કંઈક ઓછો ખોટો હોય.

જિજ્ઞાસુ—એ એક આશ્ચર્યકારક વાત છે. સર્વને અસત્ય અને સર્વને સત્ય કેમ કહી શકાય? જો સર્વને અસત્ય એમ કહીએ તો આપણે નાસ્તિક ઠરીએ અને ધર્મની સચ્ચાઈ જાય. આ તો નિશ્ચય છે કે ધર્મની સચ્ચાઈ છે, તેમ સૃષ્ટિ પર તેની આવશ્યકતા છે. એક ધર્મમત સત્ય અને બાકીના સર્વ અસત્ય એમ કહીએ તો તે વાત સિદ્ધ કરી બતાવવી જોઇએ. સર્વ સત્ય કહીએ તો તો એ રેતીની ભીંત કરી; કારણ તો આટલા બધા મતભેદ શા માટે પડે? સર્વ એક જ પ્રકારના મતો સ્થાપવા શા માટે યત્ન ન કરે? એમ અન્યોન્યના વિરોધાભાસ વિચારથી થોડીવાર અટકવું પડે છે.

તોપણ તે સંબંધી યથામતિ હું કંઈ ખુલાસો કરું છું. એ ખુલાસો સત્ય અને મધ્યસ્થભાવનાનો છે. એકાંતિક કે મતાંતિક નથી; પક્ષપાતી કે અવિવેકી નથી; પણ ઉત્તમ અને વિચારવા જેવો છે. દેખાવે એ સામાન્ય લાગશે; પરંતુ સૂક્ષ્મ વિચારથી બહુ ભેદવાળો લાગશે.

શિક્ષાપાઠ ૫૯. ધર્મના મતભેદ, ભાગ ૨.—

આટલું તો તમારે સ્પષ્ટ માનવું કે ગમે તે એક ધર્મ આ સૃષ્ટિ પર સંપૂર્ણ સત્યતા ધરાવે છે. હવે એક દર્શનને સત્ય કહેતાં બાકીના ધર્મમતને કેવળ અસત્ય કહેવા પડે; પણ હું એમ કહી ન શકું. શુદ્ધ આત્મજ્ઞાન-

હોતા નિશ્ચયનયવડે તો તે અસત્યરૂપ ઠરે; પરંતુ વ્યવહારનયે તે અસત્ય ઠરાવી શકાય નહીં. એક સત્ય અને બાકીના અપૂર્ણ અને સદોષ છે એમ હું કહું છું. તેમજ કેટલાક કુતર્કવાદી અને નાસ્તિક છે તે કેવળ અસત્ય છે; પરંતુ જેઓ પરલોક સંબંધી કે પાપ સંબંધી કંઇ પણ બોધ કે ભય બતાવે છે તે જાતના ધર્મમતને અપૂર્ણ અને સદોષ કહી શકાય છે. એક દર્શન જે નિર્દોષ અને પૂર્ણ કહેવાનું છે તેની વાત હમણાં એક બાજુ રાખીએ.

હવે તમને શંકા થશે કે સદોષ અને અપૂર્ણ એવું કથન એના પ્રવર્તકે શા માટે બોધ્યું હશે? તેનું સમાધાન થવું જોઇએ. એ ધર્મમતવાળાઓની જ્યાંસુધી બુદ્ધિની ગતિ પહોંચી ત્યાંસુધી તેમણે વિચારો કર્યા. અનુમાન, તર્ક અને ઉપમાદિક આધારવડે તેઓને જે કથન સિદ્ધ જણાયું તે પ્રત્યક્ષરૂપે જાણે સિદ્ધ છે એવું તેમણે દર્શાવ્યું. જે પક્ષ લીધો તેમાં મુખ્ય એકાંતિક વાદ લીધો; ભક્તિ, વિશ્વાસ, નીતિ, જ્ઞાન કે ક્રિયા એમાંના એક વિષયને વિશેષ વર્ણવ્યો, એથી બીજા માનવાયોગ્ય વિષયો તેમણે દૂષિત કરી દીધા. વળી જે વિષયો તેમણે વર્ણવ્યા તે સર્વ ભાવ ભેદે તેઓએ કંઇ જાણ્યા નહોતા, પણ પોતાની મહાબુદ્ધિ અનુસારે બહુ વર્ણવ્યા. તાર્કિક સિદ્ધાંત દ્રષ્ટાંતાદિકથી સામાન્ય બુદ્ધિવાળા આગળ કે જડભરત આગળ તેઓએ સિદ્ધ કરી બતાવ્યો. કીર્તિ, લોકહિત, કે ભગવાન મનાવાની આકાંક્ષા એમાંની એકાદિ પણ એમના મનની ભ્રમણા હોવાથી અત્યુગ્ર ઉદ્યમાદિકથી તેઓ જય પામ્યા. કેટલાકે શૃંગાર અને

લહેરી[1] સાધનોથી મનુષ્યનાં મન હરણ કર્યાં. દુનિયા મોહિનીમાં તો મૂળે ડૂબી પડી છે; એટલે એ લહેરી દર્શનથી ગાડરરૂપે થઇને તેઓએ રાજી થઇ તેનું કહેવું માન્ય રાખ્યું. કેટલાકે નીતિ તથા કંઈ વૈરાગ્યાદિ ગુણ દેખી તે કથન માન્ય રાખ્યું. પ્રવર્તકની બુદ્ધિ તેઓ કરતાં વિશેષ હોવાથી તેને પછી ભગવાનરૂપ જ માની લીધા. કેટલાકે વૈરાગ્યથી ધર્મમત ફેલાવી પાછળથી કેટલાંક સુખશીલિયાં સાધનનો બોધ ખોસી દીધો. પોતાનો મત સ્થાપન કરવાની મહાન ભ્રમણાએ અને પોતાની અપૂર્ણતા ઇત્યાદિક ગમે તે કારણથી બીજાનું કહેલું પોતાને ન રુચ્યું એટલે તેણે જુદો જ રાહ કાઢ્યો. આમ અનેક મતમતાંતરની જાળ થતી ગઈ. ચાર પાંચ પેઢી એકનો એક ધર્મ પાળ્યો એટલે પછી તે કુળધર્મ થઈ પડ્યો. એમ સ્થળે સ્થળે થતું ગયું.

શિક્ષાપાઠ ૯૦. ધર્મના મતભેદ, ભાગ ૩.—

જો એક દર્શન પૂર્ણ અને સત્ય ન હોય તો બીજા ધર્મમતને અપૂર્ણ અને અસત્ય કોઇ પ્રમાણથી કહી શકાય નહીં; એ માટે થઇને જે એક દર્શન પૂર્ણ અને સત્ય છે તેનાં તત્ત્વપ્રમાણથી બીજા મતોની અપૂર્ણતા અને એકાંતિકતા જોઇએ.

એ બીજા ધર્મમતોમાં તત્ત્વજ્ઞાન સંબંધી યથાર્થ સૂક્ષ્મ વિચારો નથી. કેટલાક જગત્કર્તાનો બોધ કરે છે,

---

૧. પાઠાન્તર—લૌકિકિચ્છિત.

પણ જગત્કર્ત્તા પ્રમાણવડે સિદ્ધ થઈ શકતો નથી. કેટલાક જ્ઞાનથી મોક્ષ છે એમ કહે છે તે એકાંતિક છે; તેમજ ક્રિયાથી મોક્ષ છે એમ કહેનારા પણ એકાંતિક છે. જ્ઞાન, ક્રિયા એ બન્નેથી મોક્ષ કહેનારા તેના યથાર્થ સ્વરૂપને જાણતા નથી અને એ બન્નેના ભેદ શ્રેણિબંધ નથી કહી શક્યા એ જ એમની સર્વજ્ઞતાની ખામી જણાઇ આવે છે. સત્દેવતત્ત્વમાં કહેલાં અષ્ટાદશ દૂષણોથી એ ધર્મમતસ્થાપકો રહિત નહોતા એમ એઓનાં ગૂંથેલાં ચરિત્રો પરથી પણ તત્ત્વની દૃષ્ટિએ દેખાય છે. કેટલાક મતોમાં હિંસા, અબ્રહ્મચર્ય ઇ૦ અપવિત્ર વિષયોનો બોધ છે તે તો સહજમાં અપૂર્ણ અને સરાગીનાં સ્થાપેલાં જોવામાં આવે છે. કોઇએ એમાં સર્વવ્યાપક મોક્ષ, કોઇએ કંઈ નહીં એ રૂપ મોક્ષ, કોઇએ સાકારમોક્ષ અને કોઇએ અમુક કાળ સુધી રહી પતિત થવું એ રૂપે મોક્ષ માન્યો છે; પણ એમાંથી કોઇ વાત તેઓની સપ્રમાણ થઇ શકતી નથી. [1]"એઓના અપૂર્ણ વિચારોનું ખંડન યથાર્થ જોવા જેવું છે અને તે નિર્ગ્રંથ આચાર્યોનાં ગૂંથેલાં શાસ્ત્રોથી મળી શકશે.'

વેદ સિવાયના બીજા મતોના પ્રવર્તકો, એમના ચરિત્રો, વિચારો ઈત્યાદિક વાંચવાથી અપૂર્ણ છે એમ જણાઈ આવે છે. [2]'વેદે, પ્રવર્તક ભિન્ન ભિન્ન કરી નાંખી

---

૧ દ્વિ૦ આ૦ પાઠ—'એઓનાં વિચારોનું અપૂર્ણપણું નિસ્પૃહ તત્ત્વવેત્તાઓએ દર્શાવ્યું છે તે યથાસ્થિત જાણવું યોગ્ય છે.' ૨ 'વર્તમાનમાં જે વેદો છે તે ઘણા પ્રાચીન ગ્રંથો છે તેથી તે મતનું પ્રાચીનપણું છે. પરંતુ તે પણ હિંસાએ કરીને દૂષિત હોવાથી અપૂર્ણ છે, તેમજ સરાગીનાં વાક્ય છે. એમ સ્પષ્ટ જણાય છે.'

બેધડકતાથી વાત મર્મમાં નાંખી ગંભીર ડોળ પણ કર્યો છે. છતાં એમના પુષ્કળ મતો વાંચવાથી એ પણ અપૂર્ણ અને એકાંતિક જણાઇ આવશે.'

જે પૂર્ણ દર્શન વિષે અત્રે કહેવાનું છે તે જૈન એટલે નિરાગીનાં સ્થાપન કરેલાં દર્શન વિષે છે. એના બોધદાતા સર્વજ્ઞ અને સર્વદર્શી હતા. કાળભેદ છે તોપણ એ વાત સિદ્ધાંતિક જણાય છે. દયા, બ્રહ્મચર્ય, શીલ, વિવેક, વૈરાગ્ય જ્ઞાન ક્રિયાદિ એના જેવાં પૂર્ણ એકેએ વર્ણવ્યાં નથી. તેની સાથે શુદ્ધ આત્મજ્ઞાન, તેની કોટિઓ, જીવનાં ચ્યવન, જન્મ, ગતિ, વિગતિ, યોનિદ્વાર, પ્રદેશ, કાળ; તેનાં સ્વરૂપ એ વિષે એવો સૂક્ષ્મ બોધ છે કે જે વડે તેની સર્વજ્ઞતાની નિઃશંકતા થાય. કાળભેદે પરમ્પરામ્નાયથી કેવળજ્ઞાનાદિ જ્ઞાનો જોવામાં નથી આવતાં છતાં જે જે જિનેશ્વરનાં રહેલાં સિદ્ધાંતિક વચનો છે તે અખંડ છે. તેઓના કેટલાક સિદ્ધાંતો એવા સૂક્ષ્મ છે કે, જે એકેક વિચારતાં આખી જીંદગી વહી જાય તેવું છે. આગળ પર કેટલુંક એ સંબંધી કહેવાનું છે.

જિનેશ્વરનાં કહેલાં ધર્મતત્ત્વથી કોઇ પણ પ્રાણીને લેશ ખેદ ઉત્પન્ન થતો નથી. સર્વ આત્માની રક્ષા અને સર્વાત્મ-શક્તિનો પ્રકાશ એમાં રહ્યો છે. એ ભેદો વાંચવાથી, સમજવાથી અને તે પર અતિ અતિ સૂક્ષ્મ વિચાર કરવાથી આત્મશક્તિ પ્રકાશ પામી જૈનદર્શનની સર્વજ્ઞતાની સર્વો-ત્કૃષ્ટપણાની હા કહેવરાવે છે. બહુ મનનથી સર્વ ધર્મમત

જાણી પછી તુલના કરનારને આ કથન અવશ્ય સિદ્ધ થશે.

એ સર્વજ્ઞ દર્શનનાં મૂળતત્ત્વો અને બીજા મતનાં મૂળતત્ત્વો વિષે અહીં વિશેષ કહી શકાય તેટલી જગ્યા નથી.

શિક્ષાપાઠ ૬૧. સુખ વિષે વિચાર, ભાગ ૧.—

એક બ્રાહ્મણ દરિદ્રાવસ્થાથી કરીને બહુ પીડાતો હતો. તેણે કંટાળીને છેવટે દેવનું ઉપાસન કરી લક્ષ્મી મેળવવાનો નિશ્ચય કર્યો. પોતે વિદ્વાન હોવાથી ઉપાસના કરવા પહેલાં વિચાર કર્યો કે કદાપિ દેવ તો કોઈ તુષ્ટમાન થશે; પણ પછી તે આગળ સુખ કયું માગવું ? તપ કરી પછી માગવામાં કંઇ સૂજે નહીં, અથવા ન્યૂનાધિક સૂજે તો કરેલો તપ પણ નિરર્થક જાય; માટે એક વખત આખા દેશમાં પ્રવાસ કરવો. સંસારના મહત્પુરુષોનાં ધામ, વૈભવ અને સુખ જોવાં. એમ નિશ્ચય કરી તે પ્રવાસમાં નીકળી પડયો. ભારતનાં જે જે રમણીય અને રિદ્ધિમાન શહેરો હતાં તે જોયાં. યુક્તિ-પ્રયુક્તિએ રાજાધિરાજનાં અંતઃપુર, સુખ અને વૈભવ જોયાં. શ્રીમંતોના આવાસ, વહીવટ, બાગબગીચા અને કુટુંબ પરિવાર જોયા; પણ એથી તેનું કોઈ રીતે મન માન્યું નહીં. કોઇને સ્ત્રીનું દુઃખ, કોઇને પતિનું દુઃખ, કોઇને અજ્ઞાનથી દુઃખ, કોઇને વહાલાંના વિયોગનું દુઃખ, કોઇને નિર્ધનતાનું

દુઃખ, કોઇ ને લક્ષ્મીની ઉપાધિનું દુઃખ, કોઇને શરીરસંબંધી દુઃખ, કોઇને પુત્રનું દુઃખ, કોઇને શત્રુનું દુઃખ, કોઇને જડતાનું દુઃખ, કોઇને માબાપનું દુઃખ, કોઇને વૈધવ્ય દુઃખ, કોઇ ને કુટુંબનું દુઃખ, કોઇને પોતાનાં નીચકુળનું દુઃખ, કોઇને પ્રીતિનું દુઃખ, કોઈને ઇર્ષ્યાનું દુઃખ, કોઈને હાનિનું દુઃખ, એમ એક બે વિશેષ કે બધાં દુઃખ સ્થળે સ્થળે તે વિપ્રના જોવામાં આવ્યાં. એથી કરીને એનું મન કોઇ સ્થળે માન્યું નહીં; જ્યાં જુએ ત્યાં દુઃખ તો ખરું જ. કોઈ સ્થળે સંપૂર્ણ સુખ તેના જોવામાં આવ્યું નહીં. હવે ત્યારે શું માગવું ? એમ વિચારતાં વિચારતાં એક મહાધનાઢ્યની પ્રશંસા સાંભળીને તે દ્વારિકામાં આવ્યો. દ્વારિકા મહાઋદ્ધિમાન, વૈભવયુક્ત, બાગબગીચાવડે કરીને સુશોભિત અને વસ્તીથી ભરપૂર શહેર તેને લાગ્યું. સુંદર અને ભવ્ય આવાસો જોતો, અને પૂછતો પૂછતો તે પેલા મહાધનાઢ્યને ઘેર ગયો. શ્રીમંત સુખગૃહમાં બેઠા હતા. તેણે અતિથિ જાણીને બ્રાહ્મણને સન્માન આપ્યું; કુશળતા પૂછી અને ભોજનની તેઓને માટે યોજના કરાવી. જરા વાર જવા દઈ ધીરજથી શેઠે બ્રાહ્મણને પૂછ્યું, આપનું આગમન કારણ જો મને કહેવા જેવું હોય તો કહો. બ્રાહ્મણે કહ્યું, હમણાં આપ ક્ષમા રાખો; આપનો સઘળી જાતનો વૈભવ, ધામ, બાગબગીચા ઈત્યાદિક મને દેખાડવું પડશે; એ જોયા પછી આગમન કારણ કહીશ. શેઠે એનું કંઇ મર્મરૂપ કારણ જાણીને કહ્યું, ભલે આનંદપૂર્વક આપની ઈચ્છા પ્રમાણે કરો. જમ્યા પછી બ્રાહ્મણે શેઠને પોતે સાથે આવીને ધામાદિક બતાવવા વિનંતિ કરી. ધનાઢ્યે તે માન્ય રાખી; અને પોતે સાથે જઇ બાગબગીચા, ધામ,

વૈભવ એ સઘળું દેખાડયું. શેઠની સ્ત્રી, પુત્રો પણ ત્યાં બ્રાહ્મણના જોવામાં આવ્યા. યોગ્યતાપૂર્વક તેઓએ તે બ્રાહ્મણનો સત્કાર કર્યો. એઓનાં રૂપ, વિનય અને સ્વચ્છતા તેમજ મધુરવાણી જોઈને બ્રાહ્મણ રાજી થયો. પછી તેની દુકાનનો વહીવટ જોયો. સોએક વહીવટિયા ત્યાં બેઠેલા જોયા. તેઓ પણ માયાળુ, વિનયી અને નમ્ર તે બ્રાહ્મણના જોવામાં આવ્યા. એથી તે બહુ સંતુષ્ટ થયો. એનું મન અહીં કંઈક સંતોષાયું. સુખી તો જગતમાં આ જ જણાય છે એમ તેને લાગ્યું.

શિક્ષાપાઠ ૬૨. સુખવિષે વિચાર, ભાગ. ૨.—

કેવાં એનાં સુંદર ઘર છે! તેની સ્વચ્છતા અને જાળવણી કેવી સુંદર છે! કેવી શાણી અને મનોજ્ઞા તેની સુશીલ સ્ત્રી છે! તેના કેવા કાંતિમાન અને કહ્યાગરા પુત્રો છે! કેવું સંપીલું તેનું કુટુંબ છે! લક્ષ્મીની મહેર પણ એને ત્યાં કેવી છે! આખા ભારતમાં એના જેવો બીજો કોઇ સુખી નથી. હવે તપ કરીને જો હું માગું તો આ મહાધનાઢ્ય જેવું જ સઘળું માગું, બીજી ચાહના કરું નહીં.

દિવસ વીતી ગયો અને રાત્રિ થઇ. સૂવાનો વખત થયો. ધનાઢ્ય અને બ્રાહ્મણ એકાંતમાં બેઠા હતા; પછી ધનાઢ્યે વિપ્રને આગમન કારણ કહેવા વિનંતિ કરી.

વિપ્ર—હું ઘેરથી એવો વિચાર કરી નીકળ્યો હતો કે બધાથી વધારે સુખી કોણ છે તે જોવું; અને તપ કરીને પછી એના જેવું સુખ સંપાદન કરવું. આખા ભારત અને

તેનાં સઘળાં રમણીય સ્થળો જોયાં; પરંતુ કોઇ રાજાધિરાજાને ત્યાં પણ મને સંપૂર્ણ સુખ જોવામાં આવ્યું નહીં. જ્યાં જોયું ત્યાં આધિ, વ્યાધિ અને ઉપાધિ જોવામાં આવી. આ ભણી આવતાં આપની પ્રશંસા સાંભળી, એટલે હું અહીં આવ્યો; અને સંતોષ પણ પામ્યો. આપના જેવી રિદ્ધિ, સત્પુત્ર, કમાઇ, સ્ત્રી, કુટુંબ, ઘર વગેરે મારા જોવામાં ક્યાંય આવ્યું નથી. આપ પોતે પણ ધર્મશીલ, સદ્દગુણી અને જિનેશ્વરના ઉત્તમ ઉપાસક છો. એથી હું એમ માનું છું કે આપના જેવું સુખ બીજે નથી. ભારતમાં આપ વિશેષ સુખી છો. ઉપાસના કરીને કદાપિ દેવ કને યાચું તો આપના જેવી સુખસ્થિતિ યાચું.

ધનાઢ્ય—પંડિતજી, આપ એક બહુ મર્મભરેલા વિચારથી નીકળ્યા છો; એટલે અવશ્ય આપને જેમ છે તેમ સ્વાનુભવી વાત કહું છું; પછી જેમ તમારી ઇચ્છા થાય તેમ કરજો. મારે ત્યાં આપે જે જે સુખ જોયાં તે તે સુખ ભારતસંબંધમાં ક્યાંય નથી એ આપે કહ્યું તો તેમ હશે; પણ ખરું એ મને સંભવતું નથી; પરંતુ મારો સિદ્ધાંત આવો છે કે જગતમાં કોઇ સ્થળે વાસ્તવિક સુખ નથી. જગત દુઃખથી કરીને દાઝતું છે. તમે મને સુખી જુઓ છો પણ વાસ્તવિક રીતે હું સુખી નથી.

વિપ્ર—આપનું આ કહેવું કોઈ અનુભવસિદ્ધ અને માર્મિક હશે. મેં અનેક શાસ્ત્રો જોયાં છે; છતાં મર્મપૂર્વક

વિચારો આવા લક્ષમાં લેવા પરિશ્રમ જ લીધો નથી. તેમ મને એવો અનુભવ સર્વને માટે થઈને થયો નથી. હવે આપને શું દુઃખ છે ? તે મને કહો.

ધનાઢ્ય—પંડિતજી, આપની ઇચ્છા છે તો હું કહું છું તે લક્ષપૂર્વક મનન કરવા જેવું છે; અને એ ઉપરથી કંઈ રસ્તો પામવા જેવું છે.

શિક્ષાપાઠ ૬૩. સુખવિષે વિચાર. ભાગ ૩.—

જે સ્થિતિ હમણાં મારી આપ જુઓ છો તેવી સ્થિતિ લક્ષ્મી, કુટુંબ અને સ્ત્રીસંબંધમાં આગળ પણ હતી. જે વખતની હું વાત કરું છું, તે વખતને લગભગ વીશ વર્ષ થયાં. વ્યાપાર અને વૈભવની બહોળાશ એ સઘળું વહીવટ અવળો પડવાથી ઘટવા મંડ્યું. કોટ્યાવધિ કહેવાતો હું ઉપરાઉપરી ખોટના ભાર વહન કરવાથી લક્ષ્મી વગરનો માત્ર ત્રણ વર્ષમાં થઈ પડ્યો: જ્યાં કેવળ સવળું ધારીને નાંખ્યું હતું ત્યાં અવળું પડ્યું. એવામાં મારી સ્ત્રી પણ ગુજરી ગઈ: તે વખતમાં મને કંઈ સંતાન નહોતું. જબરી ખોટોને લીધે મારે અહીંથી નીકળી જવું પડ્યું. મારા કુટુંબીઓએ થતી રક્ષા કરી; પરંતુ તે આભ ફાટ્યાનું થીગડું હતું. અન્નને અને દાંતને વેર થવાની સ્થિતિએ હું બહુ આગળ નીકળી પડ્યો. જ્યારે હું ત્યાંથી નીકળ્યો ત્યારે મારા કુટુંબીઓ મને રોકી રાખવા મંડ્યાં કે તેં ગામનો દરવાજો પણ દીઠો નથી, માટે તને જવા દઈ શકાય નહીં. તારું કોમળ શરીર કંઈપણ કરી શકે નહીં; અને તું ત્યાં

જા અને સુખી થા તો પછી આવ પણ નહીં; માટે એ વિચાર તારે માંડી વાળવો. ઘણા પ્રકારથી તેઓને સમજાવી, સારી સ્થિતિમાં આવીશ ત્યારે અવશ્ય અહીં આવીશ, એમ વચન દઈ જાવાબંદર હું પર્યટને નીકળી પડ્યો.

પ્રારબ્ધ પાછાં વળવાની તૈયારી થઇ. દૈવયોગે મારી કને એક દમડી પણ રહી નહોતી. એક કે બે મહિના ઉદરપોષણ ચાલે તેવું સાધન રહ્યું નહોતું. છતાં જાવામાં હું ગયો; ત્યાં મારી બુદ્ધિએ પ્રારબ્ધ ખીલવ્યાં. જે વહાણમાં હું બેઠો હતો તે વહાણના નાવિકે મારી ચંચળતા અને નમ્રતા જોઇને પોતાના શેઠ આગળ મારાં દુઃખની વાત કરી. તે શેઠે મને બોલાવી અમુક કામમાં ગોઠવ્યો; જેમાં હું મારા પોષણથી ચોગણું પેદા કરતો હતો. એ વેપારમાં મારું ચિત્ત જ્યારે સ્થિર થયું ત્યારે ભારતસાથે એ વેપાર વધારવા મેં પ્રયત્ન કર્યું અને તેમાં ફાવ્યો. બે વર્ષમાં પાંચ લાખ જેટલી કમાઇ થઇ. પછી શેઠ પાસેથી રાજી ખુશીથી આજ્ઞા લઇ મેં કેટલોક માલ ખરીદી દ્વારિકા ભણી આવવાનું કર્યું. થોડે કાળે ત્યાં આવી પહોંચ્યો ત્યારે બહુ લોક સન્માન આપવા મને સામા આવ્યા હતા. હું મારાં કુટુંબીઓને આનંદભાવથી જઇ મળ્યો. તેઓ મારાં ભાગ્યની પ્રશંસા કરવા લાગ્યાં. જાવેથી લીધેલા માલે મને એકના પાંચ કરાવ્યા. પંડિતજી ! ત્યાં કેટલાક પ્રકારથી મારે પાપ કરવાં પડ્યાં હતાં; પૂરું ખાવાં પણ હું પામ્યો નહોતો; પરંતુ એકવાર લક્ષ્મી સાધ્ય કરવાનો જે પ્રતિજ્ઞાભાવ કર્યો હતો તે પ્રારબ્ધયોગથી પળ્યો. જે દુઃખદાયક સ્થિતિમાં હું

હતો તે દુઃખમાં શું ખામી હતી ? સ્ત્રી, પુત્ર એ તો જાણે નહોતાં જ; માબાપ આગળથી પરલોક પામ્યાં હતાં. કુટુંબીઓના વિયોગવડે અને વિના દમડીએ જાવે જે વખતે હું ગયો તે વખતની સ્થિતિ અજ્ઞાનદૃષ્ટિથી આંખમાં આંસુ આણી દે તેવી છે; આ વખતે પણ ધર્મમાં લક્ષ રાખ્યું હતું. દિવસનો અમુક ભાગ તેમાં રોકતો હતો, તે લક્ષ્મી કે એવી લાલચે નહીં; પરંતુ સંસારદુઃખથી એ તારનાર સાધન છે એમ ગણીને, મોતનો ભય ક્ષણ પણ દૂર નથી; માટે એ કર્તવ્ય જેમ બને તેમ કરી લેવું, એ મારી મુખ્ય નીતિ હતી. દુરાચારથી કંઈ સુખ નથી; મનની તૃપ્તિ નથી; અને આત્માની મલિનતા છે. એ તત્ત્વ ભણી મેં મારું લક્ષ દોરેલું હતું.

શિક્ષાપાઠ ૬૪. સુખવિષે વિચાર, ભાગ ૪.—

અહીં આવ્યા પછી હું સારા ઠેકાણાની કન્યા પામ્યો. તે પણ સુલક્ષણી અને મર્યાદશીલ નીવડી; એ વડે કરીને મારે ત્રણ પુત્ર થયા. વહીવટ પ્રબળ હોવાથી અને નાણું નાણાંને વધારતું હોવાથી દશ વર્ષમાં હું મહાકોટ્યાવધિ થઇ પડ્યો. પુત્રની નીતિ, વિચાર અને બુદ્ધિ ઉત્તમ રહેવા મેં બહુ સુંદર સાધનો ગોઠવ્યાં, જેથી તેઓ આ સ્થિતિ પામ્યા છે. મારાં કુટુંબીઓને યોગ્ય યોગ્ય સ્થળે ગોઠવી તેઓની સ્થિતિને સુધરતી કરી. દુકાનના મેં અમુક નિયમો બાંધ્યા. ઉત્તમ ધામનો આરંભ કરી લીધો, આ ફક્ત એક મમત્વ ખાતર કર્યું. ગયેલું પાછું મેળવ્યું; અને કુળ પરંપરાનું

નામાંકિતપણું જતું અટકાવ્યું, એમ કહેવરાવવા માટે આ સઘળું મેં કર્યું; એને હું સુખ માનતો નથી. જો કે હું બીજા કરતાં સુખી છું; તોપણ એ શાતાવેદની છે; સત્સુખ નથી. જગતમાં બહુધા કરીને અશાતાવેદની છે. મેં ધર્મમાં મારો કાળ ગાળવાનો નિયમ રાખ્યો છે. સત્શાસ્ત્રોનાં વાંચન, મનન, સત્પુરુષોનો સમાગમ, યમનિયમ, એક મહિનામાં બાર દિવસ બ્રહ્મચર્ય, બનતું ગુપ્તદાન, એ આદિ ધર્મરૂપે મારો કાળ ગાળું છું. સર્વ વ્યવહારસંબંધીની ઉપાધિમાંથી કેટલોક ભાગ બહુ અંશે મેં ત્યાગ્યો છે. પુત્રોને વ્યવહારમાં યથાયોગ્ય કરીને હું નિર્ગ્રંથ થવાની ઇચ્છા રાખું છું. હમણાં નિર્ગ્રંથ થઇ શકું તેમ નથી; એમાં સંસારમોહિની કે એવું કારણ નથી; પરંતુ તે પણ ધર્મસંબંધી કારણ છે. ગૃહસ્થધર્મનાં આચરણ બહુ કનિષ્ટ થઈ ગયાં છે; અને મુનિઓ તે સુધારી શકતા નથી. ગૃહસ્થ ગૃહસ્થને વિશેષ બોધ કરી શકે; આચરણથી પણ અસર કરી શકે. એટલા માટે થઈને ધર્મસંબંધે ગૃહસ્થ વર્ગને હું ઘણે ભાગે બોધી યમનિયમમાં આણું છું. દર સપ્તાહે આપણે ત્યાં પાંચસેં જેટલા સદ્ગૃહસ્થોની સભા ભરાય છે. આઠ દિવસનો નવો અનુભવ અને બાકીનો આગળનો ધર્માનુભવ એમને બે ત્રણ મુહૂર્ત બોધું છું. મારી સ્ત્રી ધર્મશાસ્ત્રનો કેટલોક બોધ પામેલી હોવાથી તે પણ સ્ત્રીવર્ગને ઉત્તમ યમનિયમનો બોધ કરી સપ્તાહિક સભા ભરે છે. પુત્રો પણ શાસ્ત્રનો બનતો પરિચય રાખે છે. વિદ્વાનોનું સન્માન, અતિથિનું સન્માન, વિનય અને સામાન્ય સત્યતા, એકજ ભાવ એવા નિયમો બહુધા

સારો અનુચરો પણ સેવે છે. એઓ બધા એથી શાતા ભોગવી શકે છે. લક્ષ્મીની સાથે મારી નીતિ, ધર્મ, સદ્‌ગુણ, વિનય એણે જનસમુદાયને બહુ સારી અસર કરી છે. રાજાસહિત પણ મારી નીતિવાત અંગીકાર કરે તેવું થયું છે. આ સઘળું આત્મપ્રશંસા માટે હું કહેતો નથી એ આપે સ્મૃતિમાં રાખવું; માત્ર આપના પૂછેલા ખુલાસા દાખલ આ સઘળું સંક્ષેપમાં કહેતો જઉં છું.

શિક્ષાપાઠ ૯૫. સુખવિષે વિચાર, ભાગ ૫.—

આ સઘળાં ઉપરથી હું સુખી છું એમ આપને લાગી શકશે અને સામાન્ય વિચારે મને બહુ સુખી માનો તો માની શકાય તેમ છે. ધર્મ, શીલ અને નીતિથી તેમજ શાસ્ત્રાવધાનથી મને જે આનંદ ઉપજે છે તે અવર્ણનીય છે. પણ તત્ત્વદૃષ્ટિથી હું સુખી ન મનાઉં. જ્યાંસુધી સર્વ પ્રકારે બાહ્ય અને અભ્યંતર પરિગ્રહ મેં ત્યાગ્યા નથી ત્યાંસુધી રાગ દોષનો ભાવ છે. જો કે તે બહુ અંશે નથી, પણ છે; તો ત્યાં ઉપાધિ પણ છે. સર્વસંગપરિત્યાગ કરવાની મારી સંપૂર્ણ આકાંક્ષા છે; પણ જ્યાં સુધી તેમ થયું નથી ત્યાંસુધી હજુ કોઈ ગણાતાં પ્રિયજનનો વિયોગ, વ્યવહારમાં હાનિ, કુટુંબીનું દુઃખ એ થોડે અંશે પણ ઉપાધિ આપી શકે. પોતાના દેહપર મોત સિવાય પણ નાના પ્રકારના રોગનો સંભવ છે. માટે કેવળ નિર્ગ્રંથ, બાહ્યાભ્યંતર પરિગ્રહનો ત્યાગ, અલ્પારંભનો ત્યાગ એ

સઘળું નથી થયું ત્યાંસુધી હું મને કેવળ સુખી માનતો નથી. હવે આપને તત્ત્વની દૃષ્ટિએ વિચારતાં માલુમ પડશે કે લક્ષ્મી, સ્ત્રી, પુત્ર કે કુટુંબ એવડે સુખ નથી; અને એને સુખ ગણું તો જ્યારે મારી સ્થિતિ પતિત થઇ હતી ત્યારે એ સુખ ક્યાં ગયું હતું? જેનો વિયોગ છે, જે ક્ષણભંગુર છે. અને જ્યાં એકત્વ કે અવ્યાબાધપણું નથી તે સુખ સંપૂર્ણ નથી. એટલા માટે થઇને હું મને સુખી કહી શકતો નથી. હું બહુ વિચારી વિચારી વ્યાપાર વહીવટ કરતો હતો. તોપણ મારે આરંભોપાધિ, અનીતિ અને લેશ પણ કપટ સેવવું પડયું નથી, એમ તો નથી. અનેક પ્રકારનાં આરંભ અને કપટ મારે સેવવાં પડયાં હતાં. આપ જો ધારતા હો કે દેવોપાસનથી લક્ષ્મી પ્રાપ્ત કરવી, તો તે જો પુણ્ય ન હોય તો કોઈ કાળે મળનાર નથી. પુણ્યથી લક્ષ્મી પામી મહારંભ, કપટ અને માનપ્રમુખ વધારવાં તે મહાપાપનાં કારણ છે; પાપ નરકમાં નાખે છે. પાપથી આત્મા, પામેલો મહાન મનુષ્યદેહ એળે ગુમાવી દે છે. એક તો જાણે પુણ્યને ખાઈ જવાં; બાકી વળી પાપનું બંધન કરવું; લક્ષ્મીની અને તે વડે આખા સંસારની ઉપાધિ ભોગવવી તે હું ધારું છું કે વિવેકી આત્માને માન્ય ન હોય. મેં જે કારણથી લક્ષ્મી ઉપાર્જન કરી હતી, તે કારણ મેં આગળ આપને જણાવ્યું હતું. જેમ આપની ઇચ્છા હોય તેમ કરો. આપ વિદ્વાન છો, હું વિદ્વાનને ચાહું છું. આપની અભિલાષા હોય તો ધર્મધ્યાનમાં પ્રસક્ત થઇ સહકુટુંબ અહીં ભલે રહો. આપની ઉપજીવિકાની સરળ યોજના જેમ કહો તેમ હું રુચિપૂર્વક કરાવી આપું. અહીં શાસ્ત્રાધ્યયન અને સત્‌વસ્તુનો ઉપદેશ

ફરો. સિથ્યાંરભોપાધિની લોલુપતામાં હું ધારું છું કે ન પડો, પછી આપની જેવી ઈચ્છા.

પંડિત—આપે આપના અનુભવની બહુ મનન કરવા જેથી આખ્યાયિકા કહી. આપ અવશ્ય કોઈ મહાત્મા છો. પુણ્યાનુબંધી પુણ્યવાન જીવ છો; વિવેકી છો; આપની શક્તિ અદ્દભુત છે; હું દરિદ્રતાથી કંટાળીને જે ઇચ્છા રાખતો હતો તે એકાંતિક હતી. આવા સર્વ પ્રકારના વિવેકી વિચાર મેં કર્યા ન હોતા. આવો અનુભવ આવી વિવેક-શક્તિ હું ગમે તેવો વિદ્વાન છું છતાં મારામાં નથી જ. એ હું સત્ય જ કહું છું. આપે મારે માટે જે યોજના દર્શાવી તે માટે આપનો બહુ ઉપકાર માનું છું; અને નમ્રતાપૂર્વક એ હું અંગીકાર કરવા હર્ષ બતાવું છું. હું ઉપાધિને ચાહતો નથી. લક્ષ્મીનો ફંદ ઉપાધિ જ આપે છે. આપનું અનુભવસિદ્ધ કથન મને બહુ રુચ્યું છે. સંસાર બળતો જ છે, એમાં સુખ નથી. આપે નિરુપાધિક મુનિ-સુખની પ્રશંસા કહી તે સત્ય છે. તે સન્માર્ગ પરિણામે સર્વોપાધિ, આધિ વ્યાધિ અને સર્વ અજ્ઞાનભાવ રહિત એવા શાશ્વત મોક્ષનો હેતુ છે.

શિક્ષાપાઠ ૯૬. સુખવિષે વિચાર, ભાગ ૬.—

ધનાઢ્ય—આપને મારી વાત રુચી એથી હું નિરા-ભિમાનપૂર્વક આનંદ પામું છું. આપને માટે હું યોગ્ય યોજના કરીશ. મારા સામાન્ય વિચારો કથાનુરૂપ અહીં હું કહેવાની આજ્ઞા લઉં છું.

જેઓ કેવળ લક્ષ્મીને ઉપાર્જન કરવામાં કપટ, લોભ અને માયામાં મુંઝાયા પડયા છે તે બહુ દુઃખી છે. તેનો તે પૂરો ઉપયોગ કે અધુરો ઉપયોગ કરી શકતા નથી. માત્ર ઉપાધિજ ભોગવે છે. તે અસંખ્યાત પાપ કરે છે. તેને કાળ અચાનક લઈને ઉપાડી જાય છે. અધોગતિ પામી તે જીવ અનંત સંસાર વધારે છે. મળેલો મનુષ્યદેહ એ નિર્મૂલ્ય કરી નાખે છે જેથી તે નિરંતર દુઃખીજ છે.

જેણે પોતાનાં ઉપજીવિકા જેટલાં સાધનમાત્ર અલ્પારંભથી રાખ્યાં છે, શુદ્ધ એક પત્નીવ્રત, સંતોષ, પરાત્માની રક્ષા; યમ, નિયમ, પરોપકાર, અલ્પરાગ, અલ્પદ્રવ્યમાયા અને સત્ય તેમજ શાસ્ત્રાધ્યયન રાખ્યું છે, જે સત્પુરુષોને સેવે છે, જેણે નિર્ગ્રંથતાનો મનોરથ રાખ્યો છે, બહુ પ્રકારે કરીને સંસારથી જે ત્યાગી જેવો છે, જેના વૈરાગ્ય અને વિવેક ઉત્કૃષ્ટ છે તે પવિત્રતામાં સુખ પૂર્વક કાળ નિર્ગમન કરે છે.'

સર્વ પ્રકારના આરંભ અને પરિગ્રહથી જેઓ રહિત થયા છે, દ્રવ્યથી, ક્ષેત્રથી કાળથી અને ભાવથી જેઓ અપ્રતિબંધપણે વિચરે છે, શત્રુ-મિત્ર પ્રત્યે જે સમાન દૃષ્ટિવાળા છે અને શુદ્ધ આત્મધ્યાનમાં જેમનો કાળ નિર્ગમન થાય છે, અથવા સ્વાધ્યાય ધ્યાનમાં જે લીન છે, એવા જિતેંદ્રિય અને જિતકષાય તે નિર્ગ્રંથો પરમ સુખી છે.

સર્વ ઘનઘાતી કર્મનો ક્ષય જેમણે કર્યો છે, ચાર કર્મ

પાતળાં જેનાં પડયાં છે, જે મુક્ત છે, જે અનંતજ્ઞાની અને અનંતદર્શી છે તે તો સંપૂર્ણ સુખી જ છે. મોક્ષમાં તેઓ અનંત જીવનનાં અનંતસુખમાં સર્વ કર્મ વિરક્તતાથી વિરાજે છે.

આમ સત્પુરુષોએ કહેલો મત મને માન્ય છે. પહેલો તો મને ત્યાજ્ય છે. બીજો હમણાં માન્ય છે; અને ઘણે ભાગે એ ગ્રહણ કરવાનો મારો બોધ છે. ત્રીજો બહુ માન્ય છે. અને ચોથો તો સર્વમાન્ય અને સચ્ચિદાનંદ સ્વરૂપ છે.

એમ પંડિતજી આપની અને મારી સુખસંબંધી વાતચીત થઈ. પ્રસંગોપાત તે વાત ચર્ચતા જઇશું. તેપર વિચાર કરીશું. આ વિચારો આપને કહ્યાથી મને બહુ આનંદ થયો છે. આપ તેવા વિચારને અનુકૂળ થયા એથી વળી આનંદમાં વૃદ્ધિ થઇ છે. પરસ્પર એમ વાતચિત કરતાં કરતાં હર્ષભેર પછી તેઓ સમાધિભાવથી શયન કરી ગયા.

જે વિવેકીઓ આ સુખસંબંધી વિચાર કરશે તેઓ બહુ તત્ત્વ અને આત્મશ્રેણિની ઉત્કૃષ્ટતાને પામશે. એમાં કહેલા અલ્પારંભી નિરારંભી અને સર્વમુક્ત લક્ષણો લક્ષપૂર્વક મનન કરવા જેવાં છે. જેમ બને તેમ અલ્પારંભી થઇ સમભાવથી જનસમુદાયના હિત ભણી વળવું. પરોપકાર, દયા, શાંતિ, ક્ષમા અને પવિત્રતાનું સેવન કરવું એ બહુ સુખદાયક છે. નિર્ગ્રંથતા વિષે તો વિશેષ કહેવારૂપ જ નથી. મુક્તાત્મા તો અનંત સુખમય જ છે.

શિક્ષાપાઠ ૬૭. અમૂલ્ય તત્ત્વવિચાર—

હરિગીત છંદ

બહુ પુણ્યકેરા પુંજથી શુભ દેહ માનવનો મળ્યો,
તોયે અરે! ભવચક્રનો આંટો નહિ એકકે ટળ્યો;
સુખ પ્રાપ્ત કરતાં સુખ ટળે છે લેશ એ લક્ષે લહો,
ક્ષણ ક્ષણ ભયંકર ભાવમરણે કાં અહો રાચી રહો? ૧
લક્ષ્મી અને અધિકાર વધતાં, શું વધ્યું તે તો કહો?
શું કુટુંબ કે પરિવારથી વધવાપણું, એ નય ગ્રહો;
વધવાપણું સંસારનું નર દેહને હારી જવો,
એનો વિચાર નહીં અહોહો! એક પળ તમને હવો!!! ૨
નિર્દોષ સુખ નિર્દોષ આનંદ, લ્યો ગમે ત્યાંથી ભલે,
એ દિવ્ય શક્તિમાન જેથી જંજિરેથી નીકળે;
પરવસ્તુમાં નહિ મુંઝવો, એની દયા મુજને રહી,
એ ત્યાગવા સિદ્ધાંત કે પશ્ચાતદુઃખ તે સુખ નહીં. ૩
હું કોણ છું? ક્યાંથી થયો? શું સ્વરૂપ છે મારું ખરું?
કોના સંબંધે વળગણા છે? રાખું કે એ પરહરું?
એના વિચાર વિવેકપૂર્વક શાંત ભાવે જો કર્યા,
તો સર્વ આત્મિક જ્ઞાનનાં સિદ્ધાંતતત્ત્વ અનુભવ્યાં. ૪
તે પ્રાપ્ત કરવા વચન કોનું સત્ય કેવળ માનવું?
નિર્દોષ નરનું કથન માનો 'તેહ' જેણે અનુભવ્યું;
રે! આત્મ તારો! આત્મ તારો! શીઘ્ર એને ઓળખો,
સર્વાત્મમાં સમદૃષ્ટિ દ્યો આ વચનને હૃદયે લખો. ૫

શિક્ષાપાઠ ૬૮. જિતેંદ્રિયતા—

જ્યાંસુધી જીવ સ્વાદિષ્ટ ભોજન ચાહે છે, જ્યાંસુધી નાસિકા સુગંધી ચાહે છે, જ્યાંસુધી કાન વારાંગનાનાં ગાયન અને વાજિંત્ર ચાહે છે, જ્યાંસુધી આંખ વનોપવન જોવાનું લક્ષ રાખે છે, જ્યાંસુધી ત્વચા સુગંધીલેપન ચાહે છે, ત્યાંસુધી તે મનુષ્ય નિરાગી, નિર્ગ્રંથ, નિઃપરિગ્રહી, નિરારંભી અને બ્રહ્મચારી થઇ શકતો નથી. મનને વશ કરવું એ સર્વોત્તમ છે. એના વડે સઘળી ઇંદ્રિયો વશ કરી શકાય છે. મન જીતવું બહુ બહુ દુર્ઘટ છે એક સમયમાં અસંખ્યાતા યોજન ચાલનાર અશ્વ તે મન છે. એને થકાવવું બહુ દુર્લભ છે. એની ગતિ ચપળ અને ન ઝાલી શકાય તેવી છે. મહા જ્ઞાનીઓએ જ્ઞાનરૂપી લગામ વડે કરીને એને સ્તંભિત રાખી સર્વ જય કર્યો છે.

ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રમાં નમિરાજ મહર્ષિએ શક્રેંદ્રપ્રત્યે એમ કહ્યું કે દશ લાખ સુભટને જીતનાર કંઇક પડયા છે; પરંતુ સ્વાત્માને જીતનારા બહુ દુર્લભ છે; અને તે દશ લાખ સુભટને જીતનાર કરતાં અત્યુત્તમ છે.

મન જ સર્વોપાધિની જન્મદાતા ભૂમિના છે. મન જ બંધ અને મોક્ષનું કારણ છે. મન જ સર્વ સંસારની મોહિનીરૂપ છે. એ વશ થતાં આત્મસ્વરૂપને પામવું લેશ માત્ર દુર્લભ નથી.

મનવડે ઇંદ્રિયોની લોલુપતા છે. ભોજન, વાજિંત્ર સુગંધી, સ્રીનું નિરીક્ષણ, સુંદર વિલેપન એ સઘળું મન

જ માગે છે. એ મોહિની આડે તે ધર્મને સંભારવા પણ દેતું નથી. સંભાર્યા પછી સાવધાન થવા દેતું નથી. સાવધાન થયા પછી પતિતતા કરવામાં પ્રવૃત્ત, લાગુ થાય છે. એમાં નથી ફાવતું ત્યારે સાવધાનીમાં કંઈ ન્યૂનતા પહોંચાડે છે. જેઓ એ ન્યૂનતા પણ ન પામતાં અડગ રહીને મન જીતે છે તે સર્વ સિદ્ધિને પામે છે.

મન અકસ્માત્ કોઇથી જ જીતી શકાય છે. નહીં તો ગૃહસ્થાશ્રમે અભ્યાસ કરીને જ જીતાય છે; એ અભ્યાસ નિર્ગ્રંથતામાં બહુ થઇ શકે છે; છતાં સામાન્ય પરિચય કરવા માંગીએ તો તેનો મુખ્ય માર્ગ આ છે કે, તે જે દુરિચ્છા કરે તેને ભૂલી જવી; તેમ કરવું નહીં. તે જ્યારે શબ્દ-સ્પર્શાદિ વિલાસ ઇચ્છે ત્યારે આપવા નહીં. ટુંકામાં આપણે એથી દોરાવું નહીં પણ આપણે એને દોરવું; અને દોરવું તેપણ મોક્ષ માર્ગમાં. જિતેંદ્રિયતા વિના સર્વ પ્રકારની ઉપાધિ ઉભી જ રહી છે. ત્યાગે ન ત્યાગ્યા જેવો થાય છે, લોક-લજ્જાએ તેને સેવવો પડે છે. માટે અભ્યાસે કરીને પણ મનને જીતીને સ્વાધીનતામાં લઇ અવશ્ય આત્મહિત કરવું.

શિક્ષાપાઠ ૬૯. બ્રહ્મચર્યની નવવાડ—

જ્ઞાનીઓએ થોડા શબ્દોમાં કેવા ભેદ અને કેવું સ્વરૂપ બતાવ્યું છે? એ વડે કેટલી બધી આત્મોન્નતિ થાય છે? બ્રહ્મચર્ય જેવા ગંભીર વિષયનું સ્વરૂપ સંક્ષેપમાં અતિ

ચમત્કારિક રીતે આપ્યું છે. બ્રહ્મચર્યરૂપી એક સુંદર ઝાડ અને તેને રક્ષા કરનારી જે નવ વિધિયો તેને વાડનું રૂપ આપી આચાર પાળવામાં વિશેષ સ્મૃતિ રહી શકે એવી સરળતા કરી છે. એ નવ વાડ જેમ છે તેમ અહીં કહી જઉં છું.

૧. વસતિ—જે બ્રહ્મચારી સાધુ છે તેમણે જ્યાં સ્ત્રી, પશુ કે પડંગ એથી કરીને જે સંયુક્ત વસતિ હોય ત્યાં રહેવું નહીં. સ્ત્રી બે પ્રકારની છે. મનુષ્યિણી અને દેવાંગના. એ પ્રત્યેકના પાછા બે બે ભેદ છે. એક તો મૂળ અને બીજી સ્ત્રીની મૂર્તિ કે ચિત્ર. એ પ્રકારનો જ્યાં વાસ હોય ત્યાં બ્રહ્મચારી સાધુએ ન રહેવું; પશુ એટલે તિર્યંચિણી ગાય, ભેંસ ઇત્યાદિક જે સ્થળે હોય તે સ્થળે ન રહેવું; અને પડંગ એટલે નપુંસક એનો વાસ હોય ત્યાં પણ ન રહેવું. એવા પ્રકારનો વાસ બ્રહ્મચર્યની હાનિ કરે છે. તેઓની કામચેષ્ટા હાવભાવ ઇત્યાદિક વિકારો મનને ભ્રષ્ટ કરે છે.

૨. કથા—કેવળ એકલી સ્ત્રીઓને જ કે એક જ સ્ત્રીને ધર્મોપદેશ બ્રહ્મચારીએ ન કરવો. કથા એ મોહની ઉત્પત્તિરૂપ છે. સ્ત્રીના રૂપ સંબંધી ગ્રંથો, કામવિલાસ સંબંધી ગ્રંથો, કે જેથી ચિત્ત ચળે એવા પ્રકારની ગમે તે શૃંગાર સંબંધી કથા બ્રહ્મચારીએ ન કરવી.

૩. આસન—સ્ત્રીઓની સાથે એક આસને ન બેસવું. જ્યાં સ્ત્રી બેઠી હોય ત્યાં બે ઘડી સુધીમાં બ્રહ્મચારીએ ન બેસવું. એ સ્ત્રીઓની સ્મૃતિનું કારણ છે; એથી વિકારની ઉત્પત્તિ થાય છે; એમ ભગવાને કહ્યું છે.

૪. ઇંદ્રિયનિરીક્ષણ—સ્ત્રીઓનાં અંગોપાંગ બ્રહ્મચારી સાધુએ ન જોવાં; એનાં અમુક અંગપર દૃષ્ટિ એકાગ્ર થવાથી વિકારની ઉત્પત્તિ થાય છે.

૫. કુંડયાંતર—ભીંત, કનાત કે ત્રાટાનું અંતર વચમાં હોય ને સ્ત્રીપુરુષ જ્યાં મૈથુન સેવે ત્યાં બ્રહ્મચારીએ રહેવું નહીં. કારણ શબ્દ, ચેષ્ટાદિક વિકારનાં કારણ છે,

૬. પૂર્વક્રીડા—પોતે ગૃહસ્થાવાસમાં ગમે તેવી જાતના શૃંગારથી વિષયક્રીડા કરી હોય તેની સ્મૃતિ કરવી નહીં; તેમ કરવાથી બ્રહ્મચર્ય ભંગ થાય છે.

૭. પ્રણીત—દૂધ, દહીં, ઘૃતાદિ, મધુરા અને ચીકાશવાળા પદાર્થોનો બહુધા આહાર ન કરવો. એથી વીર્યની વૃદ્ધિ અને ઉન્માદ થાય છે અને તેથી કામની ઉત્પત્તિ થાય છે; માટે બ્રહ્મચારીએ તેમ કરવું નહીં.

૮. અતિમાત્રાહાર—પેટ ભરીને આહાર કરવો નહીં; તેમ અતિમાત્રાની ઉત્પત્તિ થાય તેમ કરવું નહીં. એથી પણ વિકાર વધે છે.

૯. વિભૂષણ—સ્નાન, વિલેપન, પુષ્પાદિક બ્રહ્મચારીએ ગ્રહણ કરવું નહીં. એથી બ્રહ્મચર્યને હાનિ ઉત્પન્ન થાય છે.

એમ ભગવંતે નવવાડ વિશુદ્ધ બ્રહ્મચર્યને માટે કહી છે. બહુધા એ તમારા સાંભળવામાં આવી હશે; પરંતુ ગૃહસ્થાવાસમાં અમુક અમુક દિવસ બ્રહ્મચર્ય ધારણ કરવામાં અભ્યાસીઓને લક્ષમાં રહેવા અહીં આગળ કંઇક સમજણપૂર્વક કહી છે.

શિક્ષાપાઠ ૭૦. સનત્કુમાર, ભાગ ૧.—

ચક્રવર્તીના વૈભવમાં શી ખામી હોય ? સનત્કુમાર એ ચક્રવર્તી હતા. તેનાં વર્ણ અને રૂપ અત્યુત્તમ હતાં. એક વેળા સુધર્મ સભામાં તે રૂપની સ્તુતિ થઇ. કોઇ બે દેવોને તે વાત રુચી નહીં; પછી તેઓ તે શંકા ટાળવાને વિપ્ર-રૂપે સનત્કુમારના અંતઃપુરમાં ગયા. સનત્કુમારનો દેહ તે વેળા ખેળથી ભર્યો હતો. તેને અંગ મર્દનાદિક પદા-ર્થોનું માત્ર વિલેપન હતું. એક નાનું પંચિયું પહેર્યું હતું; અને તે સ્નાનમંજન કરવા માટે બેઠા હતા. વિપ્રરૂપે આવેલા દેવતા તેનું મનોહર મુખ, કંચનવર્ણી કાયા અને ચંદ્ર જેવી કાંતિ જોઈને બહુ આનંદ પામ્યા અને માથું ધુણાવ્યું, એટલે ચક્રવર્તીએ પૂછ્યું; તમે માથું શા માટે ધુણાવ્યું ? દેવોએ કહ્યું, અમે તમારું રૂપ અને વર્ણ નિરીક્ષણ કરવા માટે બહુ અભિલાષી હતા. સ્થળે સ્થળે તમારા વર્ણ રૂપની સ્તુતિ સાંભળી હતી; આજે તે અમે પ્રત્યક્ષ જોયું એથી અમને પૂર્ણ આનંદ ઉપજ્યો. માથું ધુણાવ્યું એનું કારણ એ કે જેવું લોકોમાં કહેવાય છે તેવું જ રૂપ છે. એથી વિશેષ છે, પણ ઓછું નથી. સનત્કુમાર સ્વરૂપવર્ણની સ્તુતિથી પ્રભુત્વ લાવી બોલ્યા, તમે આ વેળા મારું રૂપ જોયું તે ભલે, પરંતુ હું રાજસભામાં વસ્ત્રાલંકાર ધારણ કરી કેવળ સજ્જ થઇને જ્યારે સિંહા-સનપર બેસું છું, ત્યારે મારું રૂપ અને મારો વર્ણ જોવાયોગ્ય છે; અત્યારે તો હું ખેળભરી કાયાએ બેઠો છું;

જો તે વેળા તમે મારાં રૂપ, વર્ણ જુઓ તો અદ્‌ભુત ચમત્કારને પામો અને ચકિત થઇ જાઓ. દેવોએ કહ્યું, ત્યારે અમે રાજસભામાં આવીશું; એમ કહીને ત્યાંથી ચાલ્યા ગયા.

સનત્‌કુમારે ત્યાર પછી ઉત્તમ વસ્ત્રાલંકારો ધારણ કર્યાં. અનેક ઉપચારથી જેમ પોતાની કાયા વિશેષ આશ્ચર્યતા ઉપજાવે તેમ કરીને તે રાજસભામાં આવી સિંહાસનપર બેઠા. આજુબાજુ સમર્થ મંત્રીઓ, સુભટો, વિદ્વાનો અને અન્ય સભાસદો યોગ્ય આસને બેસી ગયા છે. રાજેશ્વર ચામરછત્રથી અને ખમા ખમાથી વિશેષ શોભી રહ્યા છે તેમજ વધાઈ રહ્યા છે. ત્યાં પેલા દેવતાઓ પાછા વિપ્રરૂપે આવ્યા. અદ્‌ભુત રૂપવર્ણથી આનંદ પામવાને બદલે જાણે ખેદ પામ્યા છે એવા સ્વરૂપમાં તેઓએ માથું ધુણાવ્યું. ચક્રવર્તીએ પૂછ્યું, અહો બ્રાહ્મણો! ગઇ વેળા કરતાં આ વેળા તમે જુદા રૂપમાં માથું ધુણાવ્યું એનું શું કારણ છે, તે મને કહો. અવધિજ્ઞાનાનુસારે વિપ્રે કહ્યું કે, હે મહારાજા! તે રૂપમાં અને આ રૂપમાં ભૂમિ આકાશનો ફેર પડી ગયો છે. ચક્રવર્તીએ તે સ્પષ્ટ સમજાવવાને કહ્યું. બ્રાહ્મણોએ કહ્યું: અધિરાજ! પ્રથમ તમારી કોમળ કાયા અમૃત તુલ્ય હતી. આ વેળા એ ઝેરતુલ્ય છે. જ્યારે અમૃત તુલ્ય અંગ હતું ત્યારે આનંદ પામ્યા અને આ વેળા ઝેર તુલ્ય છે ત્યારે ખેદ પામ્યા. અમે કહીએ છીએ તે વાતની સિદ્ધતા કરવી હોય તો તમે તાંબૂલ

થૂંકોઃ તત્કાળ તેપર માંખી બેસશે અને પરલોક પહોંચી જશે.



શિક્ષાપાઠ ૭૧. સનત્કુમાર. ભાગ ૨.—

સનત્કુમારે એ પરીક્ષા કરી તો સત્ય ઠરી; પૂર્વિત કર્મનાં પાપનો જે ભાગ, તેમાં આ કાયાના મદસંબંધીનું મેળવણ થવાથી એ ચક્રવર્તીની કાયા ઝેરમય થઇ ગઇ હતી. વિનાશી અને અશુચિમય કાયાનો આવો પ્રપંચ જોઇને સનત્કુમારને અંતઃકરણમાં વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થયો. કેવળ આ સંસાર તજવાયોગ્ય છે. આવી ને આવી અશુચિ સ્ત્રી, પુત્ર, મિત્રાદિનાં શરીરમાં રહી છે. એ સઘળું મોહમાન કરવા યોગ્ય નથી, એમ બોલીને તે છ ખંડની પ્રભુતા ત્યાગ કરીને ચાલી નીકળ્યા. સાધુરૂપે જ્યારે વિચરતા હતા ત્યારે મહારોગ ઉત્પન્ન થયો. તેના સત્યત્વની પરીક્ષા લેવાને કોઈ દેવ ત્યાં વૈદરૂપે આવ્યો. સાધુને કહ્યું, હું બહુ કુશળ રાજવૈદ છું; તમારી કાયા રોગનો ભોગ થયેલી છે; જો ઇચ્છા હોય તો તત્કાળ હું તે રોગને ટાળી આપું. સાધુ બોલ્યા, “હે વૈદ ! કર્મરૂપી રોગ મહોન્મત્ત છે; એ રોગ ટાળવાની તમારી જો સમર્થતા હોય તો ભલે મારો એ રોગ ટાળો. એ સમર્થતા ન હોય તો આ રોગ ભલે રહ્યો.” દેવતા બોલ્યો; એ રોગ ટાળવાની સમર્થતા હું ધરાવતો નથી. સાધુએ પોતાની લબ્ધિના પરિપૂર્ણ પ્રબળવડે થૂંકવાળી

અંગુલિ કરી તે રોગને ખરડી કે તત્કાળ તે રોગનો નાશ થયો; અને કાયા પાછી હતી તેવી બની ગઈ. પછી તે વેળા દેવે પોતાનું સ્વરૂપ પ્રકાશ્યું; ધન્યવાદ ગાઇ વંદન કરી તે પોતાને સ્થાનકે ગયો.

રક્તપિત્ત જેવા સદૈવ લોહીપરૂથી ગદ્દગદ્દતા મહા રોગની ઉત્પત્તિ જે કાયામાં છે, પળમાં વણસી જવાનો જેનો સ્વભાવ છે; જેનાં પ્રત્યેક રોમે પોણા બબે રોગનો નિવાસ છે, તેવા સાડા ત્રણ કરોડ રોમથી તે ભરેલી હોવાથી રોગનો તે ભંડાર છે. એમ વિવેકથી સિદ્ધ છે. અન્ન વગેરેની ન્યૂનાધિકતાથી તે પ્રત્યેક રોગ જે કાયામાં દેખાવ દે છે. મળ, મૂત્ર, નરક, હાડ, માંસ, પરૂ અને શ્લેષ્મથી જેનું બંધારણ ટક્યું છે; ત્વચાથી માત્ર જેની મનોહરતા છે, તે કાયાનો મોહ ખરે! વિભ્રમ જ છે! સનત્‌કુમારે જેનું લેશ માત્ર માન કર્યું, તે પણ જેથી સંખાયું નહીં તે કાયામાં અહો પામર! તું શું મોહે છે? એ મોહ મંગળદાયક નથી.

શિક્ષાપાઠ ૭૨. બત્રીશ યોગ.—

સત્પુરુષો નીચેના બત્રીશ યોગનો સંગ્રહ કરી આત્માને ઉજ્જવળ કરવાનું કહે છે.

૧. ૧'શિષ્ય પોતાના જેવો થાય તેને માટે તેને શ્રુતાદિક જ્ઞાન આપવું.'

૧ 'મોક્ષસાધક યોગ માટે શિષ્યે આચાર્ય પાસે આલોચના કરવી.'

૨. ¹'પોતાના આચાર્યપણાનું જે જ્ઞાન હોય તેનો અન્યને બોધ આપવો અને પ્રકાશ કરવો.'

૩. આપત્તિકાળે પણ ધર્મનું દ્રઢપણું ત્યાગવું નહીં.

૪. લોક, પરલોકનાં સુખનાં ફલની વાંછના વિના તપ કરવો.

૫. શિક્ષા મળી તે પ્રમાણે યત્નાથી વર્તવું; અને નવી શિક્ષા વિવેકથી ગ્રહણ કરવી.

૬. મમત્વનો ત્યાગ કરવો.

૭. ગુપ્ત તપ કરવું.

૮. નિર્લોભતા રાખવી.

૯. પરિષહ ઉપસર્ગને જીતવા.

૧૦. સરળ ચિત્ત રાખવું.

૧૧. આત્મસંયમ શુદ્ધ પાળવો.

૧૨. સમકિત શુદ્ધ રાખવું.

૧૩. ચિત્તની એકાગ્ર સમાધિ રાખવી.

૧૪. કપટરહિત આચાર પાળવો.

૧૫. વિનય કરવા યોગ્ય પુરુષોનો યથાયોગ્ય વિનય કરવો.

૧૬. સંતોષથી કરીને તૃષ્ણાની મર્યાદા ટૂંકી કરી નાંખવી.

૧૭. વૈરાગ્યભાવનામાં નિમગ્ન રહેવું.

૧૮. માયા રહિત વર્તવું.

૧૯. શુદ્ધ કરણીમાં સાવધાન થવું.

દ્વિ૦ આ૦ પાઠા૦ 'આચાર્યે આલોચના બીજા પાસે પ્રકાશવી નહીં.'

૨૦. સમ્વરને આદરવો અને પાપને રોકવાં.
૨૧. પોતાના દોષ સમભાવપૂર્વક ટાળવા.
૨૨. સર્વ પ્રકારના વિષયથી વિરક્ત રહેવું.
૨૩. મૂલ ગુણે પંચમહાવ્રત વિશુદ્ધ પાળવાં.
૨૪. ઉત્તર ગુણે પંચમહાવ્રત વિશુદ્ધ પા ાં.
૨૫. ઉત્સાહપૂર્વક કાયોત્સર્ગ કરવો.
૨૬. પ્રમાદ રહિત જ્ઞાન, ધ્યાનમાં પ્રવર્ત્તન કરવું.
૨૭. હંમેશાં આત્મચારિત્રમાં સૂક્ષ્મ ઉપયોગથી વર્તવું.
૨૮. ધ્યાન, જિતેંદ્રિયતા અર્થે એકાગ્રતા પૂર્વક કરવું.
૨૯. મરણાંત દુઃખથી પણ ભય પામવો નહીં.
૩૦. સ્ત્રીઆદિકના સંગને ત્યાગવો.
૩૧. પ્રાયશ્ચિત્ત વિશુદ્ધિ કરવી.
૩૨. મરણકાલે આરાધના કરવી.

એ એકેકો યોગ અમૂલ્ય છે. સઘળા સંગ્રહ કરનાર પરિણામે અનંત સુખને પામે છે.

શિક્ષાપાઠ ૭૩. મોક્ષસુખ.—

કેટલીક આ સૃષ્ટિ મંડળપર પણ એવી વસ્તુઓ અને મનેચ્છા રહી છે કે જે કેટલાક અંશે જાણતા છતાં કહી શકાતી નથી. છતાં એ વસ્તુઓ કંઈ સંપૂર્ણ શાશ્વત કે અનંત ભેદવાળી નથી. એવી વસ્તુનું જ્યારે વર્ણન ન થઈ શકે ત્યારે અનંત સુખમય મોક્ષ સંબંધી તો ઉપમા ક્યાંથી જ મળે ? ભગવાનને ગૌતમસ્વામીએ મોક્ષના અનંત

સુખવિષે પ્રશ્ન કર્યું ત્યારે ભગવાને ઉત્તરમાં કહ્યુ, ગૌતમ! એ અનંતસુખ! હું જાણું છું; પણ તે કહી શકાય એવી અહીં આગળ કંઇ ઉપમા નથી. જગતમાં એ સુખના તુલ્ય કોઈપણ વસ્તુ કે સુખ નથી. એમ વદી એક ભીલનું દૃષ્ટાંત નીચેના ભાવમાં આપ્યું હતું.

એક જંગલમાં એક ભદ્રિક ભીલ તેનાં બાળબચ્ચાં સહિત રહેતો હતો. શહેર વગેરેની સમૃદ્ધિની ઉપાધિનું તેને લેશ ભાન પણ નહોતું. એક દિવસે કોઇ રાજા અશ્વક્રીડા માટે ફરતો ફરતો ત્યાં નીકળી આવ્યો; તેને બહુ તૃષા લાગી હતી; જેથી કરીને સાનવડે ભીલ આગળ પાણી માગ્યું. ભીલે પાણી આપ્યું, શીતળ જળથી રાજા સંતોષાયો. પોતાને ભીલ તરફથી મળેલા અમૂલ્ય જળદાનનો પ્રત્યુપકાર કરવા માટે થઈને ભીલને સમજાવીને સાથે લીધો. નગરમાં આવ્યા પછી ભીલે જીંદગીમાં નહીં જોયેલી વસ્તુમાં તેને રાખ્યો. સુંદર મહેલમાં, કને અનેક અનુચરો, મનોહર છત્રપલંગ અને સ્વાદિષ્ટ ભોજનથી મંદમંદ પવનમાં, સુગંધી વિલેપનમાં તેને આનંદ આનંદ કરી આપ્યો. વિવિધ જાતિનાં હીરામાણેક, મૌક્તિક, મણિરત્ન અને રંગબેરંગી અમૂલ્ય ચીજો નિરંતર તે ભીલને જોવા માટે મોકલ્યા કરે; બાગબગીચામાં ફરવા હરવા મોકલે. એમ રાજા તેને સુખ આપ્યા કરતો હતો. કોઇ રાત્રે બધાં સૂઈ રહ્યાં હતાં ત્યારે તે ભીલને બાળબચ્ચાં સાંભરી આવ્યાં એટલે તે ત્યાંથી કંઈ લીધા કર્યા વગર એકાએક નીકળી પડયો. જઇને પોતાનાં કુટુંબીને મળ્યો. તે બધાંયે મળીને પૂછયું

કે તું ક્યાં હતો ? ભીલે કહ્યું, બહુ સુખમાં. ત્યાં મે બહુ વખાણવા લાયક વસ્તુઓ જોઇ.

કુટુંબીઓ—પણ તે કેવી ? તે તો અમને કહે.

ભીલ—શું કહું, અહીં એવી એકકે વસ્તુ જ નથી.

કુટુંબીઓ—એમ હોય કે ? આ શંખલા, છીપ, કોડાં કેવાં મજાના પડ્યાં છે; ત્યાં કોઇ એવી જોવા લાયક વસ્તુ હતી ?

ભીલ—નહીં, નહીં ભાઇ, એવી ચીજ તો અહીં એકકે નથી. એના સોમા ભાગની કે હજારમા ભાગની પણ મનોહર ચીજ અહીં નથી.

કુટુંબીઓ—ત્યારે તો તું બોલ્યા વિના બેઠો રહે. તને ભ્રમણા થઇ છે; આથી તે પછી સારું શું હશે ?

હે ગૌતમ ! જેમ એ ભીલ રાજવૈભવસુખ ભોગવી આવ્યો હતો; તેમજ જાણતો હતો; છતાં ઉપમા યોગ્ય વસ્તુ નહીં મળવાથી તે કંઇ કહી શકતો નહોતો, તેમ અનુપમેય મોક્ષને, સચ્ચિદાનંદ સ્વરૂપમય નિર્વિકારી મોક્ષનાં સુખના અસંખ્યાતમા ભાગને પણ યોગ્ય ઉપમેય નહીં મળવાથી હું તને કહી શકતો નથી.

મોક્ષના સ્વરૂપ વિષે શંકા કરનારા તો કુતર્કવાદી છે; એઓને ક્ષણિક સુખસંબંધી વિચાર આડે સતસુખનો વિચાર નથી. કોઇ આત્મિક જ્ઞાનહીન એમ પણ કહે છે કે, આથી કોઇ વિશેષ સુખનું સાધન ત્યાં રહ્યું નહીં એટલે અનંત અવ્યાબાધ સુખ કહી દે છે. આ એનું કથન વિવેકી નથી. નિદ્રા પ્રત્યેક માનવીને પ્રિય છે; પણ તેમાં તેઓ

કંઈ જાણી કે દેખી શકતા નથી; અને જાણવામાં આવે તો માત્ર સ્વપ્નોપાધિનું મિથ્યાપણું આવે; જેની કંઈ અસર પણ થાય. એ સ્વપ્ના વગરની નિદ્રા જેમાં સૂક્ષ્મ સ્થૂલ સર્વ જાણી અને દેખી શકાય; અને નિરુપાધિથી શાંત ઉંઘ લઈ શકાય તો તેનું તે વર્ણન શું કરી શકે? એને ઉપમા પણ શી આપે? આ તો સ્થૂળ દૃષ્ટાંત છે; પણ બાલ, અવિવેકી એ પરથી કંઇ વિચાર કરી શકે એ માટે કહ્યું છે.

ભીલનું દૃષ્ટાંત, સમજાવવા રૂપે ભાષાભેદે ફેરફારથી તમને કહી બતાવ્યું.

શિક્ષાપાઠ ૭૪. ધર્મધ્યાન, ભાગ ૧—

ભગવાને ચાર પ્રકારનાં ધ્યાન કહ્યાં છે. આર્ત્ત, રૌદ્ર, ધર્મ અને શુક્લ. પહેલાં બે ધ્યાન ત્યાગવા યોગ્ય છે. પાછળનાં બે ધ્યાન આત્મસાર્થકરૂપ છે. શ્રુતજ્ઞાનના ભેદ જાણવા માટે, શાસ્ત્રવિચારમાં કુશળ થવા માટે, નિર્ગ્રંથ-પ્રવચનનું તત્ત્વ પામવા માટે, સત્પુરુષોએ સેવવા યોગ્ય, વિચારવા યોગ્ય અને ગ્રહણ કરવા યોગ્ય ધર્મધ્યાનના મુખ્ય સોળ ભેદ છે. પહેલા ચાર ભેદ કહું છું. ૧ आणाविजय (આજ્ઞાવિચય.) ૨ आवायविजय (અપાયવિચય.) ૩ विवागविजय (વિપાકવિચય.) ૪ संठाणविजय (સંસ્થાનવિચય.) ૧ આજ્ઞાવિચય—આજ્ઞા એટલે સર્વજ્ઞ ભગવંતે ધર્મતત્ત્વ સંબંધી જે જે કહ્યું છે તે તે સત્ય છે; એમાં

શંકા કરવા જેવું નથી; કાળની હીનતાથી, ઉત્તમ જ્ઞાનના વિચ્છેદ જવાથી, બુદ્ધિની મંદતાથી કે એવા અન્ય કોઇ કારણથી મારા સમજવામાં તે તત્ત્વ આવતું નથી. પરંતુ અર્હંત ભગવંતે અંશ માત્ર પણ માયાયુક્ત કે અસત્ય કહ્યું નથી જ કારણ એઓ નિરાગી, ત્યાગી, અને નિસ્પૃહી હતા. મૃષા કહેવાનું કંઈ કારણ એમને હતું નહીં, તેમ એઓ સર્વજ્ઞ, સર્વદર્શી હોવાથી અજ્ઞાનથી પણ મૃષા કહે નહીં. જ્યાં અજ્ઞાન જ નથી, ત્યાં એ સંબંધી મૃષા ક્યાંથી હોય? એવું જે ચિંતન કરવું તે 'આજ્ઞાવિચય' નામે પ્રથમ ભેદ છે. ૨ અપાયવિચય—રાગ, દ્વેષ, કામ, ક્રોધ એથી જે દુઃખ ઉત્પન્ન થાય છે તેનું જે ચિંતવન કરવું તે 'અપાયવિચય' નામે બીજો ભેદ છે. અપાય એટલે દુઃખ. ૩ વિપાકવિચય—હું જે જે ક્ષણે ક્ષણે દુઃખ સહન કરું છું. ભવાટવીમાં પર્યટન કરું છું, અજ્ઞાનાદિક પામું છું, તે સઘળું કર્મનાં ફળના ઉદય વડે કરીને છે, એ ધર્મ ધ્યાનનો ત્રીજો ભેદ છે. ૪ સંસ્થાનવિચય—ત્રણલોકનું સ્વરૂપ ચિંતવવું તે. લોકસ્વરૂપ સુપ્રતિષ્ઠકને આકારે છે; જીવ અજીવે કરીને સંપૂર્ણ ભરપૂર છે. અસંખ્યાત યોજનની કોટાનુકોટીએ તીરછો લોક છે; જ્યાં અસંખ્યાતા દ્વીપ–સમુદ્ર છે. અસંખ્યાતા જ્યોતિષીય, વાણવ્યંતરાદિકના નિવાસ છે. ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રુવતાની વિચિત્રતા એમાં લાગી પડી છે. અઢીદ્વીપમાં જઘન્ય તીર્થંકર વીશ, ઉત્કૃષ્ટા એકસો સિત્તેર હોય, તથા કેવળી ભગવાન અને નિર્ગ્રંથ મુનિરાજ વિચરે છે, તેઓને "વંદામિ, નમંસામિ, સક્કારેમિ, સમાણેમિ, કલ્લાણં, મંગળં, દેવયં, ચેઇયં, પજ્જુવાસામિ" એમ તેમજ ત્યાં વસતાં

શ્રાવક, શ્રાવિકાનાં ગુણગ્રામ કરીએ. તે તીરછાલોકથકી અસંખ્યાત ગુણો અધિક ઉર્ધ્વ લોક છે. ત્યાં અનેક પ્રકારના દેવતાઓના નિવાસ છે. પછી ઇષત્ પ્રાગ્ભારા છે. તે પછી મુક્તાત્માઓ વિરાજે છે તેને "વંદામિ, યાવત્ પજ્જુવાસામિ." તે ઉર્ધ્વ લોકથી કંઇક વિશેષ અધો લોક છે, ત્યાં અનંત દુઃખથી ભરેલા નરકાવાસ અને ભુવનપતિનાં ભુવનાદિક છે. એ ત્રણ લોકનાં સર્વ સ્થાનક આ આત્માએ સમ્યક્ત્વરહિત કરણીથી અનંતીવાર જન્મમરણ કરી સ્પર્શી મૂક્યાં છે; એમ જે ચિંતન કરવું તે 'સંસ્થાનવિચય' નામે ધર્મ ધ્યાનનો ચોથો ભેદ છે. એ ચાર ભેદ વિચારીને સમ્યક્ત્વ સહિત શ્રુત અને ચારિત્ર ધર્મની આરાધના કરવી. જેથી એ અનંત જન્મ મરણ ટળે. એ ધર્મધ્યાનના ચાર ભેદ સ્મરણમાં રાખવા.

શિક્ષાપાઠ ૭૫. ધર્મધ્યાન, ભાગ ૨—

ધર્મધ્યાનનાં ચાર લક્ષણ કહું છું. ૧ આજ્ઞારુચિ—એટલે વીતરાગ ભગવાનની આજ્ઞા અંગીકાર કરવાની રુચિ ઉપજે તે. ૨ નિસર્ગરુચિ—આત્મા સ્વાભાવિકપણે જાતિસ્મરણાદિક જ્ઞાને કરી શ્રુત સહિત ચારિત્ર ધર્મ ધરવાની રુચિ પામે તેને નિસર્ગરુચિ કહી છે. ૩ સૂત્રરુચિ—શ્રુતજ્ઞાન અને અનંત તત્ત્વના ભેદને માટે ભાખેલાં ભગવાનનાં પવિત્ર વચનોનું જેમાં ગૂંથન થયું છે, તે સૂત્ર શ્રવણ કરવા, મનન કરવા અને ભાવથી પઠન કરવાની રુચિ ઉપજે તે સૂત્રરુચિ.

૪ ઉપદેશરુચિ—અજ્ઞાને કરીને ઉપાર્જેલાં કર્મ જ્ઞાને કરીને ખપાવીએ, તેમજ જ્ઞાનવડે કરીને નવાં કર્મ ન બાંધીએ, મિથ્યાત્વે કરીને ઉપાર્જ્યાં કર્મ તે સમ્યક્ભાવથી ખપાવીએ સમ્યક્ભાવથી નવાં કર્મ ન બાંધીએ. અવૈરાગ્યે કરીને ઉપાર્જ્યાં કર્મ તે વૈરાગ્યે કરીને ખપાવીએ અને વૈરાગ્યવડે કરીને પાછાં નવાં કર્મ ન બાંધીએ. કષાયે કરી ઉપાર્જ્યાં કર્મ તે કષાય ટાળીને ખપાવીએ, ક્ષમાદિથી નવાં કર્મ ન બાંધીએ. અશુભ યોગે કરી ઉપાર્જ્યાં કર્મ તે શુભ યોગે કરી ખપાવીએ, શુભ યોગે કરી નવાં કર્મ ન બાંધીએ. પાંચ ઈંદ્રિયના સ્વાદરૂપ આસ્રવે કરી ઉપાર્જ્યાં કર્મ તે સંવરે કરી ખપાવીએ; તપરૂપ સંવરે કરી નવાં કર્મ ન બાંધીએ. તે માટે અજ્ઞાનાદિક આસ્રવમાર્ગ છાંડીને જ્ઞાનાદિક સંવર માર્ગ ગ્રહણ કરવા માટે તીર્થંકર ભગવંતનો ઉપદેશ સાંભળવાની રુચિ ઉપજે તેને ઉપદેશરુચિ કહીએ. એ ધર્મધ્યાનનાં ચાર લક્ષણ કહેવાયાં.

ધર્મધ્યાનનાં ચાર આલંબન કહું છું. ૧ વાંચના, ૨ પૃચ્છના, ૩ પરાવર્ત્તના, ૪ ધર્મકથા. ૧ વાંચના—એટલે વિનય સહિત નિર્જરા તથા જ્ઞાન પામવાને માટે સૂત્ર સિદ્ધાંતના મર્મના જાણનાર ગુરુ કે સત્પુરુષ સમીપે સૂત્ર તત્ત્વનું વાંચન લઈએ તેનું નામ વાંચનાલંબન. ૨ પૃચ્છના—અપૂર્વ જ્ઞાન પામવા માટે, જિનેશ્વર ભગવંતનો માર્ગ દીપાવવાને તથા શંકાશલ્ય નિવારવાને માટે તેમજ અન્યના તત્ત્વની મધ્યસ્થ પરીક્ષાને માટે યથાયોગ્ય વિનય સહિત ગુર્વાદિકને પ્રશ્ન પૂછીએ તેને પૃચ્છના કહીએ. ૩ પરા-

વર્તના—પૂર્વે જિનભાષિત સૂત્રાર્થ જે ભણ્યા હોઈએ તે સ્મરણમાં રહેવા માટે, નિર્જરાને અર્થે શુદ્ધ ઉપયોગ સહિત શુદ્ધ સૂત્રાર્થની વારંવાર સઝઝાય કરીએ તેનું નામ પરાવર્તનાલંબન. ૪ ધર્મકથા—વીતરાગ ભગવાને જે ભાવ જેવા પ્રણીત કર્યા છે તે ભાવ તેવા લઇને, ગ્રહીને, વિશેષે કરીને નિશ્ચય કરીને, શંકા, કંખા અને વિતિગિચ્છા રહિતપણે, પોતાની નિર્જરાને અર્થે સભામધ્યે તે ભાવ તેવા પ્રણીત કરીએ તેને ધર્મકથાલંબન કહીએ. જેથી સાંભળનાર, સદ્દહનાર બન્ને ભગવંતની આજ્ઞાના આરાધક થાય. એ ધર્મધ્યાનના ચાર આલંબન કહેવાયાં. ધર્મધ્યાનની ચાર અનુપ્રેક્ષા કહું છું. ૧ એકત્વાનુપ્રેક્ષા. ૨ અનિત્યાનુપ્રેક્ષા. ૩ અશરણાનુપેક્ષા. ૪ સંસારાનુપેક્ષા; એ ચારેનો બોધ બાર ભાવનાના પાઠમાં કહેવાઇ ગયો છે. તે તમને સ્મરણમાં હશે.

શિક્ષાપાઠ ૭૬. ધર્મધ્યાન, ભાગ ૩—

ધર્મધ્યાન, પૂર્વાચાર્યોએ અને આધુનિક મુનીશ્વરોએ પણ વિસ્તારપૂર્વક બહુ સમજાવ્યું છે. એ ધ્યાનવડે કરીને આત્મા મુનિત્વભાવમાં નિરંતર પ્રવેશ કરે છે.

જે જે નિયમો એટલે ભેદ, આલંબન અને અનુપ્રેક્ષા કહી તે બહુ મનન કરવા જેવી છે. અન્ય મુનીશ્વરોના કહેવા પ્રમાણે મેં સામાન્ય ભાષામાં તે તમને કહી; એ સાથે નિરંતર લક્ષ રાખવાની આવશ્યકતા છે કે એમાંથી આપણે કયો ભેદ પામ્યા; અથવા કયા ભેદભણી ભાવના રાખી છે?

એ સોળ ભેદમાંનો ગમે તે ભેદ હિતસ્વી અને ઉપયોગી છે; પરંતુ જેવા અનુક્રમથી લેવો જોઇએ તે અનુક્રમથી લેવાય તો તે વિશેષ આત્મલાભનું કારણ થઈ પડે.

સૂત્રસિદ્ધાંતનાં અધ્યયનો કેટલાક મુખપાઠે કરે છે; તેના અર્થ, તેમાં કહેલાં મૂળતત્ત્વો ભણી જો તેઓ લક્ષ પહોંચાડે તો કંઇક સૂક્ષ્મભેદ પામી શકે. કેળનાં પત્રમાં, પત્રમાં પત્રની જેમ ચમત્કૃતિ છે તેમ સૂત્રાર્થને માટે છે. એ ઉપર વિચાર કરતાં નિર્મળ અને કેવળ દયામય માર્ગનો જે વીતરાગપ્રણીત તત્ત્વબોધ તેનું બીજ અંતઃકરણમાં ઉગી નીકળશે. તે અનેક પ્રકારનાં શાસ્ત્રાવલોકનથી, પ્રશ્નોત્તરથી, વિચારથી અને સત્પુરુષના સમાગમથી પોષણ પામીને વૃદ્ધિ થઇ વૃક્ષરૂપે થશે. નિર્જરા અને આત્મપ્રકાશરૂપ પછી તે વૃક્ષ ફળ આપશે.

શ્રવણ, મનન અને નિદિધ્યાસનના પ્રકારો વેદાંતવાદીઓએ બતાવ્યા છે; પણ જેવા આ ધર્મધ્યાનના પૃથક્ પૃથક્ સોળ ભેદ કહ્યા છે તેવા તત્ત્વપૂર્વક ભેદ કોઈ સ્થળે નથી, એ અપૂર્વ છે. એમાંથી શાસ્ત્રને શ્રવણ કરવાનો, મનન કરવાનો, વિચારવાનો, અન્યને બોધ કરવાનો, શંકા, કંખા ટાળવાનો, ધર્મકથા કરવાનો, એકત્વ વિચારવાનો, અનિત્યતા વિચારવાનો, અશરણતા વિચારવાનો, વૈરાગ્ય પામવાનો, સંસારનાં અનંત દુઃખ મનન કરવાનો અને વીતરાગ ભગવંતની આજ્ઞાવડે કરીને આખા લોકાલોકના વિચાર કરવાનો અપૂર્વ ઉત્સાહ મળે છે. ભેદે ભેદે કરીને એના પાછા અનેક ભાવ સમજાવ્યા છે.

એમાંના કેટલાક ભાવ સમજવાથી તપ, શાંતિ, ક્ષમા, દયા, વૈરાગ્ય અને જ્ઞાનનો બહુ બહુ ઉદય થશે.

તમે કદાપિ એ સોળ ભેદનું પઠન કરી ગયા હશો તોપણ ફરી ફરી તેનું પરાવર્તન કરજો.

શિક્ષાપાઠ ૭૭. જ્ઞાનસંબંધી બે બોલ, ભાગ ૧—

જેવડે વસ્તુનું સ્વરૂપ જાણીએ તે જ્ઞાન. જ્ઞાન શબ્દનો આ અર્થ છે. હવે યથામતિ વિચારવાનું છે કે એ જ્ઞાનની કંઈ આવશ્યકતા છે? જો આવશ્યકતા છે તો તે પ્રાપ્તિનાં કંઈ સાધન છે? જો સાધન છે તો તેને અનુકૂળ, દેશ, કાળ, ભાવ છે? જો દેશકાળાદિક અનુકૂળ છે તો ક્યાંસુધી અનુકૂળ છે? વિશેષ વિચારમાં એ જ્ઞાનના ભેદ કેટલા છે? જાણવારૂપ છે શું? એના વળી ભેદ કેટલા છે? જાણવાનાં સાધન ક્યાં ક્યાં છે? કયિ કયિ વાટે તે સાધનો પ્રાપ્ત કરાય છે? એ જ્ઞાનનો ઉપયોગ કે પરિણામ શું છે? એ જાણવું અવશ્યનું છે.

૧. જ્ઞાનની શી આવશ્યકતા છે? તે વિષે પ્રથમ વિચાર કરીએ. આ ચતુર્દશ રજ્જવાત્મક લોકમાં, ચતુર્ગતિમાં અનાદિકાળથી સકર્મસ્થિતિમાં આ આત્માનું પર્યટન છે. મેષાનુમેષ પણ સુખનો જ્યાં ભાવ નથી એવાં નરકનિગોદાદિક સ્થાનક આ આત્માએ બહુ બહુ કાળ વારંવાર સેવન કર્યાં છે; અસહ્ય દુઃખોને પુનઃ પુનઃ અને કહો તો અનંતીવાર સહન કર્યાં છે. એ ઉતાપથી નિરંતર તપતો

આત્મા માત્ર સ્વકર્મ વિપાકથી પર્યટન કરે છે. પર્યટનનું કારણ અનંત દુઃખદ જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મો છે, જેવડે કરીને આત્મા સ્વસ્વરૂપને પામી શકતો નથી; અને વિષયાદિક મોહબંધનને સ્વસ્વરૂપ માની રહ્યો છે. એ સઘળાનું પરિણામ માત્ર ઉપર કહ્યું તે જ છે કે અનંત દુઃખ અનંત ભાવે કરીને સહેવું; ગમે તેટલું અપ્રિય, ગમે તેટલું ખેદદાયક અને ગમે તેટલું રૌદ્ર છતાં જે દુઃખ અનંતકાળથી અનંતિવાર સહન કરવું પડ્યું; તે દુઃખ માત્ર સહ્યું તે અજ્ઞાનાદિક કર્મથી; એ અજ્ઞાનાદિક ટાળવા માટે જ્ઞાનની પરિપૂર્ણ આવશ્યકતા છે.

શિક્ષાપાઠ ૭૮. જ્ઞાનસંબંધી બે બોલ, ભાગ ૨.—

૨. હવે જ્ઞાનપ્રાપ્તિનાં સાધનો વિષે કંઇ વિચાર કરીએ. અપૂર્ણ પર્યાપ્તિવડે પરિપૂર્ણ આત્મજ્ઞાન સાધ્ય થતું નથી એ માટે થઇને છ પર્યાપ્તિયુક્ત જે દેહ તે આત્મજ્ઞાન સાધ્ય કરી શકે. એવો દેહ તે એક માનવદેહ છે. આ સ્થળે પ્રશ્ન ઉઠશે કે માનવદેહ પામેલા અનેક આત્માઓ છે, તો તે સઘળા આત્મજ્ઞાન કાં પામતા નથી ? એના ઉત્તરમાં આપણે માની શકીશું કે જેઓ સંપૂર્ણ આત્મજ્ઞાનને પામ્યાં છે તેઓનાં પવિત્ર વચનામૃતની તેઓને શ્રુતિ નહિ હોય. શ્રુતિવિના સંસ્કાર નથી. જો સંસ્કાર નથી તો પછી શ્રદ્ધા ક્યાંથી હોય ? અને જ્યાં એ એકકે નથી ત્યાં જ્ઞાનપ્રાપ્તિ શાની હોય ? એ માટે માનવદેહની સાથે સર્વજ્ઞવચનામૃતની

પ્રાપ્તિ અને એની શ્રદ્ધા એ પણ સાધનરૂપ છે. સર્વજ્ઞવચનામૃત અકર્મભૂમિ કે કેવળ અનાર્યભૂમિમાં મળતાં નથી તો પછી માનવદેહ શું ઉપયોગનો ? એ માટે થઈને આર્યભૂમિ એ પણ સાધનરૂપ છે, તત્ત્વની શ્રદ્ધા ઉપજવા અને બોધ થવા માટે નિર્ગ્રંથ ગુરુની અવશ્ય છે. દ્રવ્યે કરીને જે કુલ મિથ્યાત્વી છે, તે કુળમાં થયેલો જન્મ પણ આત્મજ્ઞાન પ્રાપ્તિની હાનિ રૂપ છે. કારણ ધર્મમતભેદ એ અતિ દુઃખદાયક છે. પરંપરાથી પૂર્વજોએ ગ્રહણ કરેલું જે દર્શન તેમાં જ સત્યભાવના બંધાય છે; એથી કરીને પણ આત્મજ્ઞાન અટકે છે. એ માટે ભલું કુળ પણ જરૂરનું છે. એ સઘળાં પ્રાપ્ત કરવા માટે થઈને ભાગ્યશાળી થવું. તેમાં સત્પુણ્ય એટલે પુણ્યાનુબંધી પુણ્ય ઈત્યાદિક ઉત્તમ સાધનો છે. એ દ્વિતીય સાધન ભેદ કહ્યો.

૩. જો સાધન છે તો તેને અનુકૂળ દેશ, કાળ છે ? એ ત્રીજા ભેદનો વિચાર કરીએ. ભારતમાં મહાવિદેહ ઈ૦ કર્મભૂમિ અને તેમાં પણ આર્યભૂમિ એ દેશભાવે અનુકૂળ છે. જિજ્ઞાસુ ભવ્ય ! તમે સઘળા આ કાળે ભારતમાં છો; માટે ભારતદેશ અનુકૂળ છે. કાળભાવ પ્રમાણે મતિ અને શ્રુત પ્રાપ્ત કરી શકાય એટલી અનુકૂળતા છે; કારણ, આ દુષમ પંચમકાળમાં પરસ્પરામ્નાયથી પરમાવધિ, મનઃપર્યય અને કેવળ એ પવિત્રજ્ઞાન જોવામાં આવતાં નથી. એટલે કાળની પરિપૂર્ણ અનુકૂળતા નથી.

૪. દેશકાળાદિ જો અનુકૂળ છે તો ક્યાં સુધી છે? એનો ઉત્તર કે શેષ રહેલું સિદ્ધાંતિક મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાન, સામાન્યમતથી કાળભાવે એકવીશ હજાર વર્ષ સુધી રહેવાનું. તેમાંથી અઢી સહસ્ર ગયાં, બાકી સાડા અઢાર હજાર વર્ષ રહ્યાં; એટલે પંચમ કાળની પૂર્ણતાસુધી કાળની અનુકૂળતા છે. દેશકાળ તે લઈને અનુકૂળ છે.

શિક્ષાપાઠ ૭૯. જ્ઞાનસંબંધી બે બોલ, ભાગ ૩.—

હવે વિશેષ વિચાર કરીએ.

૧. આવશ્યકતા શી? એ મહદ્ વિચારનું આવર્તન પુનઃ વિશેષતાથી કરીએ. મુખ્ય અવશ્ય સ્વસ્વરૂપસ્થિતિની શ્રેણિએ ચઢવું એ છે. જેથી અનંત દુઃખનો નાશ થાય, દુઃખના નાશથી આત્માનું શ્રેયિક સુખ છે; અને સુખ નિરંતર આત્માને પ્રિય જ છે; પણ જે સ્વસ્વરૂપિક સુખ છે તે. દેશ, કાળ, ભાવને લઇને શ્રદ્ધા, જ્ઞાન ઇ૦ ઉત્પન્ન કરવાની આવશ્યકતા છે. સમ્યક્ભાવ સહિત ઉચ્ચગતિ, ત્યાંથી મહાવિદેહમાં માનવદેહે જન્મ, ત્યાં સમ્યક્ભાવની પુનઃ ઉન્નતિ, તત્ત્વજ્ઞાનની વિશુદ્ધતા અને વૃદ્ધિ; છેવટે પરિપૂર્ણ આત્મસાધન જ્ઞાન અને તેનું સત્ય પરિણામ કેવળ સર્વ દુઃખનો અભાવ એટલે અખંડ, અનુપમ અનંત શાશ્વત પવિત્ર મોક્ષની પ્રાપ્તિ. એ સઘળાં માટે થઇને જ્ઞાનની આવશ્યકતા છે.

૨. જ્ઞાનના ભેદ કેટલા છે એનો વિચાર કહું છું:

એ જ્ઞાનના ભેદ અનંત છે; પણ સામાન્યદૃષ્ટી સમજી શકે એટલા માટે થઇને સર્વજ્ઞ ભગવાને મુખ્ય પાંચ ભેદ કહ્યા છે. તે જેમ છે તેમ કહું છું. પ્રથમ મતિ, દ્વિતીય શ્રુત, તૃતીય અવધિ, ચતુર્થ મનઃપર્યવ અને પાંચમું સંપૂર્ણ સ્વરૂપ કેવળ. એના પાછા પ્રતિભેદ છે. તેની વળી અતીંદ્રિય સ્વરૂપે અનંત ભંગજાળ છે.

૩. શું જાણવારૂપ છે? એનો હવે વિચાર કરીએ. વસ્તુનું સ્વરૂપ જાણવું તેનું નામ જ્યારે જ્ઞાન, ત્યારે વસ્તુઓ તો અનંત છે, એને કયિ પંકિતથી જાણવી? સર્વજ્ઞ થયા પછી સર્વદર્શિતાથી તે સત્પુરુષ, તે અનંત વસ્તુનું સ્વરૂપ સર્વ ભેદે કરી જાણે છે અને દેખે છે; પરંતુ તેઓ એ સર્વજ્ઞ શ્રેણિને પામ્યા તે કયિ કયિ વસ્તુને જાણવાથી? અનંત શ્રેણિઓ જ્યાંસુધી જાણી નથી ત્યાંસુધી કયિ વસ્તુને જાણતાં જાણતાં તે અનંત વસ્તુઓને અનંત રૂપે જાણીએ? એ શંકાનું સમાધાન હવે કરીએઃ જે અનંત વસ્તુઓ માની તે અનંત ભંગે કરીને છે. પરંતુ મુખ્ય વસ્તુત્વ સ્વરૂપે તેની બે શ્રેણિઓ છે. જીવ અને અજીવ. વિશેષ વસ્તુત્વ સ્વરૂપે નવતત્ત્વ કિંવા ષડ્દ્રવ્યની શ્રેણિઓ જાણવા રૂપ થઇ પડે છે. જે પંક્તિએ ચઢતાં ચઢતાં સર્વ ભાવે જણાઇ લોકાલોક સ્વરૂપ હસ્તામલકવત્ જાણી દેખી શકાય છે. એટલા માટે થઇને જાણવારૂપ પદાર્થ તે જીવ અને અજીવ છે. એ જાણવા રૂપ મુખ્ય બે શ્રેણિઓ કહેવાઇ.

શિક્ષાપાઠ ૮૦. જ્ઞાનસંબંધી બે બોલ, ભાગ ૪.—

૪. એના ઉપભેદ સંક્ષેપમાં કહું છું. જીવ એ ચૈતન્ય લક્ષણે એકરૂપ છે. દેહસ્વરૂપે અને દ્રવ્યસ્વરૂપે અનંતાનંત છે. દેહસ્વરૂપે તેના ઈંદ્રિયાદિક જાણવા રૂપ છે. તેની સંસર્ગ રિદ્ધિ જાણવારૂપ છે. તેમજ 'અજીવ' તેના રૂપી અરૂપી પુદ્ગળ, આકાશાદિક વિચિત્ર ભાવ, કાળચક્ર ઇ૦ જાણવારૂપ છે. જીવાજીવ જાણવાની પ્રકારાંતરે સર્વજ્ઞ સર્વદર્શીએ નવ શ્રેણિરૂપ નવતત્ત્વ કહ્યાં છે.

જીવ, અજીવ, પુણ્ય, પાપ, આસ્રવ, સંવર, નિર્જરા, બંધ, મોક્ષ. એમાંનાં કેટલાંક ગ્રાહ્યરૂપ, કેટલાંક જાણવારૂપ, કેટલાંક ત્યાગવારૂપ છે. સઘળાં એ તત્ત્વો જાણવારૂપ તો છે જ.

૫ જાણવાનાં સાધનઃ સામાન્ય વિચારમાં એ સાધનો જો કે જાણ્યાં છે, તોપણ વિશેષ કંઇક જાણીએ. ભગવાનની આજ્ઞા અને તેનું શુદ્ધ સ્વરૂપ યથાતથ્ય જાણવું. સ્વયં કોઇક જ જાણે છે. નહીં તો નિર્ગ્રંથ જ્ઞાની ગુરુ જણાવી શકે. નિરાગી જ્ઞાતા સર્વોત્તમ છે. એટલા માટે શ્રદ્ધાનું બીજ રોપનાર કે તેને પોષનાર ગુરુ એ સાધનરૂપ છે; એ સાધનાદિકને માટે સંસારની નિવૃત્તિ એટલે શમ, દમ, બ્રહ્મચર્યાદિક અન્ય સાધનો છે. એ સાધનો પ્રાપ્ત કરવાની વાટ કહીએ તોપણ ચાલે.

૬. એ જ્ઞાનનો ઉપયોગ કે પરિણામનાં ઉત્તરનો આશય ઉપર આવી ગયો છે; પણ કાળભેદે કંઇ કહેવાનું છે; અને તે એટલું જ કે દિવસમાં બે ઘડીનો વખત પણ નિયમિત રાખીને જિનેશ્વર ભગવાનના કહેલા તત્ત્વબોધની પર્યટના કરો. વીતરાગના એક સિદ્ધાંતિક શબ્દપરથી જ્ઞાનાવરણીયનો બહુ ક્ષયોપશમ થશે એમ હું વિવેકથી કહું છું.

શિક્ષાપાઠ ૮૧. પંચમકાળ.—

કાળચક્રના વિચારો અવશ્ય કરીને જાણવા યોગ્ય છે. જિનેશ્વરે એ કાળચક્રના બે મુખ્ય ભેદ કહ્યા છે. ૧ ઉત્સર્પિણી, ૨ અવસર્પિણી. એકેકા ભેદના છ છ આરા છે. આધુનિક વર્તન કરી રહેલો આરો પંચમકાળ કહેવાય છે: અને તે અવસર્પિણી કાળનો પાંચમો આરો છે. અવસર્પિણી એટલે ઉતરતો કાળ; એ ઉતરતા કાળના પાંચમા આરામાં કેવું વર્તન આ ભરતક્ષેત્રે થવું જોઇએ તેને માટે સત્પુરુષોએ કેટલાક વિચારો જણાવ્યા છે; તે અવશ્ય જાણવા જેવા છે.

એઓ પંચમકાળનું સ્વરૂપ મુખ્ય આ ભાવમાં કહે છે; નિર્ગ્રંથ પ્રવચનપરથી મનુષ્યોની શ્રદ્ધા ક્ષીણ થતી જશે. ધર્મના મૂળતત્ત્વોમાં મતમતાંતર વધશે. પાખંડી અને પ્રપંચી મતોનું મંડન થશે. જનસમૂહની રુચિ અધર્મ ભણી વળશે. સત્ય, દયા હળવે હળવે પરાભવ પામશે. મોહાદિક દોષોની વૃદ્ધિ થતી જશે. દંભી અને પાપિષ્ટ ગુરુઓ પૂજ્યરૂપ થશે. દુષ્ટવૃત્તિનાં મનુષ્યો પોતાના ફંદમાં

ફાવી જશે. મીઠાં પણ ધૂર્ત્ત વક્તા પવિત્ર મનાશે. શુદ્ધ બ્રહ્મચર્યાદિક શીલયુક્ત પુરૂષો મલિન કહેવાશે. આત્મિકજ્ઞાનના ભેદો હણાતા જશે; હેતુ વગરની ક્રિયા વધતી જશે. અજ્ઞાનક્રિયા બહુધા સેવાશે; વ્યાકુળ વિષયોનાં સાધનો વધતાં જશે. એકાંતિક પક્ષો સત્તાધીશ થશે. શૃંગારથી ધર્મ મનાશે.

ખરા ક્ષત્રિયો વિના ભૂમિ શોકગ્રસ્ત થશે. નિર્માલ્ય રાજવંશીઓ વેશ્યાના વિલાસમાં મોહ પામશે. ધર્મ, કર્મ અને ખરી રાજનીતિ ભૂલી જશે; અન્યાયને જન્મ આપશે; જેમ લૂંટાશે તેમ પ્રજાને લૂંટશે. પોતે પાપિષ્ટ આચરણો સેવી પ્રજા આગળ તે પળાવતા જશે. રાજબીજને નામે શૂન્યતા આવતી જશે. નીચ મંત્રીઓની મહત્તા વધતી જશે. એઓ દીન પ્રજાને ચૂસીને ભંડાર ભરવાનો રાજાને ઉપદેશ આપશે. શિયળભંગ કરવાનો ધર્મ રાજાને અંગીકાર કરાવશે. શૌર્યાદિક સદ્દગુણોનો નાશ કરાવશે. મૃગયાદિક પાપમાં અંધ બનાવશે. રાજ્યાધિકારીઓ પોતાના અધિકારથી હજારગુણી અહંપદતા રાખશે. વિપ્રો લાલચુ અને લોભી થઈ જશે. સદ્વિદ્યાને દાટી દેશે; સંસારી સાધનોને ધર્મ ઠરાવશે. વૈશ્યો માયાવી, કેવળ સ્વાર્થી અને કઠોર હૃદયના થતા જશે. સમગ્ર મનુષ્યવર્ગની સદ્દવૃત્તિઓ ઘટતી જશે. અકૃત અને ભયંકર કૃત્યો કરતાં તેઓની વૃત્તિ અટકશે નહીં. વિવેક, વિનય, સરળતા ઇત્યાદિ સદ્દગુણો ઘટતા જશે. અનુકંપાને નામે હીનતા થશે. માતા કરતાં પત્નીમાં પ્રેમ વધશે; પિતા કરતાં પુત્રમાં પ્રેમ વધશે; પતિવ્રત નિયમપૂર્વક પાળનારી સુંદરીઓ ઘટી જશે. સ્નાનથી પવિત્રતા ગણાશે; ધનથી

ઉત્તમકુળ ગણાશે. ગુરૂથી શિષ્યો. અવળા ચાલશે. ભૂમિનો રસ ઘટી જશે. સંક્ષેપમાં કહેવાનો ભાવાર્થ કે ઉત્તમ વસ્તુની ક્ષીણતા છે; અને કનિષ્ઠ વસ્તુનો ઉદય છે. પંચમકાળનું સ્વરૂપ આમાંનું પ્રત્યક્ષ સૂચવન પણ કેટલું બધું કરે છે ?

મનુષ્ય સત્ધર્મતત્ત્વમાં પરિપૂર્ણ શ્રદ્ધાવાન નહીં થઇ શકે; સંપૂર્ણ તત્ત્વજ્ઞાન નહીં પામી શકે; જંબુસ્વામીના નિર્વાણ પછી દશ નિર્વાણી વસ્તુ આ ભરતક્ષેત્રથી વ્યવચ્છેદ ગઇ.

પંચમકાળનું આવું સ્વરૂપ જાણીને વિવેકી પુરૂષો તત્ત્વને ગ્રહણ કરશે; કાળાનુસાર ધર્મતત્ત્વશ્રદ્ધા પામીને ઉચ્ચગતિ સાધી પરિણામે મોક્ષ સાધશે, નિર્ગ્રંથપ્રવચન; નિર્ગ્રંથગુરૂ ઇ૦ ધર્મતત્ત્વ પામવાનાં સાધનો છે. એની આરાધનાથી કર્મની વિરાધના છે.

શિક્ષાપાઠ ૮૨. તત્ત્વાવબોધ, ભાગ ૧.—

દશવૈકાળિકસૂત્રમાં કથન છે કે જેણે જીવાજીવના ભાવ નથી જાણ્યા તે અબુધ સંયમમાં સ્થિર કેમ રહી શકશે ? એ વચનામૃતનું તાત્પર્ય એમ છે કેઃ તમે આત્મા, અનાત્માનાં સ્વરૂપને જાણો, એ જાણવાની પરિપૂર્ણ આવશ્ય છે.

આત્મા અનાત્માનું સત્ય સ્વરૂપ નિર્ગ્રંથપ્રવચનમાંથી પ્રાપ્ત થઇ શકે છે; અનેક મતોમાં એ બે તત્ત્વો વિષે વિચારો દર્શાવ્યા છે તે યથાર્થ નથી. મહા પ્રજ્ઞાવંત આચાર્યોએ કરેલાં વિવેચન સહિત પ્રકારાંતરે કહેલાં મુખ્ય નવતત્ત્વને વિવેકબુદ્ધિથી જે જ્ઞેય કરે છે, તે સત્પુરૂષ આત્મસ્વરૂપને ઓળખી શકે છે.

સ્યાદ્વાદશૈલી અનુપમ અને અનંતભેદ ભાવથી ભરેલી છે; એ શૈલીને પરિપૂર્ણ તો સર્વજ્ઞ અને સર્વદર્શી જ જાણી શકે; છતાં એઓનાં વચનામૃતાનુસાર આગમ ઉપયોગથી યથામતિ નવતત્ત્વનું સ્વરૂપ જાણવું અવશ્યનું છે. એ નવતત્ત્વ પ્રિય શ્રદ્ધાભાવે જાણવાથી પરમ વિવેકબુદ્ધિ, શુદ્ધ સમ્યક્ત્વ અને પ્રભાવિક આત્મજ્ઞાનનો ઉદય થાય છે. નવતત્ત્વમાં લોકાલોકનું સંપૂર્ણ સ્વરૂપ આવી જાય છે. જે પ્રમાણે જેની બુદ્ધિની ગતિ છે, તે પ્રમાણે તેઓ તત્ત્વજ્ઞાન સંબંધી દૃષ્ટિ પહોંચાડે છે; અને ભાવાનુસાર તેઓના આત્માની ઉજ્જવલતા થાય છે. તે વડે કરીને તેઓ આત્મજ્ઞાનનો નિર્મળ રસ અનુભવે છે. જેનું તત્ત્વજ્ઞાન ઉત્તમ અને સૂક્ષ્મ છે, તેમજ સુશીલયુક્ત જે તત્ત્વજ્ઞાનને સેવે છે તે પુરૂષ મહદ્‌ભાગી છે.

એ નવતત્ત્વનાં નામ આગળના શિક્ષાપાઠમાં હું કહી ગયો છું; એનું વિશેષ સ્વરૂપ પ્રજ્ઞાવંત આચાર્યોના મહાન ગ્રંથોથી અવશ્ય મેળવવું; કારણ સિદ્ધાંતમાં જે જે કહ્યું છે, તે તે વિશેષ ભેદથી સમજવા માટે સહાયભૂત પ્રજ્ઞાવંત આચાર્યવિરચિત ગ્રંથો છે. એ ગુરૂગમ્યરૂપ પણ છે. નય, નિક્ષેપા અને પ્રમાણભેદ નવતત્ત્વનાં જ્ઞાનમાં અવશ્યના છે; અને તેની યથાર્થ સમજણ એ પ્રજ્ઞાવંતોએ આપી છે.

શિક્ષાપાઠ ૮૩. તત્ત્વાવબોધ, ભાગ ૨.—

સર્વજ્ઞ ભગવાને લોકાલોકના સંપૂર્ણ ભાવ જાણ્યા અને જોયા. તેનો ઉપદેશ ભવ્ય લોકોને કર્યો. ભગવાને અનંત જ્ઞાનવડે કરીને લોકાલોકનાં સ્વરૂપ વિષેના અનંત ભેદ જાણ્યા હતા; પરંતુ સામાન્ય માનવીઓને ઉપદેશથી શ્રેણિએ ચહડવા મુખ્ય દેખાતા નવ પદાર્થ તેઓએ દર્શાવ્યા. એથી લોકાલોકના સર્વ ભાવનો એમાં સમાવેશ આવી જાય છે. નિર્ગ્રંથપ્રવચનનો જે જે સૂક્ષ્મ બોધ છે, તે તત્ત્વની દષ્ટિએ નવતત્ત્વમાં સમાઈ જાય છે; તેમજ સઘળા ધર્મમતોના સૂક્ષ્મ વિચાર એ નવતત્ત્વવિજ્ઞાનના એક દેશમાં આવી જાય છે. આત્માની જે અનંત શક્તિઓ ઢંકાઈ રહી છે તેને પ્રકાશિત કરવા અર્હંત ભગવાનનો પવિત્ર બોધ છે. એ અનંત શક્તિઓ ત્યારે પ્રફુલ્લિત થઇ શકે કે જ્યારે નવતત્ત્વ વિજ્ઞાનમાં પારાવાર જ્ઞાની થાય.

સૂક્ષ્મ દ્વાદશાંગી જ્ઞાન પણ એ નવતત્ત્વ સ્વરૂપ જ્ઞાનને સહાયરૂપ છે. ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારે એ નવતત્ત્વ સ્વરૂપ જ્ઞાનનો બોધ કરે છે; એથી આ નિઃશંક માનવા યોગ્ય છે કે નવતત્ત્વ જેણે અનંત ભાવ ભેદે જાણ્યા તે સર્વજ્ઞ અને સર્વદર્શી થયો.

એ નવતત્ત્વ ત્રિપદીને ભાવે લેવા યોગ્ય છે. હેય, જ્ઞેય અને ઉપાદેય. એટલે ત્યાગ કરવા યોગ્ય, જાણવા યોગ્ય અને ગ્રહણ કરવા યોગ્ય, એમ ત્રણ ભેદ નવતત્ત્વ સ્વરૂપના વિચારમાં રહેલા છે.

પ્રશ્નઃ—જે ત્યાગવારૂપ છે તેને જાણીને કરવું શું ? જે ગામ ન જવું તેનો માર્ગ શામાટે પૂછવો ?

ઉત્તરઃ—એ તમારી શંકા સહજમાં સમાધાન થઇ શકે તેવી છે. ત્યાગવારૂપ પણ જાણવાં અવશ્ય છે. સર્વજ્ઞ પણ સર્વ પ્રકારના પ્રપંચને જાણી રહ્યા છે. ત્યાગવારૂપ વસ્તુને જાણવાનું મૂળતત્ત્વ આ છે કે જો તે જાણી ન હોય તો અત્યાજ્ય ગણી કોઇ વખત સેવી જવાય. એક ગામથી બીજે પહોંચતાં સુધી વાટમાં જે જે ગામ આવવાનાં હોય તેનો રસ્તો પણ પૂછવો પડે છે, નહીં તો જ્યાં જવાનું છે ત્યાં ન પહોંચી શકાય. એ ગામ જેમ પૂછયાં પણ ત્યાં વાસ કર્યો નહીં તેમ પાપાદિક તત્ત્વો જાણવાં પણ ગ્રહણ કરવાં નહીં. જેમ વાટમાં આવતાં ગામનો ત્યાગ કર્યો તેમ તેનો પણ ત્યાગ કરવો અવશ્યનો છે.

શિક્ષાપાઠ ૮૪. તત્ત્વાવબોધ, ભાગ ૩.—

નવતત્ત્વનું કાળભેદે જે સત્પુરુષો ગુરુગમ્યતાથી શ્રવણ, મનન અને નિદિધ્યાસન પૂર્વક જ્ઞાન કરે છે, તે સત્પુરુષો મહા પુણ્યશાળી તેમજ ધન્યવાદને પાત્ર છે. પ્રત્યેક સુજ્ઞ-પુરુષોને મારો વિનયભાવભૂષિત એ જ બોધ છે કે નવતત્ત્વને સ્વબુદ્ધિઅનુસાર યથાર્થ જાણવાં.

મહાવીર ભગવંતના શાસનમાં બહુ મતમતાંતર પડી ગયાં છે, તેનું મુખ્ય આ એક કારણ પણ છે કે તત્ત્વજ્ઞાન ભણીથી ઉપાસક વર્ગનું લક્ષ ગયું. માત્ર ક્રિયાભાવ પર રાચતા રહ્યા; જેનું પરિણામ દૃષ્ટિગોચર છે. વર્તમાનની શોધમાં આવેલી પૃથ્વીની વસતિ લગભગ દોઢ અબજની ગણાઇ છે; તેમાં સર્વ ગચ્છની મળીને જૈનપ્રજા માત્ર વીશ

લાખ છે. એ પ્રજા તે શ્રમણોપાસક છે. એમાંથી હું ધારૂં છું કે નવતત્ત્વને પઠનરૂપે બે હજાર પુરુષો પણ માંડ જાણતા હશે; મનન અને વિચારપૂર્વક તો આંગળીને ટેરવે ગણી શકીએ તેટલા પુરુષો પણ નહીં હશે. જ્યારે આવી પતિત સ્થિતિ તત્ત્વજ્ઞાન સંબંધી થઇ ગઇ છે ત્યારે જ મતમતાંતર વધી પડ્યા છે. એક લૌકિક કથન છે કે 'સો શાણે એક મત' તેમ અનેક તત્ત્વવિચારક પુરૂષોના મતમાં ભિન્નતા બહુધા આવતી નથી.

એ નવતત્ત્વ વિચાર સંબંધી પ્રત્યેક મુનિઓને મારી વિજ્ઞપ્તિ છે કે વિવેક અને ગુરુગમ્યતાથી એનું જ્ઞાન વિશેષ વૃદ્ધિમાન કરવું; એથી તેઓનાં પવિત્ર પંચ મહાવ્રત દ્રઢ થશે; જિનેશ્વરનાં વચનામૃતના અનુપમ આનંદની પ્રસાદી મળશે; મુનિત્વઆચાર પાળવામાં સરળ થઈ પડશે; જ્ઞાન અને ક્રિયા વિશુદ્ધ રહેવાથી સમ્યક્ત્વનો ઉદય થશે; પરિણામે ભવાંત થઇ જશે.

શિક્ષાપાઠ ૮૫. તત્ત્વાવબોધ. ભાગ ૪.—

જે જે શ્રમણોપાસક નવતત્ત્વ પઠનરૂપે પણ જાણતા નથી તેઓએ અવશ્ય જાણવાં. જાણ્યા પછી બહુ મનન કરવાં. સમજાય તેટલા ગંભીર આશય ગુરુગમ્યતાથી સદ્ભાવે કરીને સમજવા. આત્મજ્ઞાન એથી ઉજ્વળતા પામશે; અને યમનિયમાદિકનું બહુ પાલન થશે.

નવતત્ત્વ એટલે તેનું એક સામાન્ય ગૂંથનયુક્ત પુસ્તક હોય તે નહીં; પરંતુ જે જે સ્થળે જે જે વિચારો જ્ઞાનીઓએ પ્રણીત કર્યા છે, તે તે વિચારો નવતત્ત્વમાંના અમુક એક બે કે વિશેષ તત્ત્વના હોય છે. કેવળી ભગવાને એ શ્રેણિઓથી સકળ જગત્મંડળ દર્શાવી દીધું છે; એથી જેમ જેમ નયાદિ ભેદથી એ તત્ત્વજ્ઞાન મળશે તેમ તેમ અપૂર્વ આનંદ અને નિર્મળતાની પ્રાપ્તિ થશે; માત્ર વિવેક, ગુરૂગમ્યતા અને અપ્રમાદ જોઇએ. એ નવતત્ત્વજ્ઞાન મને બહુ પ્રિય છે. એના રસાનુભવીઓ પણ મને સદૈવ પ્રિય છે.

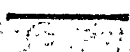
કાળભેદે કરીને આ વખતે માત્ર મતિ અને શ્રુત એ બે જ્ઞાન ભરતક્ષેત્રે વિદ્યમાન છે; બાકીનાં ત્રણ જ્ઞાન પરંપરામ્નાયથી જોવામાં આવતાં નથી; છતાં જેમ જેમ પૂર્ણ શ્રદ્ધાભાવથી એ નવતત્ત્વજ્ઞાનના વિચારોની ગુફામાં ઉતરાય છે, તેમ તેમ તેના અંદર અદ્ભુત આત્મપ્રકાશ, આનંદ, સમર્થ તત્ત્વજ્ઞાનની સ્ફુરણા, ઉત્તમ વિનોદ અને ગંભીર ચળકાટ દિંગ કરી દઈ, શુદ્ધ સમ્યફ્જ્ઞાનનો તે વિચારો બહુ ઉદય કરે છે. સ્યાદ્વાદવચનામૃતના અનંત સુંદર આશય સમજવાની પરંપરાગત શક્તિ આ કાળમાં આ ક્ષેત્રથી વિચ્છેદ ગયેલી છતાં તે પરત્વે જે જે સુંદર આશયો સમજાય છે તે તે આશયો અતિ અતિ ગંભીર તત્ત્વથી ભરેલા છે. પુનઃ પુનઃ તે આશયો મનન કરતાં ચાર્વાકમતિના ચંચળ મનુષ્યને પણ સદ્ધર્મમાં સ્થિર કરી દે તેવા છે. સંક્ષેપમાં સર્વ પ્રકારની સિદ્ધિ, પવિત્રતા,

મહાશીલ, નિર્મળ ઊંડા અને ગંભીર વિચાર, સ્વચ્છ વૈરાગ્યની ભેટ એ તત્ત્વજ્ઞાનથી મળે છે.

શિક્ષાપાઠ ૮૯. તત્ત્વાવબોધ, ભાગ ૫.—

એક વાર એક સમર્થ વિદ્વાનથી નિર્ગ્રંથપ્રવચનની ચમત્કૃતિ સંબંધી વાતચીત થઈ; તેના સંબંધમાં તે વિદ્વાને જણાવ્યું કે આટલું હું માન્ય રાખું છું કે મહાવીર એ એક સમર્થ તત્ત્વજ્ઞાની પુરુષ હતા; એમણે જે બોધ કર્યો છે, તે ઝીલી લઈ પ્રજ્ઞાવંત પુરુષોએ અંગ, ઉપાંગની યોજના કરી છે; તેના જે વિચારો છે તે ચમત્કૃતિ ભરેલા છે; પરંતુ એ ઉપરથી આખી સૃષ્ટિનું જ્ઞાન એમાં રહ્યું છે એમ હું કહી ન શકું. એમ છતાં જો તમે કંઈ એ સંબંધી પ્રમાણ આપતા હો તો હું એ વાતની કંઈ શ્રદ્ધા લાવી શકું. એના ઉત્તરમાં મેં એમ કહ્યું કે હું કંઇ જૈન વચનામૃતને યથાર્થ તો શું પણ વિશેષ ભેદે કરીને પણ જાણતો નથી; પણ જે સામાન્ય ભાવે જાણું છું એથી પણ પ્રમાણ આપી શકું ખરો. પછી નવતત્ત્વવિજ્ઞાન સંબંધી વાતચીત નીકળી. મેં કહ્યું એમાં આખી સૃષ્ટિનું જ્ઞાન આવી જાય છે; પરંતુ યથાર્થ સમજવાની શક્તિ જોઇએ. પછી તેઓએ એ કથનનું પ્રમાણ માગ્યું, ત્યારે આઠ કર્મ મેં કહી બતાવ્યાં; તેની સાથે એમ સૂચવ્યું કે એ સિવાય એનાથી ભિન્નભાવ દર્શાવે એવું નવમું કર્મ શોધી આપો. પાપની અને પુણ્યની પ્રકૃતિઓ કહીને કહ્યું આ સિવાય એક પણ વધારે પ્રકૃતિ શોધી આપો. એમ કહેતાં કહેતાં

અનુક્રમે વાત લીધી. પ્રથમ જીવના ભેદ કહી પૂછ્યું: એમાં કંઈ ન્યૂનાધિક કહેવા માગો છો ? અજીવદ્રવ્યના ભેદ કહી પૂછ્યું: કંઈ વિશેષતા કહો છો ? એમ નવતત્ત્વ સંબંધી વાતચિત થઇ ત્યારે તેઓએ થોડીવાર વિચાર કરીને કહ્યું: આ તો મહાવીરની કહેવાની અદ્‌ભુત ચમત્કૃતિ છે કે જીવનો એક નવો ભેદ મળતો નથી; તેમ પાપપુણ્યાદિકની એક પ્રકૃતિ વિશેષ મળતી નથી; અને નવમું કર્મ પણ મળતું નથી. આવા આવા તત્ત્વજ્ઞાનના સિદ્ધાંતો જૈનમાં છે એ મારૂં લક્ષ નહોતું. આમાં આખી સૃષ્ટિનું તત્ત્વજ્ઞાન કેટલેક અંશે આવી શકે ખરૂં.



શિક્ષાપાઠ ૮૭. તત્ત્વાવબોધ. ભાગ ૬.—

એનો ઉત્તર આ ભણીથી એમ થયો કે હજુ આપ આટલું કહો છો તે પણ જૈનના તત્ત્વવિચારો આપના હૃદયે આવ્યા નથી ત્યાંસુધી; પરંતુ હું મધ્યસ્થતાથી સત્ય કહું છું કે એમાં જે વિશુદ્ધજ્ઞાન બતાવ્યું છે તે ક્યાંય નથી; અને સર્વ મતોએ જે જ્ઞાન બતાવ્યું છે તે મહાવીરના તત્ત્વજ્ઞાનના એક ભાગમાં આવી જાય છે. એનું કથન સ્યાદ્વાદ છે, એકપક્ષી નથી.

તમે એમ કહ્યું કે કેટલેક અંશે સૃષ્ટિનું તત્ત્વજ્ઞાન એમાં આવી શકે ખરૂં, પરંતુ એ મિશ્રવચન છે. અમારી સમજાવવાની અલ્પજ્ઞતાથી એમ બને ખરૂં, પરંતુ એથી એ તત્ત્વોમાં કંઇ અપૂર્ણતા છે એમ તો નથી જ. આ કંઇ

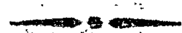
પક્ષપાતી કથન નથી. વિચાર કરી આખી સૃષ્ટિમાંથી એ સિવાયનું એક દશમું તત્ત્વ શોધતાં કોઇ કાળે તે મળનાર નથી. એ સંબંધી પ્રસંગોપાત આપણે જ્યારે વાતચિત અને મધ્યસ્થ ચર્ચા થાય ત્યારે નિઃશંકતા થાય.

ઉત્તરમાં તેઓએ કહ્યું કે આ ઉપરથી મને એમ તો નિઃશંકતા છે કે જૈન અદ્‌ભુત દર્શન છે. શ્રેણિપૂર્વક તમે મને કેટલાક નવતત્ત્વના ભાગ કહી બતાવ્યા એથી હું એમ બેધડક કહી શકું છું કે મહાવીર ગુપ્તભેદને પામેલા પુરુષ હતા. એમ સહજસાજ વાત કરીને ' ઉપન્નેવા, ' 'વિઘનેવા,' 'ધુવેવા,' એ લબ્ધિવાક્ય મને તેઓએ કહ્યું. તે કહી બતાવ્યા પછી તેઓએ એમ જણાવ્યું કે આ શબ્દોના સામાન્ય અર્થમાં તો કોઇ ચમત્કૃતિ દેખાતી નથી; ઉપજવું, નાશ થવું અને અચળતા, એમ એ ત્રણે શબ્દોનો અર્થ છે. પરંતુ શ્રીમાન ગણધરોએ તો એમ દર્શિત કર્યું છે કે એ વચનો ગુરુમુખથી શ્રવણ કરતાં આગળના ભાવિક શિષ્યોને દ્વાદશાંગીનું આશયભરિત જ્ઞાન થતું હતું. એ માટે મેં કંઇક વિચારો પહોંચાડી જોયા છતાં મને તો એમ લાગ્યું કે એ બનવું અસંભવિત છે, કારણ અતિ અતિ સૂક્ષ્મ માનેલું સિદ્ધાંતિક જ્ઞાન એમાં ક્યાંથી સમાય ? એ સંબંધી તમે કંઇ લક્ષ પહોંચાડી શકશો ?

શિક્ષાપાઠ ૮૮. તત્ત્વાવબોધ, ભાગ ૭.—

ઉત્તરમાં મેં કહ્યું કે આ કાળમાં ત્રણ મહાજ્ઞાન પરંપરામ્નાયથી ભારતમાં જોવામાં આવતાં નથી, તેમ છતાં હું કંઈ સર્વજ્ઞ કે મહાપ્રજ્ઞાવંત નથી; છતાં મારું જેટલું સામાન્ય લક્ષ પહોંચે તેટલું પહોંચાડી કંઇ સમાધાન કરી શકીશ, એમ મને સંભવ રહે છે. ત્યારે તેમણે કહ્યું, જો તેમ સંભવ થતો હોય તો એ ત્રિપદી જીવપર 'ના' ને 'હા' વિચારે ઉતારો. તે એમ કે જીવ શું ઉત્પત્તિરૂપ છે? તો કે ના. જીવ શું વિઘ્નતારૂપ છે? તો કે ના. જીવ શું ધ્રુવતારૂપ છે? તો કે ના. આમ એક વખત ઉતારો અને બીજી વખત જીવ શું ઉત્પત્તિરૂપ છે? તો કે હા. જીવ શું વિઘ્નતા રૂપે છે? તો કે હા, જીવ શું ધ્રુવરૂપ છે? તો કે હા. આમ ઉતારો આ વિચારો આખા મંડળે એકત્ર કરી યોજ્યા છે. એ જો યથાર્થ કહી ન શકાય તો અનેક પ્રકારથી દૂષણ આવી શકે. વિઘ્નરૂપે હોય એ વસ્તુ ધ્રુવરૂપે હોય નહીં, એ પહેલી શંકા. જો ઉત્પત્તિ, વિઘ્નતા અને ધ્રુવતા નથી તો જીવ કયાં પ્રમાણથી સિદ્ધ કરશો? એ બીજી શંકા. વિઘ્નતા અને જીવ કેવળ ધ્રુવતાને પરસ્પર વિરોધાભાસ એ ત્રીજી શંકા. ધ્રુવ છે તો ઉત્પત્તિમાં હા કહી એ અસત્ય અને ચોથો વિરોધ. ઉત્પન્ન યુક્ત જીવનો ધ્રુવ ભાવ કહો તો ઉત્પન્ન કોણે કર્યો? એ પાંચમો વિરોધ. અનાદિપણું જતું રહે છે એ છઠ્ઠી શંકા. કેવળ ધ્રુવ વિઘ્નરૂપે છે એમ કહો તો ચાર્વાકમિશ્ર વચન થયું એ સાતમો દોષ. ઉત્પત્તિ અને

વિઘ્નરૂપ કહેશો તો કેવળ ચાર્વાકનો સિદ્ધાંત એ આઠમો દોષ. ઉત્પત્તિની ના, વિઘ્નતાની ના અને ધ્રુવતાની ના કહી પાછી ત્રણેની હા કહી એના પુનઃરૂપે છ દોષ. એટલે સર્વાળે ચૌદ દોષ. કેવળ ધ્રુવતા જતાં તીર્થંકરનાં વચન ત્રુટી જાય એ પંદરમો દોષ. ઉત્પત્તિ ધ્રુવતા લેતાં કર્ત્તાની સિદ્ધિ થતાં સર્વજ્ઞ વચન ત્રુટી જાય એ સોળમો દોષ. ઉત્પત્તિ વિઘ્નરૂપે પાપપુણ્યાદિકનો અભાવ એટલે ધર્માધર્મ સઘળું ગયું એ સત્તરમો દોષ. ઉત્પત્તિ વિઘ્ન અને સામાન્ય સ્થિતિથી (કેવળ અચળ નહીં) ત્રિગુણાત્મક માયા સિદ્ધ થાય એ અઢારમો દોષ.



શિક્ષાપાઠ ૮૯. તત્ત્વાવબોધ, ભાગ ૮.—

એટલા દોષ એ કથનો સિદ્ધ ન થતાં આવે છે. એક જૈનમુનિએ મને અને મારા મિત્રમંડળને એમ કહ્યું હતું કે જૈન સપ્તભંગી નય અપૂર્વ છે, અને એથી સર્વ પદાર્થ સિદ્ધ થાય છે. નાસ્તિ, અસ્તિના એમાં અગમ્યભેદ રહ્યા છે. આ કથન સાંભળી અમે બધા ઘેર આવ્યા પછી યોજના કરતાં કરતાં આ લબ્ધિવાક્યની જીવપર યોજના કરી. હું ધારૂં છું કે એવા નાસ્તિ અસ્તિના બન્નેભાવ જીવપર નહિ ઉતરી શકે. લબ્ધિવાક્યો પણ ક્લેશરૂપ થઈ પડશે. યદિ એ ભણી મારી કંઇ તિરસ્કારની દૃષ્ટિ નથી.

આના ઉત્તરમાં અમે કહ્યું કે આપે જે નાસ્તિ અને અસ્તિ નય જીવ પર ઉતારવા ધાર્યો તે સનિક્ષેપ શૈલીથી નથી, એટલે વખતે એમાંથી એકાંતિક પક્ષ લઈ જવાય; તેમ વળી હું કંઇ સ્યાદ્વાદ શૈલીનો યથાર્થ જાણનાર નથી. મંદમતિથી લેશ ભાગ જાણું છું. નાસ્તિ અસ્તિ નય પણ આપે શૈલીપૂર્વક ઉતાર્યો નથી એટલે હું તર્કથી જે ઉત્તર દઈ શકું તે આપ સાંભળો.

ઉત્પત્તિમાં 'ના' એવી જે યોજના કરી છે તે એમ યથાર્થ થઈ શકે છે કે 'જીવ અનાદિ અનંત છે.' વિપ્રતામાં 'ના' એવી જે યોજના કરી છે તે એમ યથાર્થ થઇ શકે કે 'એનો કોઈ કાળે નાશ નથી.'

ધ્રુવતામાં 'ના' એવી જે યોજના કરી છે તે એમ યથાર્થ થઇ શકે કે 'એક દેહમાં તે સદૈવને માટે રહેનાર નથી.'

શિક્ષાપાઠ ૯૦. તત્ત્વાવબોધ, ભાગ ૯.—

ઉત્પત્તિમાં 'હા' એવી જે યોજના કરી છે તે એમ યથાર્થ થઇ શકે કે 'જીવનો મોક્ષ થતાં સુધી એક દેહમાંથી ચ્યવન પામી તે બીજા દેહમાં ઉપજે છે.'

વિપ્રતામાં 'હા' એવી જે યોજના કરી છે તે એમ યથાર્થ થઇ શકે કે 'તે જે દેહમાંથી આવ્યો ત્યાંથી વિપ્ર પામ્યો; વા ક્ષણ ક્ષણ પ્રતિ એની આત્મિક રિદ્ધિ વિષયાદિક મરણવડે રૂંધાઇ રહી છે, એ રૂપે વિપ્રતા યોજી શકાય છે.

ધ્રુવતામાં 'હા' એવી જે યોજના કહી છે, તે એમ યથાર્થ થઇ શકે કે 'દ્રવ્યે કરી જીવ કોઈ કાળે નાશરૂપ નથી, ત્રિકાળ સિદ્ધ છે.'

હવે એથી કરીને યોજેલા દોષ પણ હું ધારું છું કે ટળી જશે.

૧. જીવ વિઘ્નરૂપે નથી માટે ધ્રુવતા સિદ્ધ થઈ. એ પહેલો દોષ ટળ્યો.

૨. ઉત્પત્તિ, વિઘ્નતા અને ધ્રુવતા એ ભિન્ન ભિન્ન ન્યાયે સિદ્ધ થઇ એટલે જીવનું સત્યત્વ સિદ્ધ થયું એ બીજો દોષ ગયો.

૩. જીવના સત્યસ્વરૂપે ધ્રુવતા સિદ્ધ થઈ એટલે વિઘ્નતા ગઈ એ ત્રીજો દોષ ગયો.

૪. દ્રવ્યભાવે જીવની ઉત્પત્તિ અસિદ્ધ થઈ એ ચોથો દોષ ગયો.

૫. અનાદિ જીવ સિદ્ધ થયો એટલે ઉત્પત્તિ સંબંધીનો પાંચમો દોષ ગયો.

૬. ઉત્પત્તિ અસિદ્ધ થઇ એટલે કર્ત્તા સંબંધીનો છઠ્ઠો દોષ ગયો.

૭. ધ્રુવતા સાથે વિઘ્નતા લેતાં અબાધ થયું એટલે ચાર્વાકમિશ્રવચનનો સાતમો દોષ ગયો.

૮. ઉત્પત્તિ અને વિઘ્નતા પૃથક્ પૃથક્ દેહે સિદ્ધ થઇ માટે કેવળ ચાર્વાકસિદ્ધાંત એ નામનો આઠમો દોષ ગયો.

૯ થી ૧૪. શંકાનો પરસ્પરનો વિરોધાભાસ જતાં ચૌદ સુધીના દોષ ગયા.

૧૫. અનાદિ અનંતતા સિદ્ધ થતાં સ્યાદ્વાદવચન સત્ય થયું એ પંદરમો દોષ ગયો.

૧૬. કર્ત્તા નથી એ સિદ્ધ થતાં જિનવચનની સત્યતા રહી એ સોળમો દોષ ગયો.

૧૭. ધર્માધર્મ, દેહાદિક પુનરાવર્ત્તન સિદ્ધ થતાં સત્તરમો દોષ ગયો.

૧૮. એ સર્વ વાત સિદ્ધ થતાં ત્રિગુણાત્મક માયા અસિદ્ધ થઈ એ અઢારમો દોષ ગયો.

શિક્ષાપાઠ ૯૧. તત્ત્વાવબોધ, ભાગ ૧૦.—

આપની યોજેલી યોજના હું ધારું છું કે આથી સમાધાન પામી હશે. આ કંઇ યથાર્થ શૈલી ઉતારી નથી, તોપણ એમાં કંઈ પણ વિનોદ મળી શકે તેમ છે. એ ઉપર વિશેષ વિવેચન માટે બહોળો વખત જોઇએ એટલે વધારે કહેતો નથી; પણ એક બે ટુંકી વાત આપને કહેવાની છે તે જો આ સમાધાન યોગ્ય થયું હોય તો કહું. પછી તેઓ તરફથી મનમાનતો ઉત્તર મળ્યો, અને એક બે વાત જે કહેવાની હોય તે સહર્ષ કહો એમ તેઓએ કહ્યું.

પછી મેં મારી વાત સંજીવન કરી લબ્ધિ સંબંધી કહ્યું. આપ એ લબ્ધિ સંબંધી શંકા કરો કે એને ક્લેશરૂપ કહો તો એ વચનોને અન્યાય મળે છે. એમાં અતિ

અતિ ઉજ્જ્વળ આત્મિક શક્તિ, ગુરુગમ્યતા અને વૈરાગ્ય જોઇએ છે. જ્યાં સુધી તેમ નથી ત્યાંસુધી લબ્ધિ વિષે શંકા રહે ખરી, પણ હું ધારૂં છું કે આ વેળા એ સંબંધી કહેલા બે બોલ નિરર્થક નહીં જાય. તે એ કે જેમ આ યોજના નાસ્તિ અસ્તિ પર યોજી જોઇ, તેમ એમાં પણ બહુ સૂક્ષ્મ વિચાર કરવાના છે. દેહે દેહની પૃથક્ પૃથક્ ઉત્પત્તિ, ચ્યવન, વિશ્રામ, ગર્ભાધાન, પર્યાપ્તિ, ઇંદ્રિય, સત્તા, જ્ઞાન, સંજ્ઞા, આયુષ્ય, વિષય ઇત્યાદિ અનેક કર્મપ્રકૃતિ પ્રત્યેક ભેદે લેતાં જે વિચારો એ લબ્ધિથી નીકળે તે અપૂર્વ છે. જ્યાંસુધી લક્ષ પહોંચે ત્યાંસુધી સઘળા વિચાર કરે છે. પરંતુ દ્રવ્યાર્થિક, ભાવાર્થિક નયે આખી સૃષ્ટિનું જ્ઞાન એ ત્રણ શબ્દોમાં રહ્યું છે, તેનો વિચાર કોઇ જ કરે છે; તે સદ્‌ગુરુમુખની પવિત્ર લબ્ધિરૂપે જ્યારે આવે ત્યારે દ્વાદશાંગી જ્ઞાન શા માટે ન થાય? જગત એમ કહેતાં જેમ મનુષ્ય એક ઘર, એક વાસ, એક ગામ, એક શહેર, એક દેશ, એક ખંડ, એક પૃથ્વી એ સઘળું મૂકી દઇ અસંખ્યાત દ્વીપ સમુદ્રયુક્તાદિકથી ભરપૂર વસ્તુ એકદમ કેમ સમજી જાય છે? એનું કારણ માત્ર એટલું જ કે તે એ શબ્દની બહોળતાને સમજ્યું છે, કિંવા લક્ષની અમુક બહોળતાને સમજ્યું છે; જેથી જગત એમ કહેતાં એવડો મોટો મર્મ સમજી શકે છે; તેમજ ઋજુ અને સરળ સત્પાત્ર શિષ્યો નિર્ગ્રંથ ગુરુથી એ ત્રણ શબ્દોની ગમ્યતા લઇ દ્વાદશાંગી જ્ઞાન પામતા હતા. અને તે લબ્ધિ અલ્પજ્ઞતાથી વિવેકે જોતાં ક્લેશરૂપ પણ નથી.

શિક્ષાપાઠ ૯૨. તત્ત્વાવબોધ, ભાગ ૧૧.—

એમજ નવતત્ત્વસંબંધી છે જે મધ્યવયના ક્ષત્રિયપુત્રે જગત અનાદિ છે, એમ બેધડક કહી કર્તાને ઉડાડયો હશે, તે પુરુષે શું કંઈ સર્વજ્ઞતાના ગુપ્ત ભેદ વિના કર્યું હશે ? તેમ એની નિર્દોષતા વિષે જ્યારે આપ વાંચશો ત્યારે નિશ્ચય એવો વિચાર કરશો કે એ પરમેશ્વર હતા. કર્તા ન હોતો અને જગત અનાદિ હતું તો તેમ કહ્યું, એના અપક્ષપાતી અને કેવળ તત્ત્વમય વિચારો આપે અવશ્ય વિશોધવા યોગ્ય છે. જૈન દર્શનના અવર્ણવાદીઓ માત્ર જૈનને નથી જાણતા એટલે અન્યાય આપે છે, તે હું ધારૂં છું કે મમત્વથી અધોગતિ સેવશે.

આ પછી કેટલીક વાતચીત થઇ. પ્રસંગોપાત એ તત્ત્વ વિચારવાનું વચન લઇને સહર્ષ હું ત્યાંથી ઊઠયો હતો.

તત્ત્વાવબોધના સંબંધમાં આ કથન કહેવાયું. અનંત ભેદથી ભરેલા એ તત્ત્વ વિચારો જેટલા કાળભેદથી જેટલા જ્ઞેય જણાય તેટલા જ્ઞેય કરવા, ગ્રાહ્યરૂપ થાય તેટલા ગ્રહવા; અને ત્યાગરૂપ દેખાય તેટલા ત્યાગવા.

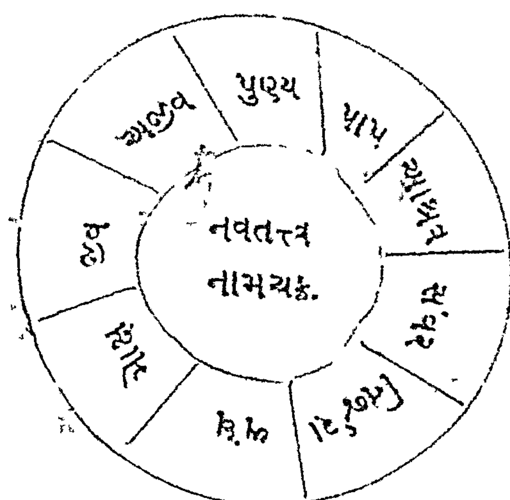
એ તત્ત્વોને જે યથાર્થ જાણે છે, તે અનંત ચતુષ્ટયથી વિરાજમાન થાય છે એ હું સત્યતાથી કહું છું. એ નવતત્ત્વનાં નામ મૂકવામાં પણ અરધું સૂચવન મોક્ષની નિકટતાનું જણાય છે !

શિક્ષાપાઠ ૯૩. તત્ત્વાવબોધ, ભાગ ૧૨.—

એ તો તમારા લક્ષમાં છે કે જીવ, અજીવ એ અનુક્રમથી છેવટે મોક્ષ નામ આવે છે. હવે તે એક પછી એક મૂકી જઇએ તો જીવ અને મોક્ષને અનુક્રમે આદ્યંત રહેવું પડશે.

જીવ, અજીવ, પુણ્ય, પાપ, આસ્રવ, સંવર, નિર્જરા, બંધ, મોક્ષ.

મેં આગળ કહ્યું હતું કે એ નામ મૂકવામાં જીવ અને મોક્ષને નિકટતા છે. છતાં આ નિકટતા તો ન થઈ પણ જીવ અને અજીવને નિકટતા થઇ પરંતુ એમ નથી. અજ્ઞાનવડે તો એ બન્નેને જ નિકટતા રહી છે. જ્ઞાન વડે જીવ અને મોક્ષને નિકટતા રહી છે જેમકે:—



હવે જુઓ એ બન્નેને કંઇ નિકટતા આવી છે? હા. કહેલી નિકટતા આવી ગઇ છે. પણ એ નિકટતા તો દ્રવ્યરૂપ

છે. જ્યારે ભાવે નિકટતા આવે ત્યારે સર્વ સિદ્ધિ થાય. એ નિકટતાનું સાધન સત્પરમાત્મતત્ત્વ, સદ્ગુરૂતત્ત્વ અને સદ્ધર્મતત્ત્વ છે. કેવળ એક જ રૂપ થવા જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્ર છે.

એ ચક્રથી એવી પણ આશંકા થાય કે જ્યારે બન્ને નિકટ છે ત્યારે શું બાકીનાં ત્યાગવાં? ઉત્તરમાં એમ કહું છું કે જો સર્વ ત્યાગી શકતા હો તો ત્યાગી દ્યો, એટલે મોક્ષરૂપ જ થશો. નહીં તો હેય, જ્ઞેય, ઉપાદેયનો બોધ લ્યો, એટલે આત્મસિદ્ધિ પ્રાપ્ત થશે.



શિક્ષાપાઠ ૯૪. તત્ત્વાવબોધ, ભાગ ૧૩.—

જે જે હું કહી ગયો તે તે કંઇ કેવળ જૈનકુળથી જન્મ પામેલા પુરૂષને માટે નથી, પરંતુ સર્વને માટે છે, તેમ આ પણ નિઃશંક માનજો કે હું જે કહું છે તે અપક્ષપાતે અને પરમાર્થ બુદ્ધિથી કહું છું.

તમને જે ધર્મતત્ત્વ કહેવાનું છે, તે પક્ષપાત કે સ્વાર્થબુદ્ધિથી કહેવાનું મને કંઇ પ્રયોજન નથી. પક્ષપાત કે સ્વાર્થથી હું તમને અધર્મતત્વ બોધી અધોગતિને શા માટે સાધુ? વારંવાર હું તમને નિર્ગ્રંથનાં વચનામૃતો માટે કહું છું, તેનું કારણ તે વચનામૃતો તત્ત્વમાં પરિપૂર્ણ છે, તે છે. જિનેશ્વરોને એવું કોઇ પણ કારણ ન હોતું કે જે નિમિત્તે તેઓ મૃષા કે પક્ષપાતી બોધે; તેમ એઓ અજ્ઞાની ન હતા, કે એથી મૃષા બોધાઇ જવાય. આશંકા કરશો

કે એ અજ્ઞાની નહોતા એ શા ઉપરથી જણાય? તો તેના ઉત્તરમાં એઓના પવિત્ર સિદ્ધાંતોના રહસ્યને મનન કરવાનું કહું છું; અને એમ જે કરશે તે તો પુનઃ આશંકા લેશ પણ નહીં કરે. જૈનમતપ્રવર્તકોએ મને કંઈ ભૂરશી દક્ષણા આપી નથી; તેમ એ મારા કંઈ કુટુંબ પરિવારી પણ નથી. કે એ માટે પક્ષપાતે હું કંઇપણ તમને કહું. તેમજ અન્યમતપ્રવર્તકે પ્રતિ મારે કંઇ વૈરબુદ્ધિ નથી કે મિથ્યા એનું ખંડન કરું. બન્નેમાં હું તો મંદમતિ મધ્યસ્થરૂપ છું. બહુ બહુ મનનથી અને મારી મતિ જ્યાંસુધી પહોંચી ત્યાં સુધીના વિચારથી હું વિનયથી એમ કહું છું, કે પ્રિય ભવ્યો! જૈન જેવું એકકે પૂર્ણ અને પવિત્ર દર્શન નથી; વીતરાગ જેવો એકકે દેવ નથી, તરીને અનંત દુઃખથી પાર પામવું હોય તો એ સર્વજ્ઞ દર્શનરૂપ કલ્પવૃક્ષને સેવો.

શિક્ષાપાઠ ૯૫. તત્ત્વાવબોધ. ભાગ ૧૪.—

જૈન એ એટલી બધી સૂક્ષ્મ વિચાર સંકળનાથી ભરેલું દર્શન છે કે જેમાં પ્રવેશ કરતાં પણ બહુ વખત જોઇએ. ઉપર ઉપરથી કે કોઈ પ્રતિપક્ષીના કહેવાથી અમુક વસ્તુ સંબંધી અભિપ્રાય બાંધવો કે આપવો એ વિવેકીનું કર્તવ્ય નથી. એક તળાવ સંપૂર્ણ ભર્યું હોય; તેનું જળ ઉપરથી સમાન લાગે છે; પણ જેમ જેમ આગળ ચાલીએ છીએ તેમ તેમ વધારે વધારે ઊંડાપણું આવતું જાય છે; છતાં ઉપર તો જળ સપાટ જ રહે છે; તેમ જગતના

સઘળા ધર્મમતો એક તળાવરૂપ છે. તેને ઉપરથી સામાન્ય સપાટી જોઇને સરખા કહી દેવા એ ઉચિત નથી. એમ કહેનારા તત્ત્વને પામેલા પણ નથી. જૈનના એકેકા પવિત્ર સિદ્ધાંતપર વિચાર કરતાં આયુષ્ય પૂર્ણ થાય, તોપણ પાર પામીએ નહીં તેમ રહ્યું છે. બાકીના સઘળા ધર્મમતોના વિચાર જિનપ્રણીત વચનામૃતસિંધુ આગળ એક બિંદુરૂપ પણ નથી. જૈન જેણે જાણ્યો અને સેવ્યો તે કેવળ નિરાગી અને સર્વજ્ઞ થઈ જાય છે. એના પ્રવર્તકો કેવા પવિત્ર પુરૂષો હતા! એના સિદ્ધાંતો કેવા અખંડ સંપૂર્ણ અને દયામય છે? એમાં દૂષણ કાંઇજ નથી. કેવળ નિર્દોષ તો માત્ર જૈનનું દર્શન છે. એવો એકકે પારમાર્થિક વિષય નથી કે જે જૈનમાં નહીં હોય અને એવું એકકે તત્ત્વ નથી કે જે જૈનમાં નથી. એક વિષયને અનંત ભેદે પરિપૂર્ણ કહેનાર તે જૈનદર્શન છે. પ્રયોજનભૂતતત્ત્વ એના જેવું ક્યાંય નથી. એક દેહમાં બે આત્મા નથી; તેમ આખી સૃષ્ટિમાં બે જૈન એટલે જૈનની તુલ્ય એકકે દર્શન નથી. આમ કહેવાનું કારણ શું? તો માત્ર તેની પરિપૂર્ણતા, નિરાગીતા, સત્યતા અને જગતહિતસ્વીતા.

શિક્ષાપાઠ ૯૬. તત્ત્વાવબોધ, ભાગ ૧૫.—

ન્યાયપૂર્વક આટલું મારે પણ માન્ય રાખવું જોઇએ કે જ્યારે એક દર્શનને પરિપૂર્ણ કહી વાત સિદ્ધ કરવી હોય ત્યારે પ્રતિપક્ષની મધ્યસ્થબુદ્ધિથી અપૂર્ણતા દર્શાવવી જોઇએ.

એસે બે બોલપર વિવેચન કરવા જેટલી આહીં જગ્યા નથી; તોપણ થોડું થોડું કહેતો આવ્યો છું. મુખ્યત્વે જે વાત છે તે આ છે કે એ મારી વાત જેને રૂચિકર થતી ન હોય કે અસંભવિત લાગતી હોય તેણે જૈનતત્ત્વવિજ્ઞાની શાસ્ત્રો અને અન્ય તત્ત્વવિજ્ઞાની શાસ્ત્રો મધ્યસ્થબુદ્ધિથી મનન કરી ન્યાયને કાંટે તોલન કરવું. એ ઉપરથી અવશ્ય એટલું મહાવાક્ય નીકળશે, કે જે આગળ નગારાપર દાંડી ઠોકીને કહેવાયું હતું તે ખરૂં હતું.

જગત્ ગાડરિયો પ્રવાહ છે. ધર્મના મતભેદ સંબંધીના શિક્ષાપાઠમાં દર્શિત કર્યા પ્રમાણે અનેક ધર્મમતની જાળ લાગી પડી છે. વિશુદ્ધાત્મા કોઇક જ થાય છે. વિવેકથી તત્ત્વને કોઇક જ શોધે છે. એટલે મને કંઈ વિશેષ ખેદ નથી કે જૈનતત્ત્વને અન્યદર્શનીઓ શા માટે જાણતા નથી? એ આશંકા કરવા રૂપ નથી.

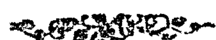
છતાં મને બહુ આશ્ચર્ય લાગે છે કે કેવળ શુદ્ધ પરમાત્મતત્ત્વને પામેલા, સકળ દૂષણ રહિત, મૃષા કહેવાનું જેને કંઈ નિમિત્ત નથી એવા પુરૂષનાં કહેલાં પવિત્રદર્શનને પોતે તો જાણ્યું નહીં, પોતાના આત્માનું હિત તો કર્યું નહીં, પણ અવિવેકથી મતભેદમાં આવી જઇ કેવળ નિર્દોષ અને પવિત્ર દર્શનને નાસ્તિક શા માટે કહ્યું હશે? યદિ હું સમજું છું કે એ કહેનારા એનાં તત્ત્વને જાણતા નહોતા. વળી એના તત્ત્વને જાણવાથી પોતાની શ્રદ્ધા ફરશે, ત્યારે લોકો પછી પોતાના આગળ કહેલા મતને ગાંઠશે નહીં. જે લૌકિક મતમાં પોતાની આજીવિકા રહી છે, એવા વેદોની મહત્તા ઘટાડવાથી પોતાની મહત્તા ઘટશે; પોતાનું મિથ્યા સ્થાપિત

કરેલું પરમેશ્વરપદ ચાલશે નહીં, એથી જૈનતત્ત્વમાં પ્રવેશ કરવાની રૂચિને મૂળથી બંધ કરવા લોકોને એવી ભ્રમભૂરકી આપી કે જૈન નાસ્તિક છે. લોકો તો બિચારા ગભરૂગાડર છે; એટલે પછી વિચાર પણ ક્યાંથી કરે ? એ કહેવું કેટલું અનર્થકારક અને મૃષા છે તે જેણે વીતરાગપ્રણીત સિદ્ધાંતો વિવેકથી જાણ્યા છે, તે જાણે. મારૂં કહેવું મંદબુદ્ધિઓ વખતે પક્ષપાતમાં લઈ જાય.

શિક્ષાપાઠ ૯૭. તત્ત્વાવબોધ, ભાગ ૧૬.—

પવિત્ર જૈન દર્શનને નાસ્તિક કહેવરાવવામાં તેઓ એક દલીલથી મિથ્યા ફાવવા ઇચ્છે છે, કે જૈનદર્શન આ જગત્‌ના કર્ત્તા પરમેશ્વરને માનતું નથી; અને જે પરમેશ્વરને નથી માનતા તે તો નાસ્તિકજ છે. આ વાત ભદ્રિકજનોને શીઘ્ર ચોંટી રહે છે. કારણ તેઓમાં યથાર્થ વિચાર કરવાની પ્રેરણા નથી. પણ જો એ ઉપરથી એમ વિચારવામાં આવે કે જૈન જગતને ત્યારે અનાદિ અનંત કહે છે તે કયા ન્યાયથી કહે છે? જગતકર્ત્તા નથી એમ કહેવામાં એમનું નિમિત્ત શું છે ? એમ એક પછી એક ભેદરૂપ વિચારથી તેઓ જૈનની પવિત્રતા પર આવી શકે. જગત્ રચવાની પરમેશ્વરને અવશ્ય શી હતી ? રચ્યું તો સુખ દુઃખ મૂકવાનું કારણ શું હતું ? રચીને મોત શા માટે મૂક્યું ? એ લીલા બતાવવી કોને હતી ? રચ્યું તો ક્યાં કર્મથી રચ્યું ? તે પહેલાં રચવાની ઇચ્છા કાં નહોતી ? ઇશ્વર કોણ ? જગત્‌ના પદાર્થ કોણ ? અને ઈચ્છા કોણ ? રચ્યું તો જગત્‌માં

એક જ ધર્મનું પ્રવર્તન રાખવું હતું; આમ ભ્રમણામાં નાખવાની અવશ્ય શી હતી ? કદાપિ એ બધું સાનો કે એ બિચારાની ભૂલ થઇ ! હશે ! ક્ષમા કરીએ, પણ એવું દોઢ ડહાપણ ક્યાંથી સૂજ્યું કે એને જ મૂળથી ઉખેડનાર એવા મહાવીર જેવા પુરૂષોને જન્મ આપ્યો ? એનાં કહેલાં દર્શનને જગત્માં વિદ્યમાનતા આપી ? પોતાના પગપર હાથે કરીને કુહાડો મારવાની એને શું અવશ્ય હતી ? એક તો જાણે એ પ્રકારે વિચાર અને બાકી બીજા પ્રકારે એ વિચાર કે જૈનદર્શનપ્રવર્તકોને એનાથી કંઇ દ્વેષ હતો ? એ જગત્કર્ત્તા હોત તો એમ કહેવાથી એઓના લાભને કંઇ હાનિ પહોંચતી હતી ? જગત્કર્ત્તા નથી, જગત્ અનાદિ અનંત છે એમ કહેવામાં એમને કંઇ મહત્તા મળી જતી હતી ? આવા અનેક વિચારો વિચારતાં જણાઈ આવશે કે જેમ જગતનું સ્વરૂપ હતું તેમજ તે પવિત્ર પુરૂષોએ કહ્યું છે. એમાં ભિન્નભાવ કહેવા એમને લેશમાત્ર પ્રયોજન નહોતું. સૂક્ષ્મમાં સૂક્ષ્મ જંતુની રક્ષા જેણે પ્રણીત કરી છે, એક રજકણથી કરીને આખા જગતના વિચારો જેણે સર્વ ભેદે કહ્યા છે, તેવા પુરૂષોનાં પવિત્ર દર્શનને નાસ્તિક કહેનારા કયિ ગતિને પામશે એ વિચારતાં દયા આવે છે !



શિક્ષાપાઠ ૯૮. તત્ત્વાવબોધ, ભાગ ૧૭.—

જે ન્યાયથી જય મેળવી શકતો નથી તે પછી ગાળો ભાંડે છે. તેમ પવિત્ર જૈનના અખંડ તત્ત્વસિદ્ધાંતો શંકરાચાર્ય, દયાનંદ સંન્યાસી વગેરે જ્યારે તોડી ન શક્યા ત્યારે

પછી 'જૈન નાસ્તિક હૈ, સો ચાર્વાકમેંસે ઉત્પન્ન હુઆ હૈ' એમ કહેવા માંડયું પણ એ સ્થળે કોઇ પ્રશ્ન કરે, કે મહારાજ ! એ વિવેચન તમે પછી કરો. એવા શબ્દો કહેવામાં કંઈ વખત, વિવેક કે જ્ઞાન જોઇતું નથી; પણ આનો ઉત્તર આપો કે જૈન વેદથી કયિ વસ્તુમાં ઉતરતો છે; એનું જ્ઞાન, એનો બોધ, એનું રહસ્ય, અને એનું સત્શીલ કેવું છે તે એકવાર કહો ! આપના વેદવિચારો કયિ બાબતમાં જૈનથી ચઢે છે ? આમ જ્યારે મર્મસ્થાનપર આવે ત્યારે મૌનતા સિવાય તેઓ પાસે બીજું કંઈ સાધન રહે નહીં. જે સત્પુરૂષોનાં વચનામૃત અને યોગબળથી આ સૃષ્ટિમાં સત્ય, દયા, તત્ત્વજ્ઞાન અને મહાશીલ ઉદય પામે છે, તે પુરૂષો કરતાં જે પુરૂષો શૃંગારમાં રચ્યા પડયા છે, સામાન્ય તત્ત્વજ્ઞાનને પણ નથી જાણતા, જેનો આચાર પણ પૂર્ણ નથી તેને ચઢતા કહેવા, પરમેશ્વરને નામે સ્થાપવા અને સત્યસ્વરૂપની અવર્ણ ભાષા બોલવી, પરમાત્મસ્વરૂપ પામેલાને નાસ્તિક કહેવા, એ એમની કેટલી બધી કર્મની બહોલતાનું સૂચવન કરે છે ! પરંતુ જગત્ મોહાંધ છે, મતભેદ છે ત્યાં અંધારૂં છે; મમત્વ કે રાગ છે ત્યાં સત્યતત્ત્વ નથી એ વાત આપણે શા માટે ન વિચારવી !

હું એક મુખ્ય વાત તમને કહું છું કે જે મમત્વરહિતની અને ન્યાયની છે, તે એ છે કે ગમે તે દર્શનને તમે માનો. ગમે તો પછી તમારી દૃષ્ટિમાં આવે તેમ જૈનને કહો, સર્વ દર્શનનાં શાસ્ત્રતત્ત્વને જુઓ, તેમ જૈનતત્ત્વને પણ જુઓ. સ્વતંત્ર આત્મિકશક્તિએ જે યોગ્ય લાગે તે

અંગીકાર કરો. મારૂં કે બીજા ગમે તેનું ભલે એકદમ તમે માન્ય ન કરો પણ તત્ત્વને વિચારો.

શિક્ષાપાઠ ૯૯. સમાજની અગત્ય.—

આંગ્લભૌમિઓ સંસારસંબંધી અનેક કલાકૌશલ્યમાં શાથી વિજય પામ્યા છે ? એ વિચાર કરતાં આપણને તત્કાલ જણાશે કે તેઓનો બહુ ઉત્સાહ અને એ ઉત્સાહમાં અનેકનું મળવું. કળાકૌશલ્યના એ ઉત્સાહી કામમાં એ અનેક પુરૂષોની ઉભી થએલી સભા કે સમાજે પરિણામ શું મેળવ્યું ? તો ઉત્તરમાં એમ આવશે કે લક્ષ્મી, કીર્ત્તિ અને અધિકાર. એ એમનાં ઉદાહરણ ઉપરથી એ જાતિનાં કળાકૌશલ્યો શોધવાનો હું અહીં બોધ કરતો નથી; પરંતુ સર્વજ્ઞ ભગવાનનું કહેલું ગુપ્ત તત્ત્વ પ્રમાદસ્થિતિમાં આવી પડયું છે, તેને પ્રકાશિત કરવા તથા પૂર્વાચાર્યોનાં ગૂંથેલાં મહાન શાસ્ત્રો એકત્ર કરવા, પડેલા ગચ્છના મતમતાંતરને ટાળવા તેમજ ધર્મવિદ્યાને પ્રફુલ્લિત કરવા એક મહાન્ સમાજ સદાચરણી શ્રીમંત અને ધીમંત બન્નેએ મળીને સ્થાપન કરવાની અવશ્ય છે એમ દર્શાવું છું. પવિત્ર સ્યાદ્વાદમતનું ઢંકાયલું તત્ત્વ પ્રસિદ્ધિમાં આણવા જ્યાંસુધી પ્રયોજન નથી, ત્યાંસુધી શાસનની ઉન્નતિ પણ નથી. લક્ષ્મી, કીર્ત્તિ અને અધિકાર સંસારી કળાકૌશલ્યથી મળે છે, પરંતુ આ ધર્મકળાકૌશલ્યથી તો સર્વ સિદ્ધિ સાંપડશે. મહાન સમાજના અંતર્ગત ઉપસમાજ સ્થાપવા. મતમતાંતર તજી;

વાડામાં બેઠી રહેવા કરતાં એમ કરવું ઉચિત છે. હું ઇચ્છું છું કે તે કૃત્યની સિદ્ધિ થઈ જૈનાંતર્ગચ્છ મતભેદ ટળો, સત્ય વસ્તુ ઉપર મનુષ્યમંડળનું લક્ષ આવો; અને મમત્વ જાઓ!

શિક્ષાપાઠ ૧૦૦. મનોનિગ્રહનાં વિઘ્ન.—

વારંવાર જે બોધ કરવામાં આવ્યો છે તેમાંથી મુખ્ય તાત્પર્ય નીકળે છે તે એ છે કે આત્માને તારો અને તારવા માટે તત્ત્વજ્ઞાનનો પ્રકાશ કરો તથા સત્શીલને સેવો. એ પ્રાપ્ત કરવા જે જે માર્ગ દર્શાવ્યા તે તે માર્ગ મનોનિગ્રહતાને આધીન છે. મનોનિગ્રહતા થવા લક્ષની બહોળતા કરવી યથોચિત છે. એ બહોળતામાં વિઘ્નરૂપ નીચેના દોષ છે.

૧. આળસ.	૧૦. આપવડાઈ.
૨. અનિયમિત ઊંઘ.	૧૧. તુચ્છ વસ્તુથી આનંદ.
૩. વિશેષ આહાર.	૧૨. રસગારવલુબ્ધતા.
૪. ઉન્માદ પ્રકૃતિ.	૧૩. અતિભોગ.
૫. માયાપ્રપંચ.	૧૪. પારકું અનિષ્ટ ઇચ્છવું.
૬. અનિયમિત કામ.	૧૫. કારણવિનાનું રળવું.
૭. અકરણીય વિલાસ.	૧૬. ઝાઝાનો સ્નેહ.
૮. માન.	૧૭. અયોગ્યસ્થળે જવું.
૯. મર્યાદા ઉપરાંત કામ.	૧૮. એકકે ઉત્તમ નિયમ સાધ્ય ન કરવો.

અષ્ટાદશ પાપસ્થાનક ત્યાંસુધી ક્ષય થવાનાં નથી કે જ્યાંસુધી આ અષ્ટાદશ વિઘ્નથી મનનો સંબંધ છે. આ

અષ્ટાદશ દોષ જવાથી મનોનિગ્રહતા અને ધારેલી સિદ્ધિ થઈ શકે છે. એ દોષ જ્યાંસુધી મનથી નિકટતા ધરાવે છે ત્યાંસુધી કોઇપણ મનુષ્ય આત્મસાર્થક કરવાનો નથી. અતિ ભોગને સ્થળે સામાન્ય ભોગ નહીં, પણ કેવળ ભોગ-ત્યાગવ્રત જેણે ધર્યું છે, તેમજ એ એકકે દોષનું મૂળ જેના હૃદયમાં નથી તે સત્પુરૂષ મહદ્‌ભાગી છે.

શિક્ષાપાઠ ૧૦૧. સ્મૃતિમાં રાખવાયોગ્ય મહાવાક્યો.

૧. એક ભેદે નિયમ એ જ આ જગતનો પ્રવર્તક છે.

૨. જે મનુષ્ય સત્પુરૂષોનાં ચરિત્રરહસ્યને પામે છે તે મનુષ્ય પરમેશ્વર થાય છે.

૩. ચંચળ ચિત્ત એ જ સર્વ વિષમ દુઃખનું મૂળિયું છે.

૪. ઝાઝાનો મેળાપ અને થોડા સાથે અતિ સમાગમ એ બન્ને સમાન દુઃખદાયક છે.

૫. સમસ્વભાવીનું મળવું એને જ્ઞાનીઓ એકાંત કહે છે.

૬. ઇંદ્રિયો તમને જીતે અને સુખ માનો તે કરતાં તેને તમે જીતવામાં જ સુખ, આનંદ અને પરમપદ પ્રાપ્ત કરશો.

૭. રાગવિના સંસાર નથી અને સંસારવિના રાગ નથી.

૮. યુવાવયનો સર્વસંગપરિત્યાગ પરમપદને આપે છે.

૯. તે વસ્તુના વિચારમાં પહોંચો કે જે વસ્તુ અતીંદ્રિય સ્વરૂપ છે.

૧૦. ગુણીના ગુણમાં અનુરક્ત થાઓ.

શિક્ષાપાઠ ૧૦૨. વિવિધ પ્રશ્નો. ભાગ ૧.—

આજે તમને હું કેટલાંક પ્રશ્નો નિર્ગ્રંથપ્રવચનાનુસાર ઉત્તર આપવા માટે પૂછું છું.

પ્ર૦—કહો ધર્મની અગત્ય શી છે?

ઉ૦—અનાદિકાળથી આત્માની કર્મજાળ ટાળવા માટે.

પ્ર૦—જીવ પહેલો કે કર્મ?

ઉ૦—બન્ને અનાદિ છે જ. જીવ પહેલો હોય તો એ વિમળ વસ્તુને મળ વળગવાનું કંઇ નિમિત્ત જોઇએ. કર્મ પહેલાં કહો તો જીવ વિના કર્મ કર્યાં કોણે? એ ન્યાયથી બન્ને અનાદિ છે જ.

પ્ર૦—જીવ રૂપી કે અરૂપી?

ઉ૦—રૂપી પણ ખરો; અને અરૂપી પણ ખરો.

પ્ર૦—રૂપી કયા ન્યાયથી અને અરૂપી કયા ન્યાયથી તે કહો.

ઉ૦—દેહ નિમિત્તે રૂપી અને સ્વસ્વરૂપે અરૂપી.

પ્ર૦—દેહ નિમિત્ત શાથી છે?

ઉ૦—સ્વકર્મના વિપાકથી.

પ્ર૦—કર્મની મુખ્ય પ્રકૃતિઓ કેટલી છે?

ઉ૦—આઠ.

પ્ર૦—કયિ કયિ?

ઉ૦—જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય, મોહનીય, નામ, ગોત્ર, આયુષ્ય અને અંતરાય.

પ્ર૦—એ આઠે કર્મની સામાન્ય સમજ કહો.

ઉ૦—જ્ઞાનાવરણીય એટલે આત્માની જ્ઞાન સંબંધીની જે અનંતશક્તિ છે તેને આચ્છાદન કરે તે. દર્શનાવરણીય એટલે આત્માની જે અનંત દર્શનશક્તિ છે તેને આચ્છાદન કરે તે. વેદનીય એટલે દેહનિમિત્તે શાતા, અશાતા એ પ્રકારનાં વેદનીય કર્મથી અવ્યાબાધ સુખરૂપ આત્માની શક્તિ જેનાથી રોકાઈ રહે તે, મોહનીય કર્મથી આત્મ-ચારિત્રરૂપ શક્તિ રોકાઇ રહી છે. નામકર્મથી અમૂર્તિરૂપ દિવ્ય શક્તિ રોકાઈ રહી છે. ગોત્રકર્મથી અટલ અવગાહના-રૂપ આત્મશક્તિ રોકાઇ રહી છે. આયુકર્મથી અક્ષય સ્થિતિ ગુણ રોકાઇ રહ્યો છે. અંતરાય કર્મથી અનંત,–દાન, લાભ, વીર્ય, ભોગ, ઉપભોગ,–શક્તિ રોકાઇ રહી છે.

શિક્ષાપાઠ ૧૦૩. વિવિધ પ્રશ્નો, ભાગ ૨.—

પ્ર૦—એ કર્મો ટળવાથી આત્મા ક્યાં જાય છે?

ઉ૦—અનંત અને શાશ્વત મોક્ષમાં.

પ્ર૦—આ આત્માનો મોક્ષ કોઇવાર થયો છે?

ઉ૦—ના.

પ્ર૦—કારણ?

ઉ૦—મોક્ષ થયેલો આત્મા કર્મમલરહિત છે. એથી પુનર્જન્મ એને નથી.

પ્ર૦ કેવલીનાં લક્ષણ શું?

ઉ૦—ચાર ઘનઘાતી કર્મનો ક્ષય અને ચાર કર્મને પાતળાં પાડી જે પુરુષ ત્રયોદશ ગુણસ્થાનકવર્તી વિહાર કરે છે.

પ્ર૦—ગુણસ્થાનક કેટલાં?

ઉ૦—ચૌદ.

પ્ર૦—તેનાં નામ કહો ?

ઉ૦—

૧. મિથ્યાત્વ ગુણસ્થાનક.
૨. સાસ્વાદન ગુણસ્થાનક.
૩. મિશ્ર ગુણસ્થાનક.
૪. અવિરતિસમ્યગ્દૃષ્ટિ ગુણસ્થાનક.
૫. દેશવિરતિ ગુણસ્થાનક.
૬. પ્રમત્તસંયત ગુણસ્થાનક.
૭. અપ્રમત્તસંયત ગુણસ્થાનક.
૮. અપૂર્વકરણ ગુણસ્થાનક.
૯. અનિવૃત્તિબાદર ગુણસ્થાનક.
૧૦. સૂક્ષ્મસંપરાય ગુણસ્થાનક.
૧૧. ઉપશાંતમોહ ગુણસ્થાનક.
૧૨. ક્ષીણમોહ ગુણસ્થાનક.
૧૩. સયોગીકેવળી ગુણસ્થાનક
૧૪. અયોગીકેવળી ગુણસ્થાનક

શિક્ષાપાઠ ૧૦૪. વિવિધ પ્રશ્નો, ભાગ ૩.—

પ્ર૦—કેવલી અને તીર્થંકર એ બન્નેમાં ફેર શો ?

ઉ૦—કેવલી અને તીર્થંકર શકિતમાં સમાન છે; પરંતુ તીર્થંકરે પૂર્વે તીર્થંકરનામકર્મ ઉપાર્જ્યું છે; તેથી વિશેષમાં બાર ગુણ અને અનેક અતિશય પ્રાપ્ત કરે છે.

પ્ર૦—તીર્થંકર પર્યટન કરીને શામાટે ઉપદેશ આપે છે ? એ તો નિરાગી છે.

ઉ૦—તીર્થંકરનામકર્મ જે પૂર્વે બાંધ્યું છે તે વેદવા માટે તેઓને અવશ્ય તેમ કરવું પડે છે.

પ્ર૦—હમણાં પ્રવર્તે છે તે શાસન કોનું છે ?

ઉ૦—શ્રમણ ભગવાન મહાવીરનું.

પ્ર૦—મહાવીર પહેલાં જૈનદર્શન હતું?

ઉ૦—હા.

પ્ર૦—તે કોણે ઉત્પન્ન કર્યું હતું?

ઉ૦—તે પહેલાંના તીર્થંકરોએ.

પ્ર૦—તેઓના અને મહાવીરના ઉપદેશમાં કંઈ ભિન્નતા ખરી કે?

ઉ૦—તત્ત્વસ્વરૂપે એક જ. પાત્રને લઇને ઉપદેશ હોવાથી અને કંઇક કાળભેદ હોવાથી સામાન્ય મનુષ્યને ભિન્નતા લાગે ખરી; પરંતુ ન્યાયથી જોતાં એ ભિન્નતા નથી.

પ્ર૦—એઓનો મુખ્ય ઉપદેશ શું છે?

ઉ૦—આત્માને તારો; આત્માની અનંતશક્તિઓનો પ્રકાશ કરો; એને કર્મરૂપ અનંત દુઃખથી મુક્ત કરો.

પ્ર૦—એ માટે તેઓએ ક્યાં સાધનો દર્શાવ્યાં છે?

ઉ૦—વ્યવહારનયથી સત્દેવ, સત્ધર્મ અને સત્ગુરૂનું સ્વરૂપ જાણવું; સત્દેવના ગુણગ્રામ કરવા; ત્રિવિધ ધર્મ આચરવો અને નિર્ગંથ ગુરુથી ધર્મની ગમ્યતા પામવી.

પ્ર૦—ત્રિવિધ ધર્મ કયો?

ઉ૦—સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપ, સમ્યગ્દર્શનરૂપ અને સમ્યક્ચારિત્રરૂપ.

શિક્ષાપાઠ ૧૦૫. વિવિધ પ્રશ્નો, ભાગ ૪.—

પ્ર૦—આવું જૈનદર્શન જ્યારે સર્વોત્તમ છે ત્યારે સર્વ આત્માઓ એના બોધને કાં માનતા નથી?

ઉ૦—કર્મની બાહુલ્યતાથી, મિથ્યાત્વનાં જામેલાં દળિયાંથી અને સત્સમાગમના અભાવથી.

પ્ર૦—જૈન મુનિઓના મુખ્ય આચાર શું છે?

ઉ૦—પાંચ મહાવ્રત, દશવિધિ યતિધર્મ, સપ્તદશવિધિ સંયમ, દશવિધિ વૈયાવૃત્ત્ય નવવિધિ બ્રહ્મચર્ય, દ્વાદશ પ્રકારનો તપ, ક્રોધાદિક ચાર પ્રકારના કષાયનો નિગ્રહ; વિશેષમાં જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્રનું આરાધન. ઇત્યાદિક અનેક ભેદ છે.

પ્ર૦—જૈનમુનિઓના જેવાં જ સંન્યાસીઓનાં પંચ યામ છે; બૌદ્ધધર્મનાં પાંચ મહાશીલ છે. એટલે એ આચારમાં તો જૈનમુનિઓ અને સંન્યાસીઓ તેમજ બૌદ્ધમુનિઓ સરખા ખરા કે?

ઉ૦—નહીં

પ્ર૦—કેમ નહીં?

ઉ૦—એઓનાં પંચ યામ અને પંચ મહાશીલ અપૂર્ણ છે. મહાવ્રતના પ્રતિભેદ જૈનમાં અતિ સૂક્ષ્મ છે. પેલા બેના સ્થૂળ છે.

પ્ર૦—સૂક્ષ્મતાને માટે દૃષ્ટાંત આપો જોઇએ?

ઉ૦—દૃષ્ટાંત દેખીતું જ છે. પંચ યામીઓ કંદમૂળાદિક અભક્ષ્ય ખાય છે; સુખશય્યામાં પોઢે છે; વિવિધ જાતનાં વાહનો અને પુષ્પોનો ઉપભોગ લે છે; કેવળ શીતળ જળથી વ્યવહાર કરે છે. રાત્રિએ ભોજન લે છે. એમાં થતો અસંખ્યાતા જંતુનો વિનાશ, બ્રહ્મચર્યનો ભંગ એની સૂક્ષ્મતા તેઓના જાણવામાં નથી. તેમજ માંસાદિક અભક્ષ્ય અને સુખ-

શીલિયાં સાધનોથી બૌદ્ધમુનિઓ યુક્ત છે. જૈન મુનિઓ તો કેવળ એથી વિરક્ત જ છે.

શિક્ષાપાઠ ૧૦૬. વિવિધ પ્રશ્નો, ભાગ ૫.—

પ્ર૦—વેદ અને જૈન દર્શનને પ્રતિપક્ષતા ખરી કે?

ઉ૦—જૈનને કંઈ અસમંજસભાવે પ્રતિપક્ષતા નથી; પરંતુ સત્યથી અસત્ય પ્રતિપક્ષી ગણાય છે, તેમ જૈન દર્શનથી વેદનો સંબંધ છે.

પ્ર૦—એ બેમાં સત્યરૂપ તમે કોને કહો છો?

ઉ૦—પવિત્ર જૈનદર્શનને.

પ્ર૦—વેદ દર્શનીઓ વેદને કહે છે તેનું કેમ?

ઉ૦—એ તો મતભેદ અને જૈનના તિરસ્કાર માટે છે. પરંતુ ન્યાયપૂર્વક બન્નેનાં મૂળતત્વો આપ જોઈ જજો.

પ્ર૦—આટલું તો મને લાગે છે કે મહાવીરાદિક જિનેશ્વરનું કથન ન્યાયના કાંટાપર છે; પરંતુ જગતકર્ત્તાની તેઓ ના કહે છે, અને જગત અનાદિ અનંત છે એમ કહે છે તે વિષે કંઈ કંઇ શંકા થાય છે કે આ અસંખ્યાત દ્વીપસમુદ્રયુક્ત જગત વગર બનાવ્યે ક્યાંથી હોય?

ઉ૦—આપને જ્યાંસુધી આત્માની અનંત શક્તિની લેશ પણ દિવ્ય પ્રસાદી મળી નથી ત્યાંસુધી એમ લાગે છે; પરંતુ તત્વજ્ઞાને એમ નહીં લાગે. 'સમ્મતિતર્ક' ગ્રંથનો આપ અનુભવ કરશો એટલે એ શંકા નીકળી જશે.

પ્ર૦—પરંતુ સમર્થ વિદ્વાનો પોતાની મૃષા વાતને પણ દૃષ્ટાંતાદિકથી સિદ્ધાંતિક કરી દે છે; એથી એ ત્રુટી શકે નહીં પણ સત્ય કેમ કહેવાય ?

ઉ૦—પણ આને કંઇ મૃષા કથવાનું પ્રયોજન નહોતું, અને પળભર એમ માનો, કે એમ આપણને શંકા થઇ કે એ કથન મૃષા હશે તો પછી જગતકર્ત્તાએ એવા પુરુષને જન્મ પણ કાં આપ્યો ? નાગબોળક પુત્રને જન્મ આપવા શું પ્રયોજન હતું ? તેમ વળી એ સત્પુરુષો સર્વજ્ઞ હતા; જગતકર્તા સિદ્ધ હોત તો એમ કહેવાથી તેઓને કંઇ હાનિ નહોતી.

શિક્ષાપાઠ ૧૦૭. જિનેશ્વરની વાણી.—

મનહર છંદ.

અનંત અનંત ભાવ ભેદથી ભરેલી ભલી,
  અનંત અનંત નય નિક્ષેપે વ્યાખ્યાની છે;
સકળ જગત હિતકારિણી હારિણી મોહ,
  તારિણી ભવાબ્ધિ મોક્ષચારિણી પ્રમાણી છે;
ઉપમા આપ્યાની જેને તમા રાખવી તે વ્યર્થ,
  આપવાથી નિજ મતિ મપાઇ મેં માની છે;
અહો ! રાજચંદ્ર, બાળ ખ્યાલ નથી પામતા એ,
  જિનેશ્વર તણી વાણી જાણી તેણે જાણી છે. ૧.

શિક્ષાપાઠ ૧૦૮. પૂર્ણમાલિકા મંગલ.—

ઉપજાતિ.

તપોપધ્યાને રવિરૂપ થાય,
એ સાધિને સોમ રહી સુહાય;
મહાન તે મંગળ પંક્તિ પામે,
આવે પછી તે બુધના પ્રણામે. ૧
નિર્ગ્રંથ જ્ઞાતા ગુરુ સિદ્ધિ દાતા,
કાં તો સ્વયં શુક્ર પ્રપૂર્ણ ખ્યાતા;
ત્રિયોગ ત્યાં કેવળ મંદ પામે,
સ્વરૂપ સિદ્ધે વિચરી વિરામે. ૨

[મોક્ષમાળા સમાપ્ત.]

